वियोग-वल्लरी

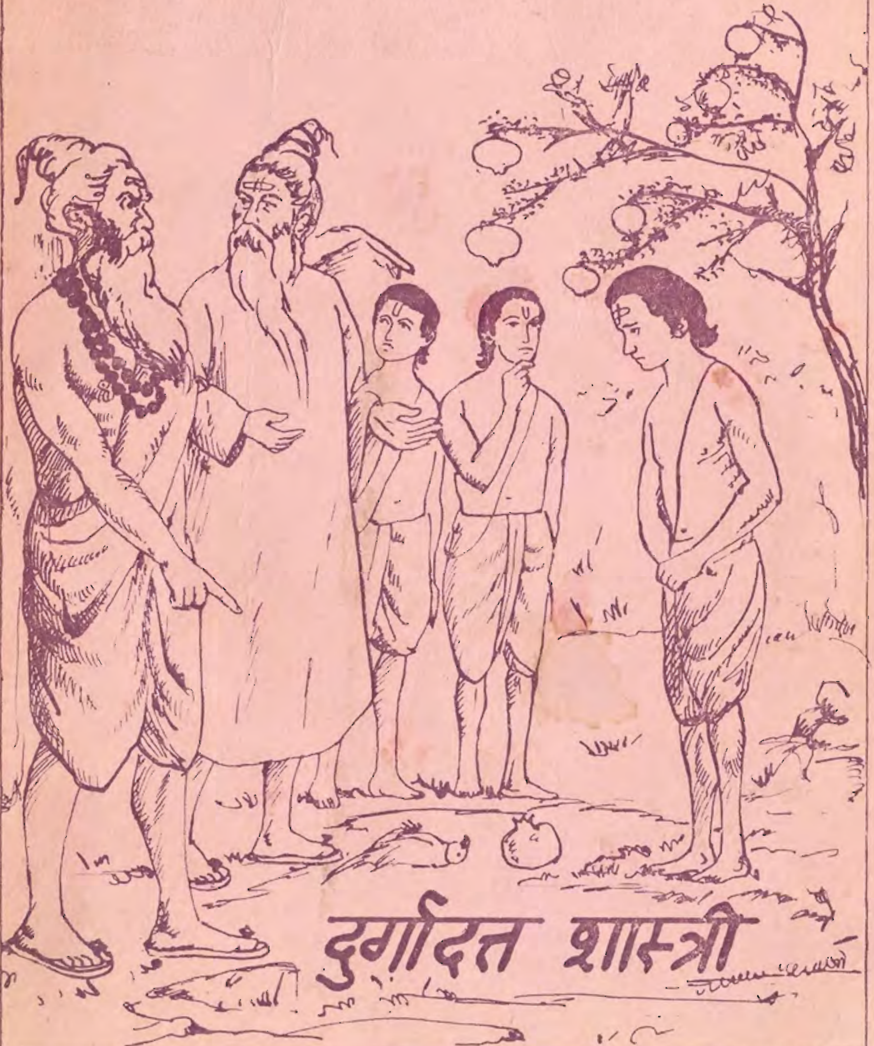

दुर्गादत्त शास्त्री

4/12

वियोगवल्लरी

अभिनवं मौलिकसंस्कृतगद्यकाव्यम्

(हिन्दी—अनुवादसहितम्)

प्रणेता

दुर्गादत्त शास्त्री, विद्यालङ्कार साहित्यरत्न

(राष्ट्रीयपुरस्कारप्राप्त)

नलेटी, तह० देहरा, जिला कांगड़ा (हि०प्र०) पिन 177104

प्रथमसंस्करणम् :—१०००

मूल्यम् ४० रुपये
(चालीस रुपये)

सर्वेऽधिकाराः प्रणेतुरधीनाः

प्रकाशक तथा पुस्तकप्राप्तिस्थान
दुर्गादत्त शास्त्री
ग्राम एवं डाकघर-नलेटी (177 104)
द्वारा—नैहरनपुखर
तहसील—देहरा, जिला—कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)
"भारत"

मुद्रक : गुलाब प्रिंटिंग प्रैस
कच्चा बाजार, अम्बाला छावनी (हरियाणा)
दूरभाष : 20473

प्राक्कथनम्

सृष्टि के प्रारम्भ से ही भारत का संसार में विशेष स्थान रहा है। इस के मानवीय मूल्यों की तुलना में कोई भी देश समता न कर पाया है। इस की आध्यात्मिकता के आगे सारा संसार सिर झुकाता रहा है और अपने ज्ञान की पिपासा शान्त करने के लिये अतीत में संसार भर के जिज्ञासु लोग सैंकड़ों कष्ट झेल कर यहां आते रहे हैं। आदि काल से ही भारतीय-संस्कृति की यह पावन जाह्नवी इसी प्रकार अनवरत गति से बहती चली आ रही है। इस देश में भगवान् श्रीकृष्ण जैसे योगीश्वर, राम जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम, महात्मा बुद्ध जैसे चिन्तक, महाराजा हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी, महर्षि दधीचि जैसे परोपकारी और कर्ण जैसे दानी हुए हैं जिन की कीर्तिपताका सारे संसार में फहराती आई है। इस देश की मनु द्वारा प्रदर्शित आश्रम-व्यवस्था भारतीय संस्कृति की रीढ़ की हड्डी मानी जाती थी जिसके अन्तर्गत यहां के राजा-महाराजा अपने राज-पाट का मोह छोड़ कर तपस्या के लिये जंगलों में चले जाते थे। आज जन्म से मरण तक केवल गृहस्थाश्रम ही बन गया है। यही कारण है कि आज का मानव अशान्त है। रामायण के मूलभूत सिद्धांत जो कि हमारी संस्कृति के प्राण हैं, आज लुप्त होते जा रहे हैं। भारत को स्वस्थ रखने के लिये उन सिद्धांतों को पुनर्जीवित करना आवश्यक है। इसी में राष्ट्र का कल्याण है।

आज से लगभग पांच शती पूर्व हमारी अपनी ही दुर्बलता, फूट और विद्वेष के कारण कुछ विदेशी आक्रमणकारी इस देवभूमि पर पैर जमाने में सफल हो गये। उन्हों ने हमारी संस्कृति के मूलोच्छेदन का भरपूर प्रयत्न किया परन्तु विफल ही रहे। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत में नवजागरण आया, देशवासी परतंत्रता की बेड़ियों से उन्मुक्त होने के लिये छटपटाने लगे। त्यागी एवं बलिदानी महापुरुषों के एक सौ वर्ष के लम्बे संघर्ष के बाद 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। हमारे उदारमना महापुरुषों ने भारतीय-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में इस देश को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया। इस में रूढ़िवाद एवं धार्मिक कट्टरता के लिये कोई स्थान न था परन्तु इसी

धर्मनिरपेक्षता की आड़ में कुछ लोग धर्मान्ध बन गये और राष्ट्र को कई ओर से तोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। सांप्रदायिक कट्टरता बढती बढती शिखर तक पहुंच चुकी है। आज धर्म, भाषा और क्षेत्र के नाम पर भाई-भाई का गला काटने को तैयार है। आज अहम्भाव आगे है। सेवाभाव पीछे है। स्वार्थ आगे है राष्ट्र पीछे है। मन, वचन, कर्म की एकात्मकता लुप्त होती जा रही है। स्वार्थ का अजगर राष्ट्र को डंसने के लिये घात लगाये बैठा है।

अभी हम स्वाधीनता की आधी शती को भी पार न कर पाये हैं परन्तु राष्ट्र की स्थिति को देख कर प्रत्येक देशभक्त का मन सन्तप्त तथा व्याकुल है। इतने अल्प समय में यह क्यों हुआ, कैसे हुआ, इस का ठीक निदान करने के लिये कोई भी तैयार न है। केवल लकीर के फकीर बने, परिणाम को बिना सोचे एक विकट मार्ग पर सरपट दौड़े चले जा रहे हैं। वर्तमान में देश के लिये सब से दुर्बल पहलू यह है कि धार्मिक कट्टरता की क्षुद्रभावनाओं में संलिप्त कुछ लोग अपनी रूढ़िवादी परम्पराओं को मनवाने के लिये अब राष्ट्रविभाजन का भय दिखाने का दुस्साहस कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में जिन महापुरुषों ने इस देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त करवाया था, क्या हम उन के बलिदान को कहीं विफल तो नहीं बना देंगे ? यह प्रश्न मस्तिष्क को आन्दोलित कर रहा है।

लुप्त हो रही भारतीय-संस्कृति, हमारी प्राचीन सभ्यता एवं राष्ट्र की एकता और अखंडता की एक वेदना का परिणाम ही यह संस्कृतगद्यकाव्य है। आशा है, संस्कृत-जगत इस के प्रचार एवं प्रसार में सहयोग देकर राष्ट्रभक्ति एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन का ठीक परिचय देकर अनुगृहीत करेगा।

इस काव्य को सुचारु रूप देने में विद्वद्वरेण्य महामहोपाध्याय डा० शशीधर शर्मा जी प्राध्यापक, पत्राचार पाठ्यक्रम पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ ने जो मुझे सहयोग दिया है उस के लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

30-10-1987 विनीत—दुर्गादत्त
"गोपाष्टमी"
(कार्तिकशुदि, सं० 2044)

संक्षिप्त कथा

प्राग्दक्षिण की कुमुद्वती नगरी में महासेन नाम का राजा था। उस की रानी का नाम पद्मावती था। राजा की कोई सन्तान न थी। शाप भोग रहे तोते के कथनानुसार राजा ने मलयाचल में एक वर्ष भर अगस्त्य आश्रम में गौतम नाम मुनि की सेवा करके दो पुत्र प्राप्त किये। दोनों कुमार बारह वर्ष की आयु में ही शास्त्र-शस्त्र ज्ञान में पारंगत हो गये। अगस्त्य आश्रम में कापालिक उत्पात मचाने लगे। गौतम मुनि महासेन के राजदरबार में आया और बड़े राजकुमार सूर्यकेतु को कापालिकों का नाश करने के लिये आश्रम में भेजने को कहा। राजा ने अपने वचन का पालन करने के लिये बड़े राजकुमार को मुनि के साथ भेज दिया। सूर्यकेतु ने अपने बाहुबल से कापालिकों का संहार करके अगस्त्य आश्रम को तपस्वियों के लिये सुखदायक बना दिया। सूर्यकेतु जब घर से गया था तो एक कियारी में धान के बीज बो गया था और अपने छोटे भाई चन्द्रकेतु को कहा गया था कि जब पानी से सींचने पर भी वह कियारी सूख जाय तो उसे विपद्ग्रस्त जानकर उस की सहायता के लिये आ जाय।

एक बार आश्रम में भूतनाथ नाम का कापालिक उपद्रव मचाने लगा। सूर्यकेतु उस को मार न सका। कापालिक उसे उठा कर अपनी गुफा में ले गया। उस की दामिनी नाम की लड़की बहुत सुन्दर थी। उसकी बनाई माला में एक ही पुष्प की अनुभूति होती थी और वह तोड़े हुए फूल की पंखड़ियों को पुनः मिला कर सुन्दर फूल बना देती थी। सूर्यकेतु ने भी उस से इस कला को सीख लिया। भूतनाथ ने सूर्यकेतु को अपनी लड़की दामिनी से विवाह करने को कहा परन्तु उसने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कापालिक ने सूर्यकेतु को मारने की योजना बनाई परन्तु तोते के बताये उपाय से सूर्यकेतु कापालिक को मारकर वहां से भाग गया। रुमन्वान नाम के धर्माचार्य के कहने से कापालिक प्रथा का अन्त हो गया।

सूर्यकेतु भटकता हुआ पश्चिमोत्तर में वेत्रवती के राजा भद्रसेन के नन्दनोद्यान में पहुंच गया। वहां की मालिन ने उसे अपने पास रख दिया। भद्रसेन की रानी का नाम वसुमती था। उस की दो ही लड़कियां थीं। बड़ी प्रतिभा और छोटी सुषमा। सूर्यकेतु के सौन्दर्य और वीरता पर प्रतिभा मुग्ध हो गई। स्वयंवर की शर्त को सूर्यकेतु ही पूरी कर सका और प्रतिभा ने उसे जयमाला पहना दी। सूर्यकेतु शिकार के लिये जंगल में गया। एक तालाब पर यक्ष के रोकने पर भी पानी पीने का हठ करने से वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

कुमुद्वती के महल में सूर्यकेतु के द्वारा बोई धान्य की कियारी को सूखा देख कर व्याकुल चन्द्रकेतु माता-पिता की आज्ञा से बड़े भाई को ढूंढने के लिये चल पड़ा। उसी तोते की सहायता से नन्दनोद्यान में प्रतिभा के महल में पहुंच गया। दोनों भाइयों की रूपसमानता के कारण प्रतिभा ने उसे अपना पति ही समझ लिया परन्तु चन्द्रकेतु ने अपने उच्च चरित्र का प्रमाण दिया और अपने भाई की खोज में उसी तालाब पर पहुँच गया जहां उसका भाई मूर्छित पड़ा था। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर उसने अपने भाई को जीवित कर लिया। दोनों भाई नन्दनोद्यान को चल पड़े। रास्ते में सूर्यकेतु ने चन्द्रकेतु के चरित्र की परीक्षा लेनी चाही तो उसने योगबल से अपने प्राण त्याग दिये। प्रतिभा ऐसे चरित्रवान देवर के मृत हो जाने से बहुत दुःखी हुई। सूर्यकेतु को भी बहुत पश्चाताप हुआ। पार्वती की प्रार्थना पर शिव जी ने चन्द्रकेतु को फिर जीवित कर दिया। दोनों भाई नन्दनोद्यान में पहुंच गये। सुषमा का विवाह चन्द्रकेतु से निश्चित कर दिया गया। इस प्रकार प्राग्दक्षिण और पश्चिमोत्तर विवाह सम्बन्ध से आपस में बंध गये।

राजा महासेन ने चन्द्रकेतु पर और राजा भद्रसेन ने सूर्यकेतु पर राज्य-भार छोड़ कर वानप्रस्थ में जाने का विचार बना लिया। राजा महासेन के वानप्रस्थ में जाने के विचार का उसी तोते ने आकर अनुमोदन किया और अपने पहले जन्म के इतिहास को इस प्रकार सुनाया :—

"काश्मीर में कुंकुमवती नगरी में योगबल से परोक्ष घटनाओं को जानने वाला आनन्दबोध नाम का विद्वान ब्राह्मण था। उस की पत्नी का नाम ज्ञानवती था। ज्ञानवती वस्त्र धोने के लिये नदी पर गई थी। वहां उसने एक प्यासी गर्भिणी गौ को पैर से छू लिया। गौ बिना पानी पिये लौट गई। आनन्द बोध ने उसे 40वें वर्ष तक गर्भ न ठहरने का शाप दे दिया और तब तक गौ की सेवा करने को कहा। शाप के अन्त में मेरा जन्म हुआ। मेरी ग्यारह वर्ष की आयु में मेरे माता-पिता का देहान्त हो गया। अम्बरीष नाम का महर्षि मुझे अपने साथ आश्रम ले गया। वहां अज्ञान से मेरे हाथ से एक तोता मर गया। ऋषि ने मुझे आधी सदी तोते की योनि में रहने का शाप दे दिया और पचासवां वर्ष आप (महासेन राजा) के साथ वानप्रस्थाश्रम में बिता कर शाप से छूटने का समय भी बता दिया।"

राजा महासेन और भद्रसेन राजकुमारों पर राज्यभार छोड़ कर अपनी पत्नियों के साथ जंगल को चले गये। तोता शाप के अन्त में फिर मानव बन गया और जन्मनाम 'वागीश्वर' से उस ने राष्ट्र की अखण्डता के लिये सारे भारत का भ्रमण किया। उसे दोनों राज्यों में "राष्ट्र-गुरु" की उपाधि दी गई। दोनों राजकुमारों के राजसिंहासन पर बैठते ही भारत में सब प्रकार से रामराज्य का उदय हो गया। सब लोग प्यार से रहने लगे और सारा संसार भारत को यथापूर्व अपना सांस्कृतिक गुरु मानने लगा।

Mahamahopadhyaya, Mahakavi,
Dr. Prof. Shashidhar Sharma D.LiT, Panjab University.
Recipient Certificate of Honour,
श्री साहित्यसुधासदनम् ई० २८, सैक्टर १४ चण्डीगढ़ ।

सम्मतिः

संस्कृतवाचि 'अमरवाणीति' सार्वत्रिको व्यपदेशः । पदमिदं द्विधाऽर्हति-व्याकरणम्—अमराणां वाणी, अमरा चासौ वाणीति च । तयोः खलु शास्त्राणि पारम्पर्यञ्चाद्ये मूलम् । द्वितीयन्तु प्रत्यक्षसिद्धम् । अद्याऽपि हि राज्यतः प्रजायाश्च सुतरामरुन्तुदायामुपेक्षायाम्भजमानायामप्यस्यां भाषायां नैरन्तर्येणोदयमयन्ते नवनवाः मञ्जुलाः प्राञ्जलाः कृतयः । हिमाचलप्रदेशान्तर्गतकांगड़ा-मंडले, देहरोपमण्डले नलेटीग्रामवास्तव्यस्य श्रीमतो दुर्गादत्त शास्त्रिणः नवीना कृतिः 'वियोगवल्लरी' नवीनतमं नो निदर्शनम् ।

नैकानि काव्यनाटकपुस्तकानि कृतवतोऽपि शास्त्रिवरस्य नाद्यापि श्रान्तिं तान्तिम्वानुभवति लेखनी । 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ती" ति मार्मिकाणां प्रवादः । पद्य इव गद्येऽपि संस्कृतभारत्या भाण्डागारेऽनर्घ्याणि संभृतानि रत्नानि । दण्डिनो बाणस्य चैकैकं वाक्यमपि महतः काव्यप्रबन्धानधरीकुर्वन् प्रसिद्धं रसविदां परिषदि । परन्तु हन्त ! तेषां बोद्धारोऽपि, शिशिर इवाम्रप्रसवाः विरलायिताः सम्प्रति ।

अस्मिन्नीदृशे व्यतिकरे वयस एकसप्ततितमे हायने **वियोगवल्लरीं** प्रस्तुवन् शास्त्रिवरः कस्य न प्रशस्यः ? कृतिरियं बालानामपि कृते सुबोधायां भाषायां कृतेति किमु वक्तव्यम् । स्थाने स्थाने साम्प्रतिकव्यावहारिकजीवनादुपात्ताः मनोहारिण्योऽस्यां प्रयुक्ता उपमाः । यथा – 'प्रथमं विमानारोहणायॆमुद्यतो व्योमयात्री यथा विचित्रभावानुद्वहन्नृपो महिषी- मभाषत' (पृष्ठ 10) इत्यादौ । एवं क्वचिदनन्यं भ्रातृसौहृदम्, अपरत्र तीव्रं पातिव्रतम्, इतरत्र अनुकरणीयं गोसेवनम् सर्वत्रैव च भारतीयसंस्कृतौ दृढ आदरः कृतेः परिशीलनीयतां शंसन्ति ।

अहं श्री शास्त्रिणः शताधिकमायुस्तत्कृतेश्च सर्वत्राऽवारितं प्रसारं कामयेतमाम् ।

कार्तिक शुक्लद्वादशी 2044
2 नवम्बर, **1987**

सुधियां वशम्वदः
शशिधरः शर्मा

Dr. Ramakant Sharma
M.A. (Sanskrit and Hindi) Ph.D.

Chairman,
Sanskrit Department
Panjab University,
Chandigarh.—160014
Dated 1 11.1987

अयि-भो:

संस्कृतकाव्यवाङ्मयधाराधौतधियः सुधियः विद्वांसः पाठकाः !

महदानन्दस्यायं विषयः यन्नातिविस्तृते केवलं बाणसुबन्धुदण्डी-अम्बिकादत्तव्यासादिभिः कतिपयैरेव संस्कृतगद्यकाव्यप्रणेतृमूर्धन्यैः स्वकीयैः कृतिकर्मभिः समेधितं सुपुष्पितं सुवासितं च संस्कृतकाव्यगद्योद्यानम्। संप्रति तु हिमाचलप्रदेशवास्तव्यैः संस्कृतकाव्यामोदरसरसिकैः श्रीमद् दुर्गादत्त शास्त्रिभिः "वियोगवल्लरी"ति गद्यकाव्यं निर्माय नानालंकाररसध्वनिसदुपदेशादिभिस्त-दभिषिच्य नूतनयुगोपहारभूतया कयापि नववल्लर्या रोपणेनेव पुनरप्युल्लासितेयं सुरभारतीवाटिका संस्कृतविदुषामामोदाय भविष्यतीति कृत्वा श्री दुर्गादत्त शास्त्रिणोऽस्माभिः वर्धापनीया अभिनन्दनीयाश्च।

मन्ये च यत्सत्सु बाणभट्टादिषु गद्यमहाकाव्यप्रणेतृषु संस्कृते गद्यकाव्यलेखनं नातिसुकरं कर्म। ततश्च केवलमितिवृत्तमात्रवर्णनेन शास्त्रोक्तविधिना वा रसालंकारादिप्रतिपादनपरम्परायासमात्रेण हि कविकर्मकौशलं सार्थकतां नावहति। केवलं स्वानुभवाधिरूढैवेयमितिवृत्तोपाख्यानादिकाव्यशास्त्रसामग्री कामपि रमणीयतामाधत्ते। अतः वियोगवल्लरीतिगद्यकथाकाव्यकारेण पूर्ववर्तिनां कथाकाव्याख्यायिकादिकाव्यकर्तॄणां महाकवीनां बाणभट्टादीनां वर्णनादि-शैलीपरम्परामुपजीव्यापि तत्र यः स्वानुभवाभिनिवेशः पदे-पदे कृतः स नूतन-भारतराष्ट्रवासिसंस्कृतज्ञानां कृते नितरां रुचिकरः प्रीतिकरः स्वास्थ्यकरश्च भूयादिति मे ग्रन्थकर्तारं प्रति भूरिशः शुभाशंसनपराः शुभैषणाः।

विदुषां वशंवदः
रमाकान्त
"आंगि रसः रमाकान्तः"

वियोगवल्लरी

[1]नभःसप्तर्षिमण्डलचरणारविन्दवन्दनेप्सयेव गगनावलम्बिभवनभूषिता, तोरणालंकृतवीथिसुमनोहरा, रेणुकणशून्यसरणिसमलङ्कृता, [2]होमधूमवितत-मेघपटलावृता, विविधशास्त्रचर्चामुखरितसदना, वेदवादपरायणा, मंगलकामकामिनीकृततण्डुलहरिद्राचूर्णनानाप्रकारालेख्यविभूषितांगना, ज्ञानवारिधिलुप्तदम्भ-पाखण्डा, शीकरशमितश्रमिकजनक्लमा, काकोलूकाऽगोचरा, शुकसारिकाकपोत-चटकामयूरश्रुतिसुखनिनदा, छविमीक्षितुं देवलोकावतरितविबुधान् वातायन-नयनैर्निरीक्षमाणेव, अमलमानसश्वेतवसनचतुष्पथप्रहरिप्रदर्शितजनमार्गा, सकल-सुखोपभोगसन्तुष्टजनमानसा, भुवं भूषयन्ती-आसीद्दक्षिणस्यां कुमुद्वती नाम नगरी ।

तस्यां भुजबलपराजितारिः, अखिलशास्त्रज्ञानागारः, निरभिमानः, प्रजा-पालनतत्परः, परदुःखासहिष्णुर्, दीनेषु दयोपेतः, क्रूरेषु विग्रहवान् कोप इव, धैर्ये सागरो, बले भीमो, दाने कर्णो, मेधायां वाचस्पतिर्, नीतौ चाणक्यः, कलाप्रियो, यशसामाहर्ता, शुभगुणैः प्रजाहृदये निवसन्निव महासेनो नाम राजाभूत् ।

तस्य भूपतेर्ललिताकृतिर्, मञ्जुभाषिणी, धर्माचरणपरायणा, प्रत्यहं दीनेभ्यो दानं ददाना, देवान् श्रद्धया समर्चयन्ती, विद्वद्वृन्दं मानेन मण्डयन्ती, पातिव्रत्ये पार्वती, उदारतायां लक्ष्मीः, शीले सरस्वती, राजनीतिरहस्ये भर्तारमप्यति-शयाना पद्मावती नाम भार्याऽऽसीत् ।

महासेनभूभुजि भुवं सेवमाने तस्करत्वं सुविचाराणां न धनानाम् । विवादः शास्त्रेषु न दायादेषु । स्पर्धा गुणेषु न व्यसनेषु । अहमहमिका कर्तव्य-पालने न फलावाप्तौ । आग्रहः पुण्यार्जने न वित्तसंग्रहे । निष्ठा शुभकर्मसु न

---

1. नभ इति – नभसः आकाशस्य सप्तर्षिमण्डलस्य सप्तनक्षत्रविशेषाणां चरणकमलानां नमस्कारेच्छयेवेति भावः । एतेन भवनानां समुन्नतत्वं प्रदर्शितम् ।
2. होमेति-होमधूमस्य विततो विस्तृतो मेघपटलो मेघजालस्तेनावृता । एतेन गेहेषु क्रियमाणहोमानामाधिक्यं प्रदर्शितम् ।

आसमान में सप्तर्षिमण्डल के चरणकमलों को छूने की इच्छा से ही जैसे आकाश तक ऊंचे भवनों से सजी हुई, तोरणों से सजी गलियों से सुन्दर, धूल-हीन मार्ग से सुशोभित, होम के धूमरूपी विस्तृत बादलों से ढकी हुई, अनेक शास्त्रों की चर्चा से शब्दायमान घरों वाली, वेद के सिद्धान्तों पर चलने वाली, मंगल के लिये नारियों के हाथ से चावल और हल्दी की पीठी से बनाए गये अनेक प्रकार के लिखनुओं से सजे हुए आंगन वाली, जहां दम्भ और पाखण्ड ज्ञान से समाप्त हो चुके थे, जहां श्रमिकों की थकावट को फुहारों के जलकण शान्त करते थे, कौए और उल्लुओं से हीन, जहां तोता, मैना, कबूतर, चिड़िया और मोर का कानों को सुखदायक शब्द सुनाई देता था, जिसकी कान्ति को देखने के लिए देवलोक से आए देवताओं को जो मानों खिड़कियों की आंखों से देखती रहती थी, साफ मन वाले सफेद वस्त्रों में चौराहों पर खड़े पहरेदार जहां लोगों को रास्ता दिखाते थे, जिसमें रहने वाले लोगों का मन हर प्रकार के सुखों से सन्तुष्ट था ऐसी, धरती की शोभा को बढ़ाती हुई, दक्षिण दिशा में कुमुद्वती नाम की नगरी थी।

उस में बाहुबल से शत्रुओं को जीतने वाला, सभी शास्त्रों के ज्ञान का घर, घमंड-रहित, प्रजापालन में लगा हुआ, दूसरों के दुःख को न सहने वाला, दीनों पर दया करने वाला, क्रूरों के लिए क्रोध की मूर्ति, धीरज में समुद्र, बल में भीम, दान में कर्ण, बुद्धि में बृहस्पति, नीति मे चाणक्य, कला-प्रिय, यश को अर्जित करने वाला, अच्छे गुणों से मानों प्रजा के हृदय में निवास करने वाला, महासेन नाम का राजा था

उस राजा की सुन्दर आकृति से युक्त, मीठा बोलने वाली, धर्मात्मा, प्रतिदिन दीनों को दान देने वाली, देवताओं की श्रद्धा से पूजन करने वाली, विद्वानों का आदर करने वाली, पार्वती के समान पतिव्रता, लक्ष्मी के समान उदार, सरस्वती के समान शील स्वभाव वाली, राजनीति में पति से भी बढ़ कर ज्ञान रखने बाली पद्मावती नाम की पत्नी थी।

महासेन राजा के राज्य में चोरी अच्छे विचारों की थी धनों की नहीं। विवाद शास्त्रों मे था जायदाद में नहीं। स्पर्धा गुणों में थी व्यसनों में नहीं। कर्तव्यपालन में एक दूसरे से आगे बढ कर आता था फल के लिए नहीं। आग्रह पुण्य कमाने गें था धन कमाने में नहीं। विश्वास भले कामों में था

न द्यूतादिषु । [1]उत्पीडनमिक्षुदंडानां न प्रजाजनानाम् । [2]क्षयस्तिथीनां न जनायुषाम् । वक्रता वेणुपादपेषु न [3]मानवाङ्गेषु । [4]सौन्दर्यप्रतियोगिता हस्तसाधित-शिल्पानां न [5]कामिनीनाम् । वर्णसंकरो व्याघ्रचर्मणि न प्रजाजने । दाहो मृतदेहानां न गेहानाम् । कुटिला गतिर् भुजंगमेषु न मानवेषु । तृष्णा पावनसरित्पुण्योदकानां न भोजनानाम् ।

संसृतिसुलभसकलसुखसम्पन्नोऽपि निस्सन्ततिर् भूपतिर् मनोहरपत्रालंकृत-निष्फलतरुरिव वैराग्यमेव भेजे । एकदा रहसि महिषी राजानं बभाषे—"भर्तः ! सन्ततिं विना निष्फलमेव जीवनम् । न जाने किमपराद्धं मया प्राक्तनजन्मनि । न मे कुक्षिर्गर्भालङ्कृतः संजायते । अहमेव निमित्तं भवतां सन्ततिशून्यतायाः । चिन्तयामि स्वामिनामपरपरिणयस्य यतो हि न गतिरपुत्राणाम्" । राज्ञ्या मर्म-स्पर्शि विनीतं वचो निशम्य महीपतिरभाषत—"प्रिये ! किमभिभाषसे ? किं छायावन्मामनुगामिनीं धर्मानुगतां त्वामहं कदाचित्सपत्नीद्वितीयां कर्तुमुत्सहे ? नैतत्संभवम् । चेद्भारतीयपत्न्यः पतिव्रतधर्ममनुसरन्ति तदा पतयः पत्नीव्रतपणं कथं न पालयेयुः । एकपत्नीत्वे मे निष्ठा । परं चेत्त्वमनुमन्यसे, पुत्ररत्नावाप्तये क्वचिद् घने वने तपस्विनः सेवमानस्तपस्तप्तुमीहे येन तेऽङ्कं सूनुसमलङ्कृतं समीक्ष्य मोदमाप्नुयाम्" । महिषी प्रोवाच—"पतिदेव ! क्लिष्टं हि वन्यजीवनम् । मम निमित्तं भर्तृपादाः क्लेशभाजः स्थास्यन्तीति दूयते मे मनः" । भूपतिरवदत्—"प्रिये ! सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते । मा भूरेवं विकला त्वम् । जीवनं न केवलं सुखोपभोगाय, एतस्मिन् क्लिष्टकालोऽपि समायाति मानवं परीक्षितुम् । हरिश्चन्द्र-मोरध्वजादयो बहवो राजानो विकटपरीक्षासंकटोत्तीर्णा जगति हिमधवलं यशो लेभिरे" । भर्तुःसारसंयुतं वचो निशम्य सन्तुष्टा महिषी प्राह—"तदाहमपि

---

1. उत्पीडनमिति—शर्करार्थं रसग्रहणायेक्षूणां निपीलनम् पक्षे शोषणम् ।
2. क्षय इति—ज्योतिर्विद्याया गणिते यदैकस्मिन्नेव दिने तिथिद्वयं पतति तथा पूर्वा, क्षयतिथिर्गण्यते । तस्यां शुभकर्माणि निषिद्धानि । तिथीनामिव जनानां वयसः क्षयो नासीत् । सर्वैः पूर्णायुषो भोगादिति भावः ।
3. न मानवाङ्गेषु—पक्षवधादिरोगाभावादित्यर्थः ।
4. हस्तेति—हस्तनिर्मितकलानाम् ।
5. वर्णेति—वर्णानां मिश्रणं व्याघ्रचर्मणि । प्रजासु ब्राह्मणादिवर्णानां संकरः नासीत् । "संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च" । (श्रीमद्भगवद्गीता)
6. न मानवेषु—तेषां सरलस्वभावादिति भावः ।

जुआ आदि में नहीं। उत्पीडन गन्नों का था प्रजा का नहीं। क्षय तिथियों का था लोगों की आयु का नहीं। टेड़ापन बांस के पौधों में था मनुष्य के अंगों में नहीं। सुन्दरता की प्रतियोगिता हस्तकलाओं की थी नारियों की नहीं। रंगों की मिलावट बाघ के चमड़े में थी प्रजा में वर्णसंकर न थे। आग मृत शरीर को लगाई जाती थी घरों को नहीं। टेढ़ी चाल सांपों की थी मनुष्य की नहीं। तृष्णा पवित्र नदियों के पुण्यजल में स्नान की थी भोजन की नहीं।

संसार के सब सुखों के होते हुए भी सन्तान से हीन राजा सुन्दर पत्रों से सजे हुए परन्तु फलहीन पेड़ के समान उदास ही रहता था। एक बार एकान्त में रानी राजा को बोली—"पतिदेव! सन्तान के बिना जीवन निष्फल ही है। पता नहीं मैंने पिछले जन्म में क्या अपराध किया है जिस से मैं गर्भ धारण न कर सकी हूँ। आप की सन्तानहीनता का मैं ही कारण हूँ। मैं आप के दूसरे विवाह के बारे में सोच रही हूँ क्योंकि पुत्रहीन की गति नहीं होती है।"रानी के मर्म को छूने वाले वचन को सुनकर राजा बोला—"प्यारी, क्या कहती हो। छाया के समान मेरे पीछे चलने वाली, धर्म का पालन करने वाली आप को मैं सौकन वाली बना सकता हूँ? यह संभव नहीं है। यदि भारतीय पत्नी पतिव्रत धर्म का पालन करती है तो पति पत्नीव्रत धर्म का पालन क्यों न करें। मैं एक पत्नीव्रत में ही विश्वास करता हूँ। परन्तु यदि तुम मान जाओ तो मैं पुत्र पाने के लिये कहीं घने जंगल में तपस्वियों की सेवा करता हुआ तप करना चाहता हूँ जिससे तुम्हारी गोद में पुत्र देखकर मैं प्रसन्नता पा सकूं।" रानी बोली—पतिदेव! वन में बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। मेरे लिये आप क्लेश में रहेंगे इससे मेरा मन बहुत दुःखी हो रहा है।" राजा बोला—"प्यारी। दुःख झेल कर मिलने वाला सुख ही प्यारा लगता है। तुम इस प्रकार व्याकुल मत हो। जीवन केवल सुखभोग के लिये ही नहीं होता है। इसमें कभी कभी मनुष्य की परीक्षा के लिये कष्ट का समय भी आता है। हरिश्चन्द्र और मोरध्वज आदि राजाओं ने विकट परीक्षाओं के संकट में सफलता पा कर संसार में उज्ज्वल यश पाया है।" पति के सारभरे वचन को सुन कर सन्तुष्ट हुई रानी बोली "तो मैं भी

भवच्चरणारविन्दमनुसर्तुमीहे । पत्यनुगमनमेव भारतीयनारीधर्मः । एषा हि भर्तृहिते श्वसिति प्राणांश्च विमुञ्चति ।" राजाऽवदत्—"प्रिये उभयोः परोक्षता न शुभदा प्रतिभाति ।" राज्ञी पूर्णवाक्यमश्रुत्वैवाभणत्—"स्वामिन् ! वल्मीकाधिपतौ भुजंगमे प्रवसितेऽपि न कोऽपि जनस्तद्बिले हस्तं प्रसारयितुं प्रभवति । एवमेवावयोरगोचरतापि न राष्ट्रभये परिणंस्यति यतो हि दिग्दिगन्तव्यापिभवत्प्रतापानलभीताः शत्रवो न देशमिमं दूषितनेत्रेणेक्षितुं क्षमाः ।" राजा प्रत्यवदत्—"प्रिये राष्ट्राणां भयं न बाह्यतः । अन्तःकलह एवैतानि निपातयति । शरीरान्तःप्रकुपितदोषा[1] एव रोगिणं निघ्नन्ति न बहिः संचारिणः । संकीर्णवृत्तयो धर्मान्धा रूढिवादिनः केचिज्जना यदा कदा धर्मनाम्नि भेदभावमुत्पाद्य राष्ट्रास्थिरतायै दुष्प्रयतन्ते, अतोऽहमेकल एव गमिष्यामि । त्वमत्र स्थिता मंत्रिपरिषदनुगता राज्यकार्यभारं निरीक्षेथाः । त्वं हि सकलकला-प्रवीणाऽखिलशास्त्रज्ञानगरिमान्विता राजनीतिरहस्यं सम्यङ् निबुध्यसे । सामदान-भेददण्डाभिधाश्चत्वार उपायाः, सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रया इति षड्विधगुणाश्रितं राज्यव्यवहारगतं न किमपि ते बुद्धेर्विदूरम् ।[2] भाग्यवानहं त्वामर्धांगिनीं प्राप्य । तव सहयोगेन लघीयान् प्रतीयते मे राज्यभारः । अहमपि ते मनोरथपूर्तिसमकालमेव प्रासादं प्रत्यावर्तिष्ये ।

अत्रान्तरे प्रतीहारः प्रविश्य शिरसा प्रणम्याब्रवीत्—"स्वामिन् ! काचित्कुमारी[3] पञ्जरस्थशुककरा बहिर्द्वारे वर्तते देवपादानां दर्शनार्थिनी ।" प्रशासनकर्मणि प्रतिपदं प्रतिभाप्रमाणं प्रदर्शयन्त्या राज्ञ्या मुखं निरीक्षमाणः

---

1. दोषाः-वातपित्तकफाः ।

   "वायुः पित्तं कफश्चोक्तःशारीरो दोषसंग्रहः ।
   अन्तः प्रकुपिता एते निघ्नन्ति हि शरीरिणम् । (चरकसंहिता)

2. विदूरं-दूरवर्ति ।
3. पञ्जरस्थेति—पञ्जरस्थः शुकः करे यस्याः सा ।

आप के चरणों का अनुसरण करना चाहती हूँ। पति के पीछे चलना ही भारतीय नारी का धर्म है। यह पति के हित में जीती है और उसके हित में ही प्राणों का त्याग कर देती है।" राजा बोला—प्रिये! राज्य से हमारा दोनों का अनुपस्थित होना हित में न होगा।" राजा के पूरे वचन को बिना सुने ही रानी फिर बोली—"पतिदेव, बल्मीक (बामी) का सांप बाहर भी हो तो भी कोई भी मनुष्य उसके बिल में हाथ नहीं डाल सकता है। इस लिये हम दोनों की अनुपस्थिति में भी राज्य को कोई भय न होगा क्योंकि सारी दिशाओं के अन्त तक फैले हुए आप के प्रताप रूपी आग से डरे हुए शत्रु इस देश को मैली आंख से नही देख सकते हैं।" राजा बोला—"प्रिये! राष्ट्र को भय बाहर से नहीं हुआ करता है, अन्दर के झगड़े ही राष्ट्र को गिराने वाले होते हैं। शरीर के अन्दर कुपित हुए दोष ही रोगी को मारने वाले होते हैं, बाहर भ्रमण करते हुए नहीं। संकीर्ण वृत्ति वाले रूढ़िवादी धर्मान्ध कुछ लोग कभी-कभी धर्म के नाम पर भेदभाव पैदा कर के, राष्ट्र में अस्थिरता लाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिये मैं अकेला ही जाऊंगा। आप यहाँ ठहर कर मन्त्रिपरिषद् के साथ राज्य के काम-काज की देखभाल करती रहना। आप सारी कलाओं में चतुर, सब शास्त्रों के रहस्य को समझने वाली और राजनीति के मर्म को ठीक तरह से जानती हो। साम, दान, भेद, दण्ड यह चारों उपाय, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—छः प्रकार के गुणों से सम्बन्धित राजनीति की कोई भी बात आप से छिपी हुई नहीं। आप जैसी पत्नी को पाकर मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूँ। आप के सहयोग से राज्य का भार मुझे बहुत हल्का प्रतीत होता है। मैं भी तुम्हारे मनोरथ के पूरा होते ही राजमहल को लौट आऊंगा।"

इतने में द्वारपाल प्रवेश कर सिर झुका कर प्रणाम कर के बोला—"महाराज! तोते वाला पिंजरा हाथ में लिये हुए कोई लड़की आपके दर्शनों की इच्छा से बाहर द्वार पर खड़ी है।" राज्य के प्रशासन में सदा बुद्धि का प्रमाण देने वाली रानी के मुंह की ओर देखता हुआ

क्षणं विचिन्त्य महीपतिरवदत्-"प्रवेश्यतामभ्यन्तरं न किमपि विपरीतं पश्यामि ।" अवाप्तराजादेशः प्रतीहारो बहिरागत्य कुमारीमभाषत — "कन्ये, राज्ञाज्ञप्तासि त्वमन्तःप्रवेशाय । मामनुसर ।" इत्युक्त्वा तां प्रासादान्तः समनैषीत् । कन्या पञ्जरं भूमौ निधाय प्रणतशिरसा राजदम्पती साष्टांगं प्रणनाम । राजा कन्यारूपलावण्यविमुग्धचेता मनस्यचिन्तयत् "अपूर्व-सौंदर्यसम्पन्नेयं कन्यका । न जाने ब्रह्मणा केषु क्षणेष्वेकान्तवासमाश्रित्य साधितेयमलौकिकाकृतिः स्वकलायाश्चरमसीमां प्रदर्शयितुमिव । कीदृशोऽयम-वयवसन्निवेशः । नासिका, लोचने, दन्ता, ललाटम्-एकोऽपरमतिशेते । कौमुदीव[1] तमोऽपसारयत्येतस्या धवलता ।" महिष्यपि कनकलतामिव भासमानां तां सेर्ष्यमिव समैक्षत ।

ततो राजा प्रोवाच –"कुमारि, किं ते नाम, कास्ते पिता, का जातिः, कुतः किमर्थञ्चात्रागमनम् ?" कन्या प्रत्युवाच –"राजन् ! शाद्वलग्रामवासिनो मत्स्यजीविनो[2] वयम् । दामोदरधीवरस्य माधुरी नाम कन्याहम् । झंझावात-प्रताडितं, मत्स्यजिघृक्षया नद्यां जालमाक्षिपतः पितुर्नौकानिपतितं शुकमिमं करुणालिप्तमानसो जनको गेहं समानयत् । पारिजातनामाऽयं कीरो न जाने केन कर्मणा विहंगमयोनिमुपागमत् । सर्वशास्त्रवेत्ताऽयं भूतं भविष्यच्च विशदवाचि वदति । यतो हि महीपतिः सकलरत्नानां निधिरिति मत्वा मे पित्रादिष्टाहमपूर्वप्रतिभासमलंकृतं विहगमिमं महाराजाधिराजायोपहारीकर्तुम्"। एतच्छ्रुत्वा मुदिता महिषी समीपस्थपरिचारिकामवदत्—"नलिनि ! गच्छ त्वमभ्यन्तरं कन्यायै प्रियोपहारसंभारमानेतुम्" । एवमाज्ञप्ता सा पञ्जरकारागारगं शुकं तिर्यङ्नेत्रेण निरीक्षमाणा मन्थरगत्या प्रासादकक्षान्तः

---

1. कौमुदी-ज्योत्स्ना । "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना" इत्यमरः ।
2. मत्स्यजीविनः—मत्स्यैराजीविकोपार्जनपरायणाः ।

पलभर सोचकर राजा बोला—"उसे अन्दर ले आओ, इसमें कोई बुरी बात नहीं है।" राजा की आज्ञा पाकर द्वारपाल बाहर आकर लड़की को बोला—"राजा ने तुम्हें अन्दर जाने की आज्ञा दे दी है। मेरे पीछे आ जाओ"। ऐसा कह कर उसे अन्दर ले गया। कन्या ने पिञ्जरे को धरती पर रख दिया और राजा तथा रानी को साष्टांग प्रणाम किया। कन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ राजा मन में सोचने लगा—यह लड़की वहुत ही सुन्दर है। पता नहीं ब्रह्मा ने एकान्तवास के किन क्षणों में यह अनोखा शरीर अपनी कला की अन्तिम सीमा दिखाने के लिए ही जैसे बनाया है। अंगों की बनावट कितनी अद्भुत है। नाक, आंखे, दान्त, मस्तक एक दूसरे से बढ़ कर है। इस की श्वेतता चान्दनी के समान अन्धकार को दूर भगाती है। रानी भी सोने की लता के समान चमकती हुई उस कन्या को ईर्ष्या के साथ जैसे देखने लगी।

फिर राजा बोला—"लड़की, तुम्हारा क्या नाम है, तुम्हारे पिता का क्या नाम है, तुम्हारी क्या जाति है, कहां से किस लिये आई हो।"

कन्या ने उत्तर दिया—"महाराज, हम शाद्वल ग्राम में रहने वाले मछेरे हैं। मैं दामोदर मल्लाह की कन्या हूं। मेरा नाम माधुरी है। मेरा पिता मछलियां पकड़ने के लिए नदी में जाल फैंक रहा था। उसी समय तूफान आया और उस से लताड़ा हुआ यह तोता उसकी किश्ती में गिर गया। तब दयाभाव से मेरा पिता इसे घर ले आया। पारिजात नाम का यह तोता, प्रतीत नहीं किस कर्मयोग से पक्षी की योनि में आ गया है। सब शास्त्रों को जानने वाला यह भूत और भविष्य की बातें स्पष्ट वाणी में बोलता है। राजा ही सारे रत्नों का कोष होता है, इसलिये मेरे पिता ने मुझे अनोखी बुद्धि वाले इस तोते को आप के चरणों में भेंट करने के लिये भेजा है। यह सुन कर प्रसन्न हुई रानी ने पास में बैठी परिचारिका को कहा—"नलिनी, कन्या को भेंट करने के लिये अन्दर से उपहार ले आओ।" इस प्रकार की आज्ञा पा कर वह पिंजरे की जेल में पड़े तोते को टेढ़ी आंख से देखती हुई महल के अन्दर

प्रविश्य तदुपदिष्टमादाय महिष्याः पुरतोऽधारयत् । सापि कुमारिकायै क्षौमवस्त्रयुगलमेकविंशतिदीनारांश्च प्रदाय 'संप्रति गन्तुमर्हसि त्वं पितृसदन'-मिति तामाज्ञप्तवती । कुमारिकोपहारप्रसादं मानसे निवेशयितुमक्षमा हृदयानन्दमश्रुभिः बहिः प्लावयन्तीव भूपमनु राज्ञीं साष्टांगमभिवाद्य यथा-भिलषितं जगाम ।

राजा शुकं पञ्जराद् बहिर् निष्कास्य स्नेहं ज्ञापयितुं करेण तत्पृष्ठं संस्पृश्य-'प्रसादयतु भवती स्निग्धमधुरैः रसैर्नवागन्तुकमिम' मित्यादिदेश विस्मयाविष्टहृदयां प्रियाम् । राज्ञी-अपि माधुरीवचःसमाकृष्टमानसा शुकवाणीं श्रोतुमधीरेव सकौतुकं तं पायसमभोजयत् । ततो भोजनपानाश्वस्तचेताः शुक एवं पपाठ :—

मलयाद्रौ तपोनिष्ठः साधुस्तिष्ठति कश्चन ।
प्रसादात्तस्य हे राजन् संततिं त्वमवाप्नुहि ॥

इत्युक्त्वा राजदम्पतिविस्मयाय सहसोड्डीयालक्ष्यस्थानं निर्जगाम । तौ शुकोत्पतनदिशं साश्चर्यमवालोकयतां परं स द्वितीयोदितविधुवत्सद्य एवा-दृश्यतां प्रायात् । प्रथमं विमानारोहणार्थमुद्यतो व्योमयात्री यथा विचित्र-मनोभावानुद्वहन् नृपो महिषीमभाषत —"प्रिये । मम प्रस्तावो भाग्यवशाच्छु-केनान्वमोदि । संप्रत्यनुजानीहि मामप्रतिरोधं तपस्विजनचरणालंकृततपोवन-वासेनात्मानममलीकर्तुम् । संततिसुखाकांक्षाकृष्टहृदया पद्मावती रोगी स्वास्थ्यलाभाय कटुकौषधमिव राज्ञो वचनमङ्गीचकार ।

अथ महीतलं, भूव्यवस्थाधिकारी कृषकप्रत्ययाय तेषां क्षेत्राणि पद्भ्यां यथा किरणचरणैः[1] परिमाप्य मरीचिमालिनि[2] भगवति भास्करेऽस्ताचलावलम्बिनि महीपतिः सायंतनसंध्यामुपासितुं देवालयं प्रविवेश महिषी च निज परिचारिका-

1. किरणेति-किरणा एव चरणाः तैः । "किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणि-रश्मयः" "पदंघ्रिचरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः ।
2. मरीचीति-मरीचय एव माला यस्य तस्मिन् मरीचिमालिनि ।

जाकर रानी के बताए उपहार ले आई और रानी के आगे रख दिये। रानी ने उस कन्या को रेशमी वस्त्रों का जोड़ा और इक्कीस मोहरें देकर "अब तुम अपने पिता के घर लौट सकती हो" इस प्रकार उसे वापस जाने की आज्ञा दे दी। कुमारी भेंट की प्रसन्नता को मन में समा सकने में असमर्थ होती हुई हृदय के आनन्द को आंसुओं से बाहर बहाती हुई जैसे, पहले राजा को और फिर रानी को झुक कर प्रणाम करके अपनी इच्छानुसार चली गई।

राजा ने तोते को पिंजरे से बाहर निकाल कर प्यार जताने के लिए उसकी पीठ पर हाथ फेर कर "आप इसे स्निग्ध, मधुर रसों से सन्तुष्ट करो" ऐसी रानी को आज्ञा दी। माधुरी के वचन से आकृष्ट हुई, तोते की वाणी सुनने के लिए अधीर रानी ने कौतुक के साथ उसे खीर खिला दी। फिर खान-पान से सन्तुष्ट हुए तोते ने यह श्लोक पढ़ा : –

> मलय पर्वत पर तपस्या में लगा एक साधु रहता है, हे राजन् !
> आप उसकी कृपा पा कर सन्तान प्राप्त करो॥

ऐसा कह कर राजा-रानी को विस्मय में डालने के लिये शीघ्र ही उड़कर अज्ञात स्थान को चला गया। राजा-रानी तोते के उड़ने की दिशा की ओर आश्चर्य से देखने लगे परन्तु वह द्वितीया के चन्द्रमा के समान शीघ्र छिप गया। पहली बार विमान यात्रा के लिये तैयार व्योमयात्री के समान विचित्र भावों को लिए हुए राजा रानी को बोला "प्रिये, मेरे प्रस्ताव का भाग्यवश तोते ने अनुमोदन कर दिया है। अब मुझे बिना किसी रुकावट के तपस्वियों के चरणों से पवित्र तपोवन में निवास करके अपने आपको निर्मल बनाने की अनुमति दे दो।" सन्तान के सुख को चाहने वाली रानी ने स्वास्थ्यलाभ के लिये रोगी जैसे कड़वी औषध को, राजा के वचन को स्वीकार कर लिया।

इसके बाद जमीन से सम्बन्धित अधिकारी किसानों के विश्वास के लिये उन के खेतों को कदमों से जैसे, अपनी किरण रूपी चरणों से धरती को माप कर भगवान सूर्य के अस्त होने पर राजा सांयकाल को संध्या करने के लिये मन्दिर में चला गया और रानी अपनी परिचारिकाओं

नुगम्यमानाऽवरोधनमुपागमत्[1]। ज्ञानिनः कमंडलूनादाय कुशैर्जलाभ्युक्षणं विदधानाः संध्योपासनतत्परा अदृश्यन्त। महिला गोदोहनावसाने मन्दिरेषु दीपकान् प्रदीपयितुं प्रतस्थिरे। नभसि तारकाः सागरांभसि जलबुद्बुदवदुदीयमाना अवालोक्यन्त। महादेवभालभूषणं विधुरपि व्योममण्डलमलञ्चकार। मंदिरेषु शंखध्वनिर् घंटानादश्च श्रवणविवरमपूरयताम्। जना दिवसपरिश्रमश्रान्तभुजा देवालयेष्वार्तिक्यं वन्दमाना नवां स्फूर्तिमलभन्त। महिला देवस्तुतिमगायन्। खगाः सकलदिवसं परिभ्रम्य शिशुचिन्ताकुला नीडानि प्रति प्रचेलुः।[2] काकः ज्योतिःपातेन प्रकृतिं निन्दितुमारब्धः। उलूको दृष्टिलाभेन मुमुदे। चन्द्रिका धरां धवलयन्ती नितरां शुशुभे। सागरतरंगा निशामौनं बभञ्जुः। एवं प्रकृतिर् दिवसविपरीतं रात्रिपटं वातुं तन्तुवाय इव सकलसंभारान् प्रसारयामास।

अथ प्रहरद्वयेऽतीते सकलनगरी निद्राब्धौ[3] निलिल्ये। रजतपर्यंकास्तृतविविधसुगन्धसुवासितपुष्पालङ्कृतशय्यायां निद्रार्थं परिगतो भूपतिः शुकवचनाकृष्टचेताः सततं प्रयतमानोऽपि स्वापं न लेभे। जले मत्स्यवद् वामं दक्षिणं परिवर्तमानः पलान् निनाय। तत उपात्तकरुणेव निद्राऽभिसारिकेव सुगुप्तं तन्नयनयोः प्रविवेश। नयनमीलनानन्तरमेवार्धचन्द्रालङ्कृतमूर्धा, गंगापानीयाप्लावितजटो, भस्मावृताङ्गस्त्रिपुरारिः-राज्ञः प्राक्तनजन्मशुभकर्मणः फलमिव वक्तुं समागत्य 'वंशवृद्धये विहगवाचमनुयाहि' इति स्वप्ने ऽभिधायान्तर्दधे। स्वप्नदर्शनानन्तरं प्रबुद्धस्त्रिनयनदर्शनैर्जागृतात्मा प्रसन्नताविकसितमनाः महीपतिरपहृतसंपद्गेहाधिपतिर् ज्योतिर्विद्द्वयात्समानं लाभप्रदं वचो निशम्य वर्धितोत्साहो यथा कीरेण प्रकीर्तितं[4] स्मरहरा[5]नुमोदितममोघ-

1. अवरोधनम्—अन्तःपुरम्। "स्त्र्यगारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम्" इत्यमरः।
2. काक इति—काको रात्रौ न पश्यति उलूकश्च दिवसे न वीक्षते।
3. निलिल्ये—निममज्ज। लिङ् श्लेषणे।
4. कीरेण प्रकीर्तितं—शुकोक्तम्।
5. स्मरहरः—महादेवः।

के साथ अन्तः पुर को चली गई। ज्ञानी लोग कमंडलुओं को ले कर कुशा से पानी के छींटे देते हुए संध्योपासना में लग गये। नारियां गौओं को दोह कर मंदिरों में दीपक जलाने के लिये चल पड़ीं। समुद्र के पानी में झाग के समान आसमान में तारे दिखाई देने लगे। महादेव के मस्तक का भूषण चान्द भी आकाश को सुशोभित करने लगा। मंदिरों में शंख की आवाज तथा घंटियों का शब्द कानों में गूंजने लगा। दिन भर के परिश्रम से थके हुए लोग मंदिरों में आरती का अभिवादन करते हुए नई स्फूर्ति पाने लगे। महिलाएं देवताओं की स्तुति करने लगीं। पक्षी दिन भर घूम कर बच्चों की चिंता से व्याकुल घोंसलों को चल पड़े। कौआ ज्योति के खो जाने से प्रकृति की निन्दा करने लगा। उल्लू दृष्टि के लाभ से प्रसन्न होने लगा। चान्दनी धरती को उजला बनाती हुई शोभा देने लगी। समुद्र की लहरें रात की चुप्पी को तोड़ने लगीं। इस प्रकार प्रकृति ने दिन के विपरीत रात्रि रूपी कपड़ा बुनने के लिये बुनकर के समान सब सामग्री को बिखेर दिया।

इस के बाद दो पहर बीतने पर सारी नगरी नींद की गोद में समा गई। चांदी के पलंग पर बिछी अनेक प्रकार की सुगंध से सुवासित फूलों से सजी सेज पर सोने के लिये लेटा हुआ राजा तोते के वचन से खिंचे हुए मन वाला लगातार प्रयत्न करता हुआ भी न सो सका। पानी में मछली के समान दाएं-बाएं करवट बदलता हुआ पलों को बिताने लगा। तब मानों दया करके ही नींद अभिसारिका के समान चुपचाप उस के नेत्रों में प्रवेश कर गई। आंख लगते ही मस्तक में अर्ध चन्द्रधारी, गंगा के पानी से भीगी जटा वाले महादेव जी मानों राजा के पूर्वजन्म के शुभ कर्म का फल बताने के लिये ही आकर "वंशवृद्धि के लिये पक्षी के वचन का पालन करो" ऐसा स्वप्न में कह कर अन्तर्धान हो गये। स्वप्न के बाद जागे हुए महादेव के दर्शन से जागृत आत्मा वाले प्रसन्नता से भरे मन वाले राजा ने चुराई हुई संपत्ति वाले, दो ज्योतिषियों से एक समान लाभदायक वचन को सुनकर बढ़े हुए उत्साह वाले घर के मालिक के समान तोते के द्वारा कहे गये वचन को महादेव से अनुमोदित अमोघ

फलं विज्ञाय वनगमनाय मनोऽविचलमकार्षीत् । उत्थाय रजतपात्रसलिलाभ्युक्षितनयनो हस्तपादौ प्रक्षाल्य कृताचमनीयो गृहदेवतां नमस्कृत्य कक्षाद् बहिर्जगाम । गाढं प्रसुप्ता महिषी[1] तस्करापह्रियमाणालंकरणवधूरिव तथ्यमिदं न बुबुधे । राज्ञोऽभिप्रायमजानन्तो भयवेपमाना द्वारपालाः किमपि वक्तुं न प्राभवन् । परेंगितज्ञानकुशलास्ते मुख्यद्वारमुद्घाट्य भूपतौ निर्गते पुनरवरुद्धमकार्षुः । भूपालं तारमण्डलमाजीविकोपार्जनाय दूरदेशं प्रयान्तं पुत्रं पिता यथा निर्निमेषमपश्यत् । चंद्रिका परोपकारधिया चन्द्रभयं परित्यिज्य प्रतीहारिणीव राज्ञो मार्गं दर्शयन्ती राजभक्तिवमिवादर्शयत् ।

प्रभाते राज्ञो निर्गमनसमाचारो नगर्यां जले तैलबिन्दुरिव प्रासरत् । जना विविधानुमानपरायणा अन्योन्यं मन्दवाचि-अभाषन्त । कश्चिदवदत् – 'प्रजाप्रियो राजा संन्यासमाश्रयत्' । अपरोऽभणत् – 'नहि नहि संततिशून्यो महीपतिर्विरक्तो राजप्रासादं तत्याज' । तृतीयोऽभाषत – 'नैवं, नरेशः संतानावाप्त्यये क्वचित्तपस्तप्तुं प्रवव्राज । सिद्धे समीहिते निशान्ते भास्कर इव पुनः प्रत्यावर्तिष्यते' । एवं विकलप्रजा बहुविधमन्वमिनोत् ।

प्रत्यूषे कमलिनी भास्करस्यैव भर्तृप्रथमदर्शनार्थमायाता महिषी कक्षं शून्यं विलोक्य धरातलस्यूतपादेव[2] स्तब्धाभवत् । कामवियुक्तरतिरिव महाराजविरहाकुला शुकवचनस्य स्मरन्ती मनोभावान् रुष्टभार्येवान्तरेव[3] निगूहमाना यथाकथञ्चिद् धैर्यं दधार । ततः प्रभातचर्यां विनिवर्त्य देवानाराध्य कृतमंगला भर्तुः सकुशलप्रत्यागमनं संप्रार्थ्य पत्युर्मनोऽनुकूलं राज्यभारं बोढुं कृतसाहसा प्रतीहारमादिदेश मंत्रिपरिषदमामंत्रयितुम् । परिषदि केवलं षण्मंत्रिणः ।

---

1. तस्करेति – तस्करैः चौरैः अपह्रियमाणानि अलंकरणानि यस्यास्तादृशी वधूरिव ।
2. धरातलेति—धरातले स्यूतौ पादौ यस्याः सा धरातलस्यूतपादा ।
3. निगूहमाना—अपरेभ्यः सुगुप्तं धारयन्ती । गुह् संवरणे । उभयपदी ।

फल वाला जान कर वन जाने के लिये अपना मन निश्चल बना लिया। उठ कर चांदी के पात्र के पानी से आंखों को छींटे दे कर हाथ पैर धोकर, आचमन करके, गृह देवता को नमस्कार करके कमरे से बाहर चला गया। गाढ़ी नींद में सोई रानी, चोरों से चुराये जा रहे भूषणों वाली बहू के समान इस तथ्य को न जान सकी। राजा के अभिप्राय को न जानते हुए, डर से कांपते हुए द्वारपाल कुछ भी न बोल सके। दूसरों के इशारे को जानने में चतुर उन लोगों ने मुख्य द्वार को खोल कर राजा के निकल जाने पर फिर वैसा ही बन्द कर दिया। तारामण्डल, आजीविका के लिये दूर देश को जाते हुए पुत्र को पिता के समान राजा को मानों बिना पलक के देखने लगा। चांदनी दूसरों के उपकार के विचार से चान्द का भय छोड़ कर द्वारपालिन के समान राजा को मार्ग दिखाती हुई मानों राजभक्ति दिखाने लगी।

प्रातः राजा के नगर छोड़ने का समाचार सारी नगरी में पानी में तेल की बूंद के समान फैल गया। लोग अनेक प्रकार के अनुमान लगाते हुए आपस में धीमी वाणी में बोलने लगे। कोई कहने लगा—"प्रजा के प्यारे राजा ने संन्यास ले लिया।" दूसरा बोला "नहीं नहीं, संतान से हीन होने के कारण विरक्त हुए राजा ने राजमहल को छोड़ दिया।" तीसरा बोला—"नहीं ऐसा नहीं; महाराज संतान की प्राप्ति के लिये तप करने के लिए कहीं जंगल में चले गये। इच्छा पूरी होने पर रात्रि के अन्त में सूर्य के समान फिर लौट आएंगे।" इस प्रकार व्याकुल प्रजा अनेक प्रकार से अनुमान करने लगी।

प्रभात में कमलिनी सूर्य के जैसे पति के प्रथम दर्शन के लिए आई हुई रानी कमरे को खाली देखकर इस प्रकार स्तब्ध हो गई मानों उस के पैर धरती के साथ सी दिये गये हों। काम से वियुक्त रति के समान महाराजा के वियोग से व्याकुल, तोते के वचन को याद करती हुई मन के भावों को रूठी हुई पत्नी के समान अन्दर ही छिपाती हुई जैसे कैसे धीरज करने लगी। फिर प्रभातचर्या से निवृत्त होकर, देवताओं की पूजा करके, मंगल मनाकर, पति के कुशलतापूर्वक महल में लौटने की प्रार्थना करके पति के मन के अनुकूल राज्यभार संभालने का साहस कर के द्वारपाल को मन्त्रिपरिषद् को बुलाने के लिये आदेश दे दिया। परिषद् में केवल छः ही मन्त्री थे।

ते सर्वेऽपि प्रबुद्धा विद्वांसश्चाणक्यवद्राजनीतिरहस्यकुशलास्त्यागिनो विवेकिनश्चरित्रवन्तश्च । न तेषां पदलिप्सा न धनलिप्सा । नेर्ष्या न कलहः । केवलं प्रशासनमेव तेषां धर्मः । कर्मचारिणो धूपगन्धसुवासितसभाकक्षं पुष्पमालाभिः सुसज्जयामासुः । राजचिह्नाग्रतो ज्वलद् घृतज्योतिः सविवेकं कर्त्तव्यपालनमादिशत् । कक्षनभस्तलं कलापूर्णविधिना चित्रितं शुशुभे । भूतले सिंहचित्राकीर्णं घनक्षौमवास आगन्तुकमनोऽमोहयत् । पूर्वोच्चकोणे महाराजरजतसिंहासनं व्यराजत । नीचैरक्षोटकाष्ठविनिर्मिताऽऽसन्दिका इन्द्रधनुराकारे[1] कक्षशोभामवर्धयन् । विज्ञाः कर्मचारिणः 'महिषी महाराजसिंहासने नोपवेक्ष्यति' इति मनसाऽवबुध्य तद्राजासनान्तिकेऽपरवेत्रासनं धारयामासुः । यथाकालं मंत्रिणः स्वीयासनानि जगृहुः । पूर्वापेक्षया ते पितरि प्रवसिते[2] पुत्रवद् गम्भीराकृतयोऽवालोक्यन्त । ततो महिष्यंगरक्षकानुगम्यमाना तत्रागत्य राज्ञो रजतपादुकायुगलं प्रणम्य शीर्ष्णि, चूडामणिमिव[3] सिंहासने संस्थाप्य निकटस्थवेत्रासनमलञ्चकार । स्वागतोत्थिता मंत्रिणोऽपि पुनरासनान्यगृह्णन् ।

अथ राज्ञी प्रोवाच – "विज्ञा मंत्रिणः ! महाराजोऽस्मत्परीक्षार्थं राज्यभारं मयि निक्षिप्य स्वल्पकालायाऽज्ञातवासमाश्रयत् । विवेकिनो भवन्तः स्वयम् । राज्यप्रशासनकार्यं यथा पूर्ववन्निर्बाधं प्रचलेत्तथा प्रयतन्ताम् । न कोऽप्युत्कोचं गृह्णीयात् । न कूटविक्रयः स्यात् । वणिजोऽनुचितलाभं नार्जयेयुः । अधिकारिणः कर्मचारिणश्च स्वकर्त्तव्यं सनिष्ठं पालयेयुः । न्यायालयेषु हस्तक्षेपो न स्यात् । उद्योगा उत्तरोत्तरं वर्धेरन् । प्रजायाः कोऽपि मानवः केनापि प्रकारेणोत्पीडितो-

---

1. इन्द्रधनुराकारे—गोलाकारे ।
2. प्रवसिते—प्रवासं गते ।
3. चूडामणिम् – शिरोभूषणम् ।

वे सभी जागरूक, विद्वान्, चाणक्य के समान राजनीति के रहस्य को समझने वाले, त्यागी ज्ञानवान और चरित्रवाले थे। न उनको पद की चाहना थी, न धन की इच्छा थी। न ईर्ष्या थी न परस्पर झगड़ा था। केवल प्रशासन करना ही उनका काम था। कर्मचारियों ने धूप के गन्ध से सुवासित सभा कक्ष को फूल मालाओं से सजा दिया। राजचिह्न के आगे जग रही घी की ज्योति सावधानता से कर्तव्य-पालन का आदेश दे रही थी। कमरे का उपरि भाग कलापूर्ण ढंग से चित्रित था। धरती पर शेर के चित्र वाला गलीचा आने वालों के मन का हरण कर रहा था। पूर्व भाग के ऊंचे कोणों में महाराज का सिंहासन सजा था। नीचे अखरोट की लकड़ी से बनी हुई कुर्सियां गोलाकार में कमरे की शोभा को बढ़ा रही थीं। बुद्धिमान कर्मचारियों ने 'रानी महाराजा के सिंहासन पर न बैठेगी' ऐसा मन से सोचकर राजासन के समीप ही दूसरी कुर्सी रख दी। समयानुसार मंत्री लोग अपने आसनों पर बैठ गये। पहले की अपेक्षा आज वह पिता के चले जाने पर पुत्र के समान गम्भीर दिखाई दे रहे थे। फिर रानी अंगरक्षकों के साथ वहां आ कर राजा की चाँदी की खड़ाऊं को नमस्कार कर के सिर पर चूड़ामणि के समान सिंहासन पर रख कर पास रखी कुर्सी पर बैठ गई। स्वागत के लिए उठे हुए मंत्री भी फिर बैठ गये।

इसके बाद रानी बोली—"बुद्धिमान मंत्रीगण! महाराजा हमारी परीक्षा के लिये राज्यभार मुझ पर छोड़कर कुछ समय के लिये अज्ञातवास को चले गये हैं। आप ज्ञानवान हैं। राज्य के प्रशासन का काम पहले की तरह बिना किसी बाधा के चलाने का प्रयत्न करें। कोई रिश्वत न लेने पाए। कूट विक्रय न हो। व्यापारी लोग अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न न करें। अधिकारी और कर्मचारी अपने कर्त्तव्य का निष्ठा से पालन करें। न्यायालयों में दखल न दिया जाय। उद्योग आगे से आगे बढ़ते चलें। प्रजा के किसी भी मनुष्य को कोई कष्ट न हो।

न भवेत् । आयातनिर्यातनीतौ किमपि परिवर्तनं नापतेत् । अर्थव्यवस्था[1] विश्रृंखलतां न व्रजेत्[2] । भ्रष्टाचारभुजगः फणां नोन्नमेत् । एषः[3] पयोदजलबिन्दुवदुपरि प्रसूतोऽध आयाति । चेन्नभो निर्मलं धरणी स्वतोऽपङ्किला[4] । विहायसि दूषिते पृथिव्याः कुतोऽम्लानता कुतश्च तत्र सुखानुभूतिः । गार्ग्यनसूयासीता-सावित्रीपदरजःकणपावनभारते वेश्यावृत्तेर्नामापि नोदीयात् । ये जना एतद्घृणितवृत्तये ऊढा अनूढा वा युवतीः प्रत्यक्षं परोक्षं वा सवञ्चनं कुप्रेरयन्ति ते पुरुषा महिला वा यथापूर्वं संक्षिप्तश्रवणानन्तरमचिराच्छूल आरोप्य समापनीया येन नायं कलङ्को जनाज्जनं प्रसरन् देवभूमिमिमां स्पृशेत् । मिथ्याभिमानिनः सनयना अप्यन्धसमा भविष्यन्निमीलितेक्षणाः पंडितम्मन्या अपि[5] 'शुचेर्दश्च' सूत्रार्थमबोधमाना राष्ट्रमंगलमनपेक्ष्य ये जना अस्पृश्यताकुठारेण जातीयपादपं छेत्तुं दुष्प्रयतन्ते, तेभ्यो निर्धारितदण्डः श्लथतां न व्रजेत् । मांसमदिराशून्यमंडलोपमण्डलेभ्यो दीयमानानुदानराशिं दशसहस्रदीनारैर्वर्धयन्तु । मंत्रिणो महिषीनिर्दिष्टं सकलं लोकमंगलाकाङ्क्षया पुनर्वसु-भणितमग्निवेशभेलजतुकर्णपराशरहारीतक्षीरपाणयो[6] भूर्जपत्रेष्विव संचिकासु व्यलिखन् । ततो जलपानमनु राज्ञी सुरपतिर्देवसंसदमिव सभां विससर्ज । मंत्रिणः पूर्वतोऽपि समधिकनिष्ठां धारयन्तः स्वकार्यभारमीक्षितुं मंत्रालयान् प्रययुः ।

मलयाचले घनं वनम् । विविधजातीयपादपाः स्पर्धयेव नभः स्प्रष्टुं तत्परा अदृश्यन्त । क्वचित् कलभा अर्भकवदक्रीडन् । क्वचिद् वनमहिषा विषाणपातितवल्मीकश्रृंगा निरङ्कुशा अभ्राम्यन् । शिखण्डिनो जलधर

---

1. विश्रृंखलतां-शिथिलतामिति भावः ।
2. भ्रष्टाचार एव भुजगः सर्पः ।
3. पयोदो मेघः ।
4. विहायसि-आकाशे ।
5. "शुचेर्दश्च" उणादिसूत्रम् । शोचतीति शूद्रः । विद्याबुद्धिहीनो यः पश्चात्तापपरायणः स एव शूद्रः इति भावः ।
6. पुनर्वसुनोक्तम् आयुर्वेदशास्त्रम् ।

आयात-निर्यात नीति में कोई परिवर्तन न हो। अर्थव्यवस्था छिन्न भिन्न न हो भ्रष्टाचार का सांप अपने फन को न उठाए। यह बादल में पानी की बूंद के समान ऊपर जन्मा हुआ नीचे आता है। यदि आसमान निर्मल हो तो धरती अपने आप ही कीचड़ से हीन होगी। यदि आसमान ही दूषित हो तो धरती पर मैल कैसे न होगी और वहां सुख की अनुभूति भी कैसे होगी। गार्गी, अनसूया, सीता, सावित्री के चरणों के धूलिकणों से पवित्र भारत में वेश्यावृत्ति का नाम भी न सुनाई दे। जो लोग इस घृणित वृत्ति के लिये विवाहित अथवा अविवाहित युवतियों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ठगी के साथ गन्दी प्रेरणा देते हैं, वह चाहे नर हो या नारी हो, पहले के समान ही उन की संक्षिप्त बात सुनने के बाद शूली पर चढ़ा कर उन्हें समाप्त कर दिया जाय जिससे यह कलंक एक दूसरे से आगे चलता हुआ इस देवभूमि को छूने न पावे। मिथ्याभिमानी, नेत्रों के होते हुए भी अन्धे, अपने भविष्य से मूंदी हुई आंखों वाले, अपने आप को पंडित समझते हुए भी 'शुचेर्दश्च' इस सूत्र के अर्थ को न जानने वाले, राष्ट्र की भलाई की परवाह न करते हुए जो लोग अछूत के कुल्हाड़े से अपने जातीयवृक्ष को काटने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनके लिये जो दण्ड निश्चित किया गया है, उस में ढील न हो। मांस और मदिरा का सेवन न करने वाले जिला और तहसील के लिये जो अनुदान राशि निश्चित की गई है उस में दस हजार मोहरों की वृद्धि कर दी जाय"। मंत्रियों ने रानी की बताई प्रत्येक बात को अपनी फाइलों में उसी प्रकार लिख लिया जैसे लोक मंगल के लिये पुनर्वसु के द्वारा बताए गये आयुर्वेद को अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षीरपाणि ने भूर्जपत्रों पर लिख लिया था। फिर जलपान के अनन्तर रानी इन्द्र देवसंसद को जैसे सभा को छोड़ कर चली गई। मंत्री पहले से भी अधिक निष्ठा को लिये हुए अपना कार्य भार देखने के लिये मंत्रालयों को चले गये।

मलयाचल में घना वन। अनेक जाति के वृक्ष एक दूसरे की स्पर्धा से ही जैसे आसमान को छूने के लिये तत्पर दिखाई देते थे। कहीं हाथी के बच्चे बालकों के समान खेल रहे थे। कहीं वन के भैंसे सींगों से बामी के शिखरों को उखाड़ते हुए बेरोकटोक घूम रहे थे। मोर बादलों की गर्जना से प्रसन्न हुए

निनदानन्दिताः प्रसारितपक्षा अनृत्यन्। क्वचिद्[1]विपुलकायवराहा भूमिरहस्यं ज्ञातुमिव [2]तुण्डेन धरातलं विलिखन्तोऽवालोक्यन्त। पञ्चाशत् क्रोशानुल्लंघ्य भूपतिस्तद्वनं तपोभूमिपरिवर्तितमिवाद्राक्षीत्। क्वचिद्धोमगन्धः। क्वचिद्धूपगन्धः। क्वचिद्[3] विविधकुसुममकरन्दवासितधरातलम्। क्वचिच्चटकानिनदः। क्वचित्पिककलकूजितम्। क्वचिदुड्डीयमानाः कपोताः। क्वचिच्च मन्दगत्या स्वमहत्त्वं साधयन्तो राजहंसा नयनपथमाजग्मुः। चन्दनतरुगन्धो राज्ञो मनोऽहरत्। असौ तत्रत्यबदरीपादपतलनिषण्णो घटिकाद्वयं विश्रम्याभ्यर्णस्रोतसो जलं निपीय स्वलक्ष्यान्वेषणतत्परोऽग्रतो लतामण्डपे निमीलितनयनं पद्मासनस्थं धरावलम्बितप्रलम्बजटं दीर्घश्मश्रुमुन्नतभ्रुवं विस्तृतललाटं तपःशोषितकायमस्थिशेषं दधीचिमिव गौतमाभिधानं मुनिं ददर्श। अत्रान्तरे स एव शुकः समागत्यापठत्—

स्थानं तत्त्वमवाप्तोऽसि यदर्थं प्रेरितो मया।
अभीष्टावाप्तये राजन् सेवां कुरु तपस्विनः॥

एवमभिधायोड्डीय निर्जगाम। राजा मनसि साश्चर्यं "राजप्रासादे धीवरकन्योपहारीकृतः स एवायं शुकः प्रतीयते। न जाने मे प्राक्तनजन्मनः केन कर्मणायं संकटे साहाय्यमाचरति। अस्तु प्राप्तोऽहं ममाभीष्टस्थलम्। अत्र विश्रब्धः सन् मुनिसेवयात्मानं संतोषयिष्यामि।

ततोऽसौ मुनिं सपादस्पर्शमभिवादयामास। परं स नेत्रे नोदमीलयन्न च वाचा किमपि बभाषे। ततो राजा अदृष्टोऽनुक्तो वा कथमेनं परिचरिष्यामीति कार्याकार्यविवेकविकलो मनस्यचिन्तयत्—"महात्मानो वर्षाणि यावत् समाधिस्थास्तिष्ठन्ति। अहमभाषितोऽपि निकटे कुटीर—

---

1. विपुलः स्थूलः कायः शरीरं येषां ते विपुलकायाः।
2. तुण्डेन-मुखेन।
3. विविधकुसुमानां मकरन्देन सुवासितं धरातलं—भूभागः।

पक्षों को फैला कर नाच रहे थे। कहीं भारी शरीर वाले सूअर मानों भूमि के रहस्य को जानने के लिये तुण्ड से धरती को कुरेदते हुए दिखाई देते थे। पचास कोस चलने के बाद राजा ने उस वन को तपोभूमि में बदला हुआ देखा। कहीं होम की सुगन्ध थी, कहीं धूप की वास थी। कहीं अनेक प्रकार के फूलों की धूलि से सुगन्धित धरातल था। चिड़ियों की चीं चीं थी। कहीं कोयल की मीठी तान थी। कहीं कबूतर उड़ रहे थे। कहीं मन्दगति से अपने महत्त्व को बताते हुए राजहंस सामने से आ रहे थे। चन्दन के पेड़ों की सुगन्ध राजा के मन को हर रही थी। वह वहां बेर के पेड़ के नीचे बैठ गया। वहां दो घड़ी विश्राम करके पास के चश्मे से पानी पीकर अपने लक्ष्य को ढूंढने में लगा हुआ जब आगे गया तो लतामण्डप में आंखें बंद करके पद्मासन में बैठे हुए, धरती को छूती हुई लम्बी जटाओं वाले, लम्बी दाढ़ी और ऊंची भौंहों वाले, विस्तृत मस्तक वाले, तप से सूखे शरीर वाले, अस्थिशेष दधीचि के समान गौतम नाम के मुनि को देखा। इतने में वही तोता आ कर इस प्रकार पढ़ने लगा—

"जिस स्थान के लिये मैंने आप को प्रेरणा दी थी वहां तुम पहुंच चुके हो।
हे राजा, अपने मनोरथ को पाने के लिये तपस्वी की सेवा करो" ॥

ऐसा कह कर उड़ कर चला गया। राजा मन में आश्चर्य के साथ सोचने लगा--राजमहल में मल्लाह की कन्या ने जो तोता मुझे भेंट किया था, यह वही प्रतीत होता है। प्रतीत नहीं मेरे पूर्व जन्म के किस कर्म से यह संकट में मेरी सहायता कर रहा है। अच्छा अब मैं अपने अभीष्ट स्थान पर आ गया हूं। यहां निडर होकर मुनि की सेवा से अपने आप को सन्तुष्ट करूंगा।

फिर उसने मुनि के चरण छूकर उसको प्रणाम किया। परन्तु उसने न आंखें खोलीं और न मुंह से कुछ बोला। तब राजा को यह समझ न आए कि वह मुनि के बिना देखे या बोले कैसे सेवा करेगा। फिर मन में सोचने लगा "महात्मा लोग वर्षों तक समाधिलीन रहते हैं। मैं बिना बुलाया हुआ भी पास ही एक कुटिया

मेकं विनिर्माय बुद्धिबलेनैतस्य संकेतमाश्रित्य सेवापरायणः स्थास्यामि।" ततो जिज्ञासागृहीतचेताः कतिचित्पदान्यग्रतः प्रयातोऽमलसलिलपूर्णं शैवालशून्यं प्रकृतेः साक्षाद्दर्पणमिवैकं स्रोतोऽपश्यत्। तन्मध्यस्थकमलवृन्दं राजसभाप्राप्तासनपण्डित इव सौभाग्यं मेने। नलिनानि हसन्तीव मनोऽहरन्। नातिदूरे स्वभावसुलभगतिं विदधाना राजहंसाः स्थानशोभामवर्धयन्। राजा ऽचिन्तयत्- "अहं दैवयोगात् स्वर्गमेव समायातः। एतद्देवस्थले कथं व्यवहर्तव्यं किमाचरणीयमिति मया सावधानेन भवितव्यम्। न जनसाधारणोऽयं प्रदेशः। कच्चित् कश्चित्प्रमादो न स्यात्। मुनयः कुपिताः शापमपि ददति। प्रपितामही मम बाल्यकाले मामेवमश्रावयत्। 'राजप्रासादात् सप्ततिक्रोशदूरस्थघने वनेऽस्त्येको ऽगस्त्याश्रमः। तत्र मुनयो निवसन्ति। तत्रैकं पार्वतीस्रोतः। भगवती गौरी यदा कदा तत्र स्नातुं समायाति।' अनुमिनोमि प्रपितामही परिचायितं तदेवेदमम्बुसरणम्। किं भगवता महादेवेन स्वप्ने शुकवचनमनुसर्तुं प्रेरितोऽहं यदेतत्स्थलं प्रापितस्तस्यास्ति कश्चित्सम्बन्ध एतत्स्रोतसा? नूनमस्त्येव। मम भाग्योदयचिह्नान्यवलोक्यन्ते। परमहं स्रोतो[1]ऽभ्यर्णे न निवत्स्यामि। ममात्र स्थितिः गौर्या अप्सरसां चात्रागमने बाधां जनयिष्यति"। इति विचिन्त्याग्रतः प्राचलत्।

बहवो लतामण्डपाः। मालतीजपाचम्पासुमनो-गन्धः सकलस्थलं वासयामास। [2]पवनान्दोलितलतापुष्पमकरन्दपातकोमलभूतले पदं पदं स्खलनभीतिः। हरितशष्पावृतभूभागः प्रकृत्या विश्रामक्षणान्नेतुमास्तृतक्षौमवास इवान्वभूयत। दाडिमपुष्परक्तस्थलं धरानवोढया

---

1. अभ्यर्णे-समीपे। 2. पवनेति-पवनेन वायुना आन्दोलितानां प्रकम्पितानां लतानां पुष्पाणां मकरन्दस्य पुष्पधूल्याः पातेन कोमलं भूतलं तस्मिन्।

बनाकर बुद्धिबल से इस का संकेत समझ कर सेवा में लगा रहूंगा। तब कुछ आगे जानने की इच्छा से कुछ पैर आगे जाकर निर्मल पानी से भरे हुए शैवाल से हीन, प्रकृति के दर्पण के समान एक पानी के चश्मे को देखा। उसके बीच का कमल समूह राजसभा में पद प्राप्त करने वाले पंडित के समान अपना सौभाग्य मानता था। कमल जैसे हंसते हुए मन को मुग्ध कर रहे थे। समीप ही अपनी स्वाभाविक गति में चलते हुए राजहंस स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। राजा सोचने लगा "मैं दैवयोग से स्वर्ग में ही आ गया हूं। इस देवस्थान में मुझे कैसे क्या कुछ करना है, यह सावधानी से देखना पड़ेगा। कहीं भूल न हो जाय। क्रोध में आए मुनि लोग शाप भी दे देते हैं। मेरी परदादी बचपन में ऐसा सुनाती थी राजमहल से सत्तर कौस दूर घने वन में अगस्त्य आश्रम है। वहां मुनि लोग रहते हैं। वहां एक पार्वती का स्रोत है। भगवती पार्वती कभी कभी वहां स्नान के लिये आती है।" मेरा विचार है कि परदादी से सुनाया यह वही चश्मा है। क्या महादेव ने स्वप्न में तोते के वचन का अनुसरण करने की प्रेरणा देकर जो मुझे इस स्थान पर पहुंचाया है उसका इस स्रोत से कोई सम्बन्ध है? निश्चय ही है। मेरे भाग्योदय के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। परन्तु मैं इस चश्में के पास निवास न करूंगा। इससे पार्वती और अप्सराओं के यहां आने में बाधा होगी।" ऐसा सोचकर आगे चल पड़ा। बहुत सारे लता मण्डप। मालती, जपा, चम्पा फूलों की सुगन्ध सारे स्थान को सुगन्धित कर रही थी। वायु से हिल रही बेलों की पुष्पधूलि से कोमल धरती पर पैर पैर में गिरने का डर था। हरे घास से ढका हुआ भूभाग ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्रकृति ने अपने विश्राम के क्षण बिताने के लिये रेशम का वस्त्र बिछाया हुआ हो। अनार के फूलों से लाल भूमि ऐसी प्रतीत होती थी मानों धरती

पदतलकृतोऽलक्तराग इवालक्ष्यत । राजाऽचिन्तयत् "अत्र निष्कुटीरवासोऽपि नापत्करः । निबिडलताकुञ्जा वर्षातपवारणायालम्[1] । अथ चेन्ममाराध्यो ऽनावृते तिष्ठति, मम कुटीरवासो न संगतः । इतस्ततः स्थलमपि सन्निहितम् । महात्मनः परिचर्या सुकरा स्थास्यति ।"

भूपतिः प्रातश्चर्यां विनिवर्त्य [2]प्रत्यहं महात्मने पुष्पफलान्युपहारीकर्तुं समायातो घटिकाद्वयं तच्चरणयोरुपविश्य विश्रमस्थलं प्रत्यावर्तत । मुनिर्गौतमो ऽपि वाचाऽभाषमाण उपासकं साभिप्रायनयनाभ्यां समैक्षत । शष्पशय्यागतो भूपालो निशायामप्सरसां पदध्वनिमश्रृणोत् प्रातश्च भूतलपतितमकरन्दे[3] ललित-पदपंक्तिमप्यवालोकत ।

प्रासादे विरहवेदनाकुला राज्ञी प्रतिपलं भर्तुरस्मरत् । तस्य सकुशलप्रत्या-गमनं कामयमाना प्रत्यहं गौरीं पूजयन्ती, बालान् मिष्ठान्नं भोजयन्ती स्वयमेक-वारमेव भोजनमाददाना धरातल एवाशेत । राज्यप्रबन्धं सविशेषं निरीक्ष-माणा तथ्यानि ज्ञातुं[4] विभावर्यां गुप्तवेषेऽभ्राम्यत् । प्रजापि महाराजापेक्षया महिष्या अधिकतरमबिभेत् । साऽचिन्तयत्-"यावन्महाराजो नायाति, अहं राज्य-प्रशासनगतं सर्वं सावधानं निरीक्षिष्ये । प्रत्यागतमहाराजाय नैषदपि दूयमानं स्यात् । न जाने मे भर्ता तत्र कानि कष्टानि भुङ्क्ते ।" सा मंत्रालयगता स्वयं प्रशासनपद्धतिं व्यैक्षत । निरलसाः कर्मचारिणः प्रजाकार्यमविलम्बं साधयन्तः प्रशंसामालभन्त । सकलं द्रुतगत्या प्राचलत् । प्रशासनपरिधौ सर्वे समानाः न मित्राणामुपकारो न चामित्राणां प्रतीकारः । मैत्री विद्वेषो वा गृहेषु, न कार्यालयेषु । सेवानियमाः सर्वेषां समानाः । सकलसंप्रदाया [5]अभिन्नविधिव्यवहाराः । अस्पृश्य-

---

1. अलं-पर्याप्ताः । 2. प्रत्यहम्-अहः अहः प्रति प्रत्यहं प्रतिदिनम् । 3. मकरन्दे पुष्पधूलौ । 4. विभावर्यां निशायाम् । 5. अभिन्नः समानो विधि-व्यवहारो-न्यायव्यवहारो येभ्यस्ते ।

रूपी दुल्हन ने अपने पैर में मेंहदी लगा रखी हो। राजा सोचने लगा-यहां बिना कुटिया के भी निवास किया जा सकता है। घने लताकुञ्ज वर्षा और धूप के निवारण के लिए पर्याप्त हैं। और फिर जब मेरा आराध्य देव खुले आकाश में बैठा है तो मेरा कुटिया में रहना ठीक नहीं है। यहां से तपस्थली भी नजदीक है। महात्मा की सेवा करना आसान रहेगा।

राजा अपनी प्रभातकाल की चर्या से निवृत्त होकर हर रोज महात्मा के लिए फल-फूल भेंट करने के लिए आता, दो घड़ी उसके चरणों के पास बैठ कर अपने विश्राम स्थान को लौट जाता था। मुनि गौतम वाणी से कुछ न बोलता हुआ अभिप्राय भरे नेत्रों से अपने उपासक को देखता था। घास की सेज पर सोया राजा रात्रि के समय अप्सराओं के पैरों की आवाज को सुनता था और प्रभात में धरती पर पड़ी फूलों की धूलि में सुन्दर पदपंक्ति को भी देखता था।

महल में रानी को पल-पल अपने पति की याद आती थी। उसके कुशल-पूर्वक लौटने की इच्छा करती हुई, प्रतिदिन पार्वती की पूजा में लगी हुई, बच्चों को मिठाई खिलाती हुई, स्वयं दिन में एक ही बार भोजन करती हुई, धरती पर ही सोती थी। राज्य प्रबन्ध को विशेष कर देखती हुई, पति के समान ही सचाई को जानने के लिए रात के समय गुप्त वेश में घूमती थी। प्रजा भी राजा की अपेक्षा रानी से अधिक डरती थी। रानी सोचती थी - "जब तक महाराज नहीं लौटते हैं, मैं राज्य के प्रशासन की हर बात को सावधानी से देखूंगी। लौटे हुए महाराज के लिए कोई भी बात मन को चुभने वाली न हो। पता नहीं पति वहां किन-किन कष्टों को भोग रहे हैं।" वह मंत्रालय में जाकर स्वयं प्रशासन की पद्धति को देखती थी। कर्मचारी आलस को छोड़ कर प्रजा के काम को शीघ्र करते हुए प्रशंसा पाने लगे। सब कुछ तेज गति से चलने लगा। प्रशासन के घेरे में सब एक समान थे। न मित्रों का उपकार था न विरोधियों का प्रतिकार था। मित्रता या विद्वेष घर पर था कार्यालयों में नहीं। सेवा नियम सबके लिए समान थे। सभी संप्रदायों के लिए एक प्रकार का कानून था।

ता परधनेषु न मानवेषु । [1]बलात्कारः पुण्यार्जने न परदारेषु । [2]पक्षपातो मासेषु न जनेषु ।[3] आरक्षणं धान्यानां न धनानाम् । गवेषणं भूगर्भधातूनां नावगुणानाम् । तत्र नानाचारः । नोत्कोचः । न वेश्यावृत्तिः । न मदिरापानं न चास्पृश्यताभिशापः । राज्ञी प्रतिमासं प्रथमदिवसे मंत्रिपरिषदाऽमंत्रयत् । मंत्रिणोऽधिकारिणश्चा[4]हमहमिकयाऽमलचरितदृष्टान्तं प्रस्तोतुं प्रायतन्त ।

गौतमपरिचर्यापरायणस्य भूपतेः वर्षमेकं व्यतीयाय । [5]समान्तिमनिशि प्रसुप्तो महाराजः स्वप्ने शुभशकुनानि समवैक्षत । कश्चिद्देवो दधिकलशं राज्ञे समुपाहरन्नवदत्-"राजन् सफला ते तपस्या । उत्तीर्णस्त्वं परीक्षायां हरिश्चन्द्रवत् । प्रभाते महात्मन आप्तवाक्यमिवोदात्तवाचं श्रोष्यसि ।" स्वप्नाश्वस्तो महाराजो वृक्षारूढो जनो नतशाखाऽवलम्बिफलं करेण स्प्रष्टुमिवाधीरोऽवशिष्टयामिनीमनिद्रित एवानैषीत् । प्रत्यूषोत्थितो विनिवृत्तचर्यः स्नातः समुपासितसंध्यो महात्मन उपहारीकर्तुं पुष्पाञ्जलिमादाय दर्शनार्थी प्रचचाल ।

विचित्रमेव तत्प्रभातम् । वाति स्म मन्दपवनः । निर्मलं नभः । पवनप्रकम्पिततरुशाखापतितकुसुमानि राज्ञः सत्कारमिवाकुर्वन् । मकरन्दगन्धसुवासितमार्गे पिकः पंचमस्वरेण राज्ञो मनोरथपूर्तिमिवोदघोषयत् । राज्ञि समागते मुनिर्गौतमस्तपस्तेजसा दीप्यमाननयने उन्मील्य राजानं सस्नेहमवलोकमानो मन्दगिराऽवदत्-"राजन् ! प्रसन्नोऽहं ते परिचर्यया । महद्धैर्यं प्रादर्शयस्त्वम् । याचस्व समीहितम् ।" राजाऽवदत्-"भगवन् ! त्रिकालवेत्तारो महात्मानः । न किमप्यगम्यं तपोधनानाम् । भवदनु-

---

1. बलात्कार इति-पुण्यार्जनार्थं लोकानां बलात्प्रवर्तनम् । प्रेरणाप्रदानमिति भावः । पक्षे बलाद्धर्षणम् । सतीत्वभंगप्रयासः ।
2. पक्षयोः कृष्णशुक्लपक्षयोः पात आगमनम् । अथ च पक्षपातः स्वीयजनान् प्रति अनुचितरुपेण सहानुभूतिप्रदर्शनम् ।
3. आरक्षणमिति—धान्यानामन्नानाम् आ समन्तात् रक्षणं कीटादिभ्य इत्यर्थः । धनानां न । तेषु जनानां मोहाभावात् अथ च तस्कराणामभावादिति भावः ।
4. अहमहमिकया-स्पर्धया ।
5. समान्तिमनिशि—वर्षान्तरात्रौ ।

अछूत का भाव दूसरों के धन में था, मनुष्यों में नहीं। बलात्कार पुण्य प्राप्त करने में था दूसरों की स्त्रियों में नहीं। कृष्ण शुक्ल पक्ष का पात महीनों में था लोगों में पक्षपात (लिहाज) न था। आरक्षण अनाज का था धन का नहीं। खोज धरती के अन्दर की धातुओं की की जाती थी अवगुणों की नहीं। वहां अनाचार न था। रिश्वत न थी। वेश्यावृत्ति न थी। मद्यपान कोई नहीं करता था और अस्पृश्यता का कलंक न था। रानी प्रत्येक मास के पहले दिन मंत्रीपरिषद से मंत्रणा करती थी। मन्त्री और अधिकारी एक दूसरे से बढ़कर निर्मल चरित्र दिखाने का प्रयत्न करते थे।

गौतम मुनि की सेवा में लगे हुए राजा का एक वर्ष बीत गया। अन्तिम रात्रि को स्वप्न में सोए हुए महाराजा ने शुभ शकुन को देखा। कोई देवता दही का कलश हाथ में लिये हुए राजा को भेंट करता हुआ बोला—"राजा, तुम्हारी तपस्या सफल है। आप महाराजा हरिश्चन्द्र के समान परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए हो। प्रभात में सिद्ध वाक्य के समान महात्मा की उच्च वाणी को सुनोगे।" स्वप्न से आश्वस्त हुआ महाराजा उसी प्रकार अधीर हो गया जैसे पेड़ पर चढ़ा हुआ मनुष्य झुकी हुई शाखा में लटके हुए फल को हाथ से छूने के लिए उतावला हो जाता है और बाकी रात को उसे नींद नहीं आई। प्रातःकाल उठकर अपनी चर्या से निवृत्त होकर स्नान करके और संध्या करके महात्मा को भेंट करने के लिए फूल लेकर दर्शनों के लिए चल पड़ा।

वह प्रभात विचित्र ही था। मन्द वायु चल रही थी। आकाश निर्मल था। वायु से प्रकम्पित पेड़ की शाखाओं से गिर रहे फूल मानों राजा का सत्कार कर रहे थे। पुष्प धूलि के गन्ध से सुवासित मार्ग में कोयल पंचम स्वर में मानों राजा के मनोरथ की पूर्ति की घोषणा कर रही थी। राजा के आने पर गौतम मुनि ने तप के तेज से प्रकाशमान नेत्रों को खोल कर उसे प्यार से देखते हुए धीमी वाणी में कहा—"राजा, आप की सेवा से मैं प्रसन्न हूं। आपने बहुत धीरज दिखाया है। अपना मनचाहा मांग लो।" राजा बोला—"भगवन्, महात्मा लोग तीनों कालों की बात जानते हैं। तपस्वियों से कोई बात छिपी न रहती है। आप की कृपा से

कृपया सकलसाधनसम्पन्नोऽहम् । परं [1]शून्यांका मे भार्या । अपुत्रस्यापूर्णमेव राज्यसुखम् । शून्यः प्रतिभाति मे संसारः । अनुगृह्णन्तु भवन्तो मां पुत्रवरदानेन ।" गौतमः क्षणं विचिन्त्य पुष्पमेकमादाय प्राह—"आदेहि पुष्पमिदम् । एतद्गन्धग्रहणेन गर्भधारणक्षमा ते भार्या पुत्रं जनयिष्यते । परमवधेयं, यदि घ्राणैकरन्ध्रेण गन्धग्रहणं तदैकः सुतः । प्रमादवशादुभाभ्यां गृहीतगन्धा तु पुत्रद्वयं प्रसविष्यते ।" राजा मनस्यचिन्तयत्—"एतस्मिन्नव[2]धानस्य कोऽर्थः ? अथ च प्रमादवशादित्यस्य कोऽभिप्रायः ? सूनुयुगलं को न कामयते ? किं मुनिर्मां परीक्षायां निपातयितुकामः ? विचित्रमेतत्' ।" अपरस्मिन्नेव क्षणे मुनिरवदत्—"चेत्सुतद्वयं तदैकस्तनयो मह्यमर्पणीयो भविष्यति । चेदङ्गीकरोषि, गृहाणैतत् ।" भूपतिर्भर्तारमनापृच्छ्य पितृसदनप्रयातभार्यां पुनराह्वयितुं तत्पतिरिव पुष्पमादातुं महति भ्रमसागरे न्यपतत् । सोऽचिन्तयत्—[3]"एतत्सरजःकणपायसभोजनम् । पुत्रद्वयमानन्दप्रदम् । परमेकं महात्मने कथं प्रदास्यामि" इत्यजातस्यैव मोहो राजानमग्रहीत् । "किं मे प्रिया स्वीकरिष्यति पणमेतम् ? आस्तां तावत् साधनां सफलयितुं मुनेः प्रसादस्त्वादेय एव । अपरं यथासमयं निर्धारयिष्यते ।" इति विचिन्त्य मुनिं नमस्कृत्य 'यथा देवाज्ञा' इति भाषमाणो वरदानानुगतं पुष्पं सादरं जग्राह ।

रात्रौ भूशय्यासीनमहिषी वहतेऽधीरं मनः । भर्तुर्मधुरस्मृतिर् गाढमगृह्णात्तद्धृदयम् । साऽचिन्तयत्—"ममैव निमित्तं प्रोषितो, न जाने भर्ता कदा समायास्यति । सलिलशून्या सरित्, निश्चन्द्रयामिनी, अशाद्वलधरा, निर्गन्ध पुष्पं निष्फलतरुरिव च भर्तारं विना नीरसमेव जीवनं वहते कामिनी ।

---

1. शून्यः अङ्कः उत्संगो यस्याः सा । संततिशून्येति भावः ।
2. अवधानस्य – दत्तचित्ततायाः ।
3. एतदिति-एतादृशं पायसभोजनं यस्मिन् स्वादभंगाय धूलिकणाः क्षिप्ताः स्युः ।

मेरे घर में सब कुछ है परन्तु मेरी पत्नी की गोद सूनी है । बिना पुत्र के राज्य का सुख अधूरा ही है । संसार मुझे सूना जैसा लगता है । पुत्र का वरदान देकर मुझ पर कृपा करो । गौतम (पल भर सोच कर एक फूल लेकर) बोला—"यह फूल ले लो, इसकी गन्ध से तुम्हारी पत्नी गर्भ धारण में समर्थ होती हुई पुत्र पैदा करेगी । परन्तु ध्यान रहे, यदि नाक के एक छेद से गन्ध को लेगी तो एक पुत्र पैदा होगा । परन्तु भूल से नाक के दोनों छेद से सुगन्ध लेने की स्थिति में दो पुत्र पैदा होंगे ।" राजा मन में सोचने लगा "इस में ध्यान रखने की क्या बात है और फिर भूल होने का क्या अर्थ है ? दो पुत्रों को कौन न चाहता है ? क्या मुनि मेरी कोई परीक्षा लेना चाहता है ? यह तो विचित्र बात है" । दूसरे ही क्षण मुनि बोला—"यदि दो पुत्र होंगे तो उनमें से एक मुझे देना पड़ेगा । अगर स्वीकार है तो इस फूल को ले लो" । राजा जैसे कोई पति उस से बिना पूछे पिता के घर गई पत्नी को बुलाने में दुविधा में पड़ जाता है उसी प्रकार फूल के लेने न लेने के भ्रम में पड़ गया । वह सोचने लगा—"यह धूल कणों से भरा खीर का भोजन है । दो पुत्र आनन्द को देने वाले हैं परन्तु एक को महात्मा के लिये कैसे सौंपूंगा" । इस प्रकार बिना जन्मे ही पुत्र के मोह ने राजा को पकड़ लिया । "क्या मेरी भार्या इस शर्त को स्वीकार कर लेगी ? अच्छा कोई बात नहीं । अपनी साधना की सफलता के लिये मुनि की कृपा के चिह्न को लेना ही है । शेष समयानुसार सोचेंगे" । ऐसा सोच कर मुनि को नमस्कार करके "जैसे देव की आज्ञा है" ऐसा कहते हुए वरदान रूप फूल को आदर के साथ ले लिया ।

रात को धरती पर सोई रानी का मन अधीर हो गया । पति की याद ने उसके हृदय को जकड़ लिया । वह सोचने लगी—"मेरी ही भलाई के लिये बाहर गये पतिदेव पता नहीं कब लौटेंगे । पानी के बिना नदी, चन्द्रमा के बिना रात, हरे घास के बिना धरती, सुगन्ध के बिना फूल और फलहीन पेड़ के समान पति के बिना नारी का जीवन नीरस ही होता है ।

भारवन्ति मे दिनानि । असह्या साम्प्रतं विरहवेदना । संकटे निद्रापि कुमित्र-वत्संगं परित्यजति । नायात्यसौ शुकोऽपि मामाश्वासयितुम्" । एवं ध्यायन्त्या उपालम्भवारणायेव पुष्पे सूचीव निद्रा नयनयोरनायासं प्रविवेश ।

ततः सुप्ता महिषी स्वप्नमपश्यत्—(एकस्मिन्नीडे हंसयुगलम् । हंसी गर्भिणी । आसन्नप्रसवा सा गर्भविमोचनवेदनाऽऽलिङ्गिताऽवतिष्ठते । हंसो वनाद् वनस्पतिविशेषमाहरँस्तामाघ्रातुं वदति । गन्धग्रहणप्रभावशान्तवेदना सा शिशुयुगलं प्रसूते । हंसगेहे मंगलगीतानि गीयन्ते) स्वप्नप्रबुद्धा राज्ञी तद्भाव-गवेषणपरायणा निशालम्बतां निन्दन्ती अवशिष्टक्षपां [1]विकलैवानयत् ।

अथासीत्प्रभातम् । शंखघंटानिनदमुखरितानि मन्दिराणि । महिला विशिष्टस्थालीषु पूजासामग्रीमावहन्त्यो देवालयान् प्राचलन् । महिष्यपि [2]करधृतरजतपात्रपरिचारिकाऽनुगम्यमाना शिवालयं प्राप्य महादेवं गौरीं च सम्पूज्य रात्रिस्वप्नं भगवते सुगुप्तं निवेद्य यथापूर्वं बालान् भोजयित्वा दीनेभ्यो दानं प्रदाय गृहं प्रत्यागताऽलिन्दे समुपाविशत् । पत्ये भोजनं त्वरमाणा पत्नी करेण चुल्ल्यामनलकाष्ठमिव निशास्वप्नः स्मृत्या मुहुर्मुहुस्तस्या हृदयमस्पृशत् । तस्या वामचक्षुर् भृशमस्फुरत् । अत्रान्तरे स एव शुकः कुतश्चिदागत्यापठत् —

श्वो महीपः समायाति पुरीं स्वां वनवासतः ।
सज्जा तिष्ठतु राजानं सत्कर्तुं सकला प्रजा ॥

इत्याभाष्य विद्युद्वेगेनोत्पत्य[3] लोचनागोचरतां जगाम । राज्ञी 'अहो ! स एवायं मे भाग्यप्रवक्ता शुकः । मम सन्तप्तमानसं स्ववचःपयोबिन्दुना शीतलीकृत्य यथापूर्वमनु-

---

1. क्षपां-रात्रिम् ।
2. करेति-करयोर्धृतानि रजतपात्राणि याभिस्ताः करधृतरजतपात्राः परिचा-रिकास्ताभिरनुगम्यमाना ।
3. लोचनेति-लोचनागोचरताम्-अदृश्यताम् ।

मुझे दिन बहुत भारी प्रतीत हो रहे हैं। अब वियोग की पीड़ा को सहन करने में असमर्थ हूं। संकट में नींद भी खोटे मित्र के समान साथ छोड़ देती है। वह तोता भी मुझे सान्त्वना देने के लिए न आ रहा है"। इस प्रकार ध्यान करती हुई उसके उलाहना को मानों दूर करने के लिए फूल में सूई के समान नींद आसानी से उसके नेत्रों में प्रवेश कर गई।

फिर सोई हुई रानी स्वप्न देखने लगी—(एक घोंसले में हंसों का जोड़ा। हंसी गर्भवती है। उसका प्रसव समीप है। वह गर्भविमोचन की पीड़ा से ग्रस्त है। हंस जंगल से एक बूटी लाकर उसे सूंघने के लिये कहता है। उस वनस्पति के सूंघने से उसकी पीड़ा शान्त हो जाती है और वह दो शिशुओं को जन्म देती है। हंस के घर में मंगलगीत गाये जाते हैं) 'स्वप्न से जागी हुई रानी उसके भाव की खोज करती हुई, रात्रि की दीर्घता की निन्दा करती हुई बाकी रात को बेचैनी से ही व्यतीत करती है।

अब प्रभात हो गया। मन्दिर शंख-घंटियों की आवाज से मुखरित हो गये। नारियां विशेष थालियों में पूजा सामग्री रखकर मन्दिरों को चल पड़ीं। रानी भी हाथ में चांदी के थाल लिये हुए शिवालय में पहुंच कर महादेव-गौरी की पूजा करके रात्रि के स्वप्न के बारे में भगवान शिव से गुप्त निवेदन कर पहले की तरह बालकों को भोजन खिला कर गरीबों को दान देकर घर लौट आई और बरामदे में बैठ गई। पति के लिये जल्दी भोजन तैयार करने में लगी हुई पत्नी जैसे हाथ से बार बार चूल्हे की लकड़ियों को हिलाती है, उसी प्रकार रात्रि का स्वप्न स्मृति से बार-बार उसके हृदय को छूने लगा। उसकी बांई आंख फड़कने लगी। इतने में वही तोता कहीं से आकर पढ़ने लगा—

कल राजा वनवास से अपनी नगरी को लौट रहा है। उस का सत्कार करने के लिए सारी प्रजा तैयार रहे।।

ऐसा कहकर बिजली के वेग से उड़कर नेत्रों से ओझल हो गया। रानी अरे ! यह वही मेरे भाग्य को बताने वाला तोता है। मेरे संतप्त मन को अपने वचन रूपी पानी की बूंद से शीतल कर पहले की तरह ही

पक्कत एव प्रययौ । अद्याहं पायसमपि नाभोजयम् । तिर्यग्योनावीदृग्विहंगमा अपि सन्ति ये दधीचिसमाः प्रत्युपकारमनपेक्ष्य लोकमंगलाय प्रयतन्ते । विधातः ! अद्भुतैव ते सृष्टिः । किमेषः कदाचिन्मे हस्ते समायास्यति ।" एवं विचिन्तयन्ती शुकवचनं निशास्वप्नेन मेलयन्ती निशावसाने कमलिनीव [1]विकसितमानसा युद्धावसाने भर्तुः सकुशलप्रत्यागमनं निशम्य पत्नीवानिर्वचनीयानन्दमग्ना श्रावितशुभसमाचाराय शुकाय धन्यदान् वितरन्ती वेत्रासनं परित्यज्य प्रासादान्तर्गतकुलदेवतां नमश्चकार ।

महीपो वर्षपरिचिताश्रमं विसृजन् स्वामिनाऽवधेः प्राक् सेवानिष्कासितः कर्मचारीवौदासीन्यं दधार । असौ शरणस्थलमण्डपं नमस्कृत्य मित्राणीव निकटस्थतरूनालिङ्ग्य प्रारेभे वनपदवीमनुसर्तुम् । पथि प्रचलन् स बहुशकुनान्यवालोकत । दक्षिणो भुजोऽविराममस्फुरत् । पादपाः पुष्पवृष्टिमकुर्वन् । शीर्षस्थजलकुंभालङ्कृता ऋषिकन्या मार्गेऽमिलन् । मकरन्दगन्धलिप्तमन्दपवनः प्राचलत् । खगा देवगिरि '[2]शिवाः सन्तु पन्थान' इत्यवदन् । गर्भिणी मृगी राज्ञो दक्षिणतस्तं स्पृशतीव निश्चक्राम । तरुतले शावकं [3]स्तन्यं पाययन्ती सिंही समवालोक्यत । भूपतिर्मुन्यर्पितपुष्पं निधिमिव संरक्षन् भार्यां द्रष्टुमधीरचेताः क्लमस्याचिन्तयन् सततं पथि-इयाय ।

राज्ञः प्रत्यागमनसमाचारः समस्तनगर्यां चन्द्रोदये चन्द्रिकेवाक्षिनिमेषेण प्रासरत् । कलाकारा नगरीं सुसज्जयितुं प्रारभन्त । वीथ्यां वीथ्यां तोरणान्यारोप्यन्त । [4]पौरा भवनानि पुष्पमालाभिरलञ्चक्रुः । महिलाः प्रांगणेषु

---

1. विकसितेति—विकसितं प्रफुल्लितं मानसं यस्याः सा विकसितमानसा ।
2. शिवाः कल्याणकराः ।
3. स्तन्यमिति—स्तनदुग्धम् ।
4. पौराः नागरिकाः ।

मुझ से बिना उपकार लिये चला गया। आज मैंने इसे खीर भी नहीं खिलाई। पक्षी की योनि में भी इस प्रकार के परिंदे हैं जो दधीचि की तरह प्रत्युपकार की चाह न करते हुए लोगों की भलाई लिये प्रयत्न करते हैं। हे विधाता, तेरी सृष्टि अनोखी ही है। क्या यह कभी मेरे हाथ में आएगा" ? इस प्रकार सोचती हुई तोते के वचन का रात के स्वप्न से तालमेल करती हुई, प्रभात में कमलिनी के समान विकसित मन वाली, युद्ध के अन्त में अपने पति के सकुशल लौटने का समाचार पाकर अवर्णनीय आनन्द में मग्न पत्नी के समान शुभ समाचार सुनाने वाले तोते को धन्यवाद देती हुई कुर्सी को छोड़ कर महल के अन्दर गई और कुल देवता को नमस्कार किया।

राजा वर्ष से जाने-पहचाने वन को छोड़ता हुआ उसी प्रकार उदास होने लगा जैसे अपने स्वामी के द्वारा समय से पहले ही सेवा से हटाया कर्मचारी उदासीनता का अनुभव करता है। वह शरणस्थल को नमस्कार कर मित्रों के समान नजदीक के पेड़ों से मिल कर जंगल के रास्ते पर चल पड़ा। रास्ते में चलते हुए उसने बहुत शकुन देखे। उसकी दाईं भुजा लगातार फड़कने लगी। पेड़ फूल बरसाने लगे। सिर पर पानी के घड़े लिये हुए ऋषिकन्याएं रास्ते में मिलने लगीं। पुष्पधूलि के सुगन्ध वाली मन्द वायु चलने लगी। पक्षी देवभाषा में 'आप का रास्ता कल्याणकारी हो' ऐसा बोलने लगे। गर्भवती हिरणी राजा के दाईं ओर से उसे छूती हुई निकल गई। पेड़ के नीचे अपने बच्चे को स्तन का दूध पिलाती हुई शेरनी दिखाई दी। राजा मुनि से दिये हुए फूल की एक निधि के समान रक्षा करता हुआ अपनी भार्या को देखने के लिये अधीर मन वाला थकावट का ध्यान न करता हुआ लगातार रास्ते में चलने लगा।

राजा के लौटने का समाचार चन्द्रमा के उदय होने पर चाँदनी के समान पल मात्र में सारी नगरी में फैल गया। कलाकार नगरी को सजाने लग पड़े। गली गली में तोरण लगाए गये। नगर के लोग अपने घरों को फूलमालाओं से सजाने लगे। नारियाँ आंगन में

गोधूमचूर्णेन विविधकोष्ठकानि विरचय्य तेषु हरिद्राचूर्णमपूरयन् । आबालवृद्ध-सकलजनाः स्वागतसंभारान् समाहर्तुं प्रारभन्त । प्रजाजनाः शुक्लद्वितीयोदित-चन्द्रमिव, नववृक्षे प्रथमोदितफलमिव, तस्करैर्दण्डभयात् प्रत्यावर्तितधनमिव राजानमीक्षितुमधीरं मनोऽवहन् । मंत्रिणो राज्ञोऽगोचरं विहितकर्मणः पुनर-वलोकनं चक्रिरे । लेखाकारा व्ययितवित्तौचित्यमाकलयामासुः । सकलनगरी दिवाकरं सत्कर्तुं शस्यश्यामलधरेव भूभृदादराय सुसज्जिताऽतिष्ठत् । महिषी स्वपरिणयानुभूतप्रमोदपुनरावृत्तिमिवान्वभवत् ।

अथ कालयोगाद् भानौ व्याहृतप्रतापे, चन्द्रसमादराय नभसि तारा-कुसुमालङ्कृते, धेनुषु गोष्ठानि प्रत्यावर्तमानासु, श्रमिकेषु गृहमागतेषु, कृषकेषु दिवसहलाकर्षणपरिश्रान्तवृषभाँस्तृणजलेन सत्कर्तुं प्रवृत्तेषु, देवपूजकेषु सायंतन-पूजाविधिसंभारानायोजयत्सु राजा पुरीप्रवेशद्वारे पदं दधार । तज्जयघोषेण सकलनगरी निनदिताऽतिष्ठत् । दीपप्रकाशो निशि दिवसभ्रान्तिमजनयत् । मंत्रिभिरनुगम्यमानो महीपः सौधद्वारं समुपागमत् । राज्ञी सपरिचारिका नीराज-नमकरोत् । एवं तया सभाजितोऽसौ प्रासादान्तः प्रविवेश ।

महासेनो भार्यां वनवासवृत्तं श्रावयितुमुत्सुकचेता अपि प्रथमं वर्षविरहाकुलपूजास्थले संध्यार्थमुपाविशत् । महिष्यपि नियमपालन-परायणा देवानपूजयत् । उभावपि नवपरिणीतदम्पत्योरिवाधीरं मनोऽधारयताम् । पाचका [1]अवगतभूपक्लमा अविलम्बं निष्पादि-तषड्रसभोजना राजदम्पती द्रुतं भोजयामासुः । ततो गोदोहनान-

1. अवगतेति—अवगतो ज्ञातो भूपस्य राज्ञः क्लमो मार्गश्रमो यैस्ते ।

गेहूँ के चूर्ण से अनेक प्रकार के कोष्ठक बनाकर उनमें हल्दी भरने लगीं। बच्चे-बूढे सभी स्वागत का सामान जुटाने में लग गये। प्रजा का मन शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा को जैसे, नये पेड़ में पहले लगे फल को जैसे, दण्ड के भय से चोरों से लौटाई हुई संपत्ति को जैसे राजा को देखने के लिये अधीर हो गया। मंत्री राजा के परोक्ष में किये गये काम को दूसरी बार देखने लगे। लेखा अधिकारी खर्च किये हुए धन के औचित्य का अवलोकन करने लगे। सूर्य का सत्कार करने के लिये खेती से हरी भरी धरती के समान सारी नगरी राजा के आदर के लिये तैयार हो गई। रानी अपने विवाह की प्रसन्नता की की पुनरावृत्ति जैसी समझने लगी।

इस के बाद सूर्य के क्षीण होने पर, चन्द्रमा का आदर करने के लिये आकाश के तारा रूपी फूलों से सज जाने पर, गौओं के अपने घरो को लौटने पर, श्रमिकों के घर पहुंचने पर, किसानों द्वारा दिन भर हल चलाने से थके हुए बैलों को घास पानी देने पर, पुजारियों के सायंकाल की पूजासामग्री इकट्ठी करने पर राजा नगरी के प्रवेश द्वार पर पहुंच गया। राजा के जयकार से सारी नगरी शब्दायमान हो गई। दीपकों का प्रकाश रात्रि में दिन की भ्रान्ति करने लगा। मंत्रियों के साथ राजा महल के द्वार पर आ गया। रानी ने परिचारिकाओं के साथ राजा की आरती उतारी। इस प्रकार रानी से सत्कार किया हुआ राजा महल के अन्दर प्रविष्ट हो गया।

महासेन का मन यद्यपि अपनी पत्नी को वनवास का समाचार सुनाने के लिये बहुत उत्सुक था तो भी पहले वह वर्ष के वियोग से व्याकुल पूजास्थल पर संध्या के लिये बैठ गया। नियमों का पालन करने वाली रानी ने भी देवताओं की पूजा की। दोनों का मन नवविवाहित पति-पत्नी के समान अधीर था। राजा की थकावट को समझते हुए रसोइयों ने शीघ्र ही षट रस भोजन तैयार कर के दोनों को खिला दिया फिर गोदोहन के बाद

न्तरं मातृस्तन्यं पातुं वत्सेव त्वरातुरा महिषी राजानं प्रश्नपूर्णनयनाभ्यां समैक्षत। तस्या भावं विज्ञाय राजाऽवदत्—"प्रिये! पंचदिवसा[1]नविरामं प्रचलन्नहं मलयाचलवनमध्यभागमवाप्तोऽगस्त्याश्रमे समाधिस्थं तपस्विनमेकमवालोके। ततः स एव शुकः समागत्य तमेव सेवितुमादिदेश। अहमपि तद्वचनं देववाक्यमिव मन्यमानस्तत्र स्थातुं मनो निश्चलं व्यदधाम्। किं वदेयं तपोधनानां तेषां वा वासभूमेः? मुनीनां नामग्रहणान्यपि पुण्यफलानि। अनवद्यानि चरितानि महात्मनाम्। तेषां सकलमनुकरणीयम्। तत्र पदे पदेऽनिर्वचनीयसुखास्वादः। वेदमंत्रध्वनिः सुखयति कर्णौ। भ्रमरगुञ्जितं हरति मनः। न तत्र [2]षड्वर्गगन्धः। मोहः शास्त्रेषु न धनेषु। मुखरता वेदपाठेषु न कलहेषु। न मात्सर्यं न विद्वेषो न चाहंकृतिः। चिन्ता मोक्षस्य न भोजनानाम्। वैरबुद्धिरवगुणेषु न प्राणिषु। विजय इन्द्रियाणां न भूभुजाम्। अधीरता पूजाकार्यविधौ न कामे। स्पर्शो मृदुकुसुमानां न कामिनीकोमलांगानाम्। तदाश्रमनिकट एव रम्यं पार्वतीस्रोतः। तत्र भगवती गौरी यदा कदा स्नातुं समायाति। तत्राप्सरसोऽपि निवसन्ति। तत्राहं मौनव्रतपरायणतपस्विनः सेवासंलग्नोऽभूवम्। दिव्यशरीरे महान्तमात्मानमपश्यम्। उन्नतललाटम्। दीर्घौ बाहू। विशाले चक्षुषी। तद्भालतेजसा तत्तपोवनं निर्दीपमपि प्रकाशं वहते। अहं प्रातस्तस्य स्नानार्थं जलं पूजार्थं च पुष्पाणि समाहरम्। असौ दिवस एकवारं फलाहारेण संतृप्तस्तिष्ठति। अहमपि निरन्नस्तत्करस्पृष्टामृतसमफलानि भक्षयन् कालमनयम्। अपरे वनवासिनस्तद्दर्शनाभिलाषिणः प्रत्यहं तत्समीपमाग-

1. अविरामं-सातत्येन।
2. षड्वर्ग :—कामक्रोधलोभमदमोहेर्ष्याः।

दूध पीने के लिये जैसे बछिया जल्दी में होती है उसी प्रकार अधीर रानी प्रश्न भरे नेत्रों से राजा को देखने लगी। उस के मन के भाव को जान कर राजा बोला—"प्रिये, पांच दिन लगातार चलता हुआ मैं मलयाचल के वन के मध्य भाग में पहुंचा। वहां अगस्त्य आश्रम में समाधि में बैठे हुए एक तपस्वी को देखा। तब उसी तोते ने आकर मुझे उग्र तपस्वी की सेवा करने को कहा। मैंने भी उसके वचन को देववाक्य जानकर वहां ठहरने के लिये अपना मन निश्चल बना लिया। तपस्वियों या उन के निवास स्थान के बारे में क्या ही बताऊं? मुनियों का नाम लेना भी पुण्यदायक होता है। महात्मा लोगों का चरित्र प्रशंसनीय होता है। उन की प्रत्येक बात अनुकरण के योग्य होती है। वहां पैर पैर में अवर्णनीय सुख का स्वाद है। वेदमंत्रों की ध्वनि कानों को सुख देती है। भौंरों की गुंजार मन का हरण करती है। वहां काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या की गन्ध न है। मोह शास्त्रों में है धन में नहीं। चंचलता वेद पाठ में है झगड़े में नहीं। न ईर्ष्या है, न विद्वेष है, न अहंकार है। चिन्ता मोक्ष की है भोजन की नहीं। वैरबुद्धि अवगुणों में है प्राणियों में नहीं। विजय इन्द्रियों की है राजाओं की नहीं। उतावलापन पूजा कार्यविधि में है काम में नहीं। स्पर्श कोमल फूलों का है नारी के कोमल अंगों का नहीं। उस आश्रम के समीप ही एक सुन्दर पार्वती का स्रोत है। वहां पार्वती कभी कभी स्नान करने के लिये आती है। वहां अप्सराएं भी रहती हैं। वहां, मैं मौनव्रत में बैठे तपस्वी की सेवा में लग गया। दिव्य शरीर में बहुत बड़ी आत्मा को मैंने देखा। ऊंचा मस्तक, लम्बे बाहु, विशाल नेत्र। उसके मस्तक के तेज से वह आश्रम बिना दीपक के भी प्रकाशमान रहता है। मैं प्रातःकाल उस के स्नान के लिये जल और पूजा के लिये फूल लाता था। वह दिन में एक ही बार फलाहार से तृप्त रहता है। मैं भी अन्न के बिना उसके हाथों से छुए हुए अमृत समान फलों को खाता हुआ समय बिताने लगा। दूसरे वनवासी उसके दर्शन की इच्छा से हर रोज उसके पास आकर

त्यानुक्ता अपि घनानन्दसमन्विताः स्वाश्रमान् निवर्तन्ते। एवं मुनिं समाराधयतो व्यत्यगच्छद् वर्षमेकं मे । [1]हायनान्तरात्रौ केनचिद्देवेनाहं स्वप्नेऽभाणिषि—"सफला ते साधना । प्रभाते मुनिमुन्मुक्तवाचं[2] द्रक्ष्यसि" । एतत्स्वप्नावलोकनवर्धितोत्साहोऽहं प्रातः कृताभिषेको मुनेर्दर्शनार्थी तदाश्रमं प्राप्तस्तं परित्यक्तमौनव्रतमपश्यम् । मुनिर्मामवलोक्य प्रसन्नचेता दन्तप्रभाभिराश्रमं धवलीकुर्वन्निवावदत्—"राजन् ! प्रसन्नोऽहं ते परिचर्यया । ब्रूहि किमहं ते करवाणि" । राजन्निति सम्बोधनेन तदन्तर्यामित्वमालक्ष्य साहसेन ते मनोरथमवोचम् । (पुष्पं प्रदर्श्य) ततस्तेनेदं पुष्पं समर्प्य निगदितम्—'एतत्कुसमगन्धमाघ्राय ते भार्या पुत्रं जनयिष्यते । एकच्छिद्रेणा घ्रातगन्धा पुत्रमेकम् । द्वाभ्यां गृहीतगन्धा तु सुतद्वयं प्रसविष्यते" । भर्तुर् वचो निशम्य हर्षिता राज्ञी प्राह—"भर्तः पुत्रद्वयवरं परित्यज्य सूनुमेकं का नारी कामयेत । विचित्रमिदम् । अहमुभाभ्यां प्राप्तगन्धा पुत्रयुगलालंकृता राजवंशं वर्धयिष्ये" । राजा ससङ्कोचमवदत्—"परं पुत्रद्वयलाभे एक स्तनयो मुनये दातव्यो भविष्यति । साम्प्रतं भवती प्रमाणम् । यथा ते रोचतेतथा कुरु" । राज्ञी पायसे क्षिप्तं लवणमिव राज्ञो वचः श्रुत्वा "मुनये पुत्रार्पणकालो यदाऽऽयास्यति तदा द्रक्ष्यावः । भविष्यच्चिन्तया वर्तमानसुखं क उपेक्षेत" । इति भाषमाणा भर्तृहस्तात्पुष्पं संगृह्य प्रसन्नमनसा गन्धमजिघ्रत् । गन्धग्रहणकाले सा ब्रह्मज्ञाने ब्रह्मजिज्ञासुरिवावर्णनीयानन्दमग्ना चित्रलिखितेवातिष्ठत् । महीपस्तद्दृश्यं पुलकितमना अपश्यत् । ततो राजदम्पती स्वभावसुलभनिद्रां भेजाते ।

---

1. हायनेति—हायनान्तरात्रौ वर्षान्तरात्रौ ।
2. उन्मुक्तवाचं—त्यक्तमौनव्रतम् ।

बिना बोले भी बड़े आनन्द को प्राप्त कर अपने आश्रम को लौटते हैं। इस प्रकार मुनि को आराधना करते हुए मेरा एक वर्ष बीत गया। साल की अन्तिम रात्रि को किसी देवता ने मुझे स्वप्न में कहा—"आप की साधना सफल हो गई है। प्रभात में मुनि को बोलता हुआ देखोगे।" इस स्वप्न से मेरा उत्साह बढ़ गया। मैं प्रातःकाल उसके दर्शन के लिये जब आश्रम गया तो उसने अपने मौनव्रत का त्याग कर दिया था। मुनि मुझे देखकर प्रसन्नचित्त वाला दान्तों की कान्ति से मानो आश्रम को सफेद करता हुआ बोला—"राजा मैं आप की सेवा से प्रसन्न हूँ। कहो मैं तुम्हारा क्या करूं"? राजन् ऐसा सम्बोधन सुनकर मैंने उसके अन्तर्यामित्व (दूसरे की बात को बिना बोले समझना) को जान कर साहस करके आप का मनोरथ बता दिया। (फूल को दिखाकर) तब उसने इस फूल को देकर कहा - "इस फूल की सुगन्ध ले कर आप की पत्नी पुत्र पैदा करेगी। एक छेद से गन्ध लेगी तो एक पुत्र, दो से लेगी तो दो पुत्र पैदा होंगे।" पति का वचन सुनकर रानी प्रसन्न हो कर बोली—

"पति देव, दो पुत्रों के वरदान को छोड़कर एक पुत्र को कौन नारी पसन्द करेगी। यह तो विचित्र बात है। मैं दोनों छेदों से गन्ध ले कर दो पुत्र पाकर राजवंश की वृद्धि करुँगी।" राजा सङ्कोच के साथ बोला—'परन्तु दो पुत्रों की स्थिति में एक बालक मुनि को देना पड़ेगा। अब आप जानो। जैसा आप को अच्छा लगता है वैसा करो।" रानी खीर में जैसे नमक डाल दिया हो, इस प्रकार राजा के वचन को सुनकर 'मुनि को पुत्र देने का समय जब आयेगा तो देखेंगे। भविष्य की चिन्ता में वर्तमान के सुख को कौन ठुकरा दे।" इस प्रकार कहती हुई ने पति के हाथ से फूल ले लिया और प्रसन्न मन से उसे सूंघने लगी। सुगन्ध लेते समय वह इस प्रकार चित्रलिखित जैसी अवर्णनीय प्रसन्नता में मग्न हो गई जैसे कोई ब्रह्मजिज्ञासु ब्रह्मज्ञान में मस्त हो जाता है। राजा उस दृश्य को प्रसन्न मन से देखता रहा। उस के बाद राजा-रानी सो गये।

अथ राज्ञी वन्ध्यलतायां पुष्पोद्गममिव पुष्यर्क्षे दधार गर्भम् । वृद्धपरिचारिका महिषीमृतुस्नानवर्जितां समीक्ष्य सुवर्णकारो धातुसंगमे स्वर्णमिवैतद्गोपनीय-मजानन् । द्वितीयमासे तस्या मन्थरा[1]गतिः । कपोलयोः श्वेतता । शरीरेऽलसता । कुचाग्रयोर्नीलिमा । शिरो भारवत् । भोजनेऽरुचिः । वमनोद्गम इति गर्भ-धारणस्य चिह्नानि स्पष्टमलक्ष्यन्त । गर्भिणी गर्भस्रावशंकाहरणक्षमपिप्पलत्वक्-चूर्णं सितामधुरकवोष्णगोदुग्धेन प्रत्यहं प्रातराददाना तिक्ताम्लवर्जं लघुभोजनं गृह्णती, उभयसंध्यमुन्मुक्तवायौ बभ्राम । देवपूजापरायणा कलाद्वयं सराजनीति-धर्मशास्त्रानुशीलनञ्चास्खलितं चकार । परिचारिकाणां प्रमोदस्य न कश्चित्पारावारः । पदं पदं गर्भिणीमन्वसरन् । कोमलप्रासादकक्षतले पादस्खलनभीत्या घनोर्णवस्त्राण्यास्तीर्यन्त । प्रासादवासिनो देवानामग्रतो-ऽस्माकं राज्ञ्या गर्भात्पुत्र एव जायेतेति प्रार्थितुमारेभिरे ।

अष्टममासे पुंसवनसंस्कारसंस्कृता महिषी [2]दिलीपजायासुदक्षिणेव व्यराजत । नगरामंत्रितसौभाग्यशीलमहिला विविधवनस्पतिसुवासितसलिलेन कृताभिषेकराज्यै बहुलोपहारानुपाहरन्त्यो मंगलगीतान्यगायन् । नवममासि गर्भभरालसा मन्दगतिर् बहिर् भ्रमणवर्जिता सा[3] दोहृदे पुंसंज्ञकपदार्थानेव ययाचे । एतेनान्तःपुरं तद्गर्भे पुत्रस्थितिं संभाव्यामन्दामोदसंदोहमभजत् परिचारिकाः सुगुप्तं प्रसूतिमनुमातुमारेभिरे । काचिदवदत् 'श्वः' । अपराऽकथ-यत्—'परश्वः' । तृतीयाभाषत –'नहि नहि तृतीयदिवसे' । भूपति-रपि मनसि विविधकल्पना वहन् परीक्षार्थी परीक्षाफल-

1. मन्थरा-शिथिला ।
2, दिलीपो रघोः पिता तस्या जाया भार्या सुदक्षिणेतिभावः ।
3. दोहृदे-गर्भिण्या इच्छायाम् ।

इस के बाद रानी ने बांझ बेल में जैसे फूल निकल आए, पुष्य नक्षत्र में गर्भ धारण कर लिया। सियानी परिचारिकाओं ने रानी को ऋतु-स्नान से वर्जित देख कर इस रहस्य का उसी प्रकार पता लगा लिया जैसे सुवर्णकार धातुओं के संगम में स्वर्ण को पहचान लेता है। दूसरे महीने उसकी चाल शिथिल हो गई। गाल सफेद हो गए। शरीर में सुस्ती छा गई। स्तनों का अग्रभाग काला पड़ गया। सिर भारी रहने लगा। भोजन में रुचि कम हो गई। उल्टी आने लगी। इस प्रकार गर्भधारण के चिन्ह साफ दिखाई देने लगे। गर्भवती गर्भ गिरने की शंका दूर करने के लिये हर रोज प्रातः पिप्पल की छाल का चूर्ण मिश्री डाले हुए गौ के कोसे दूध से लेती हुई तीक्षण और खटास से वर्जित हल्का भोजन खाती हुई प्रातः सायं खुली हवा में घूमती थी। देवताओं की पूजा करती हुई प्रति दिन दो घड़ी नियमानुसार राजनीति सहित धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करती थी। परिचारिकाओं की प्रसन्नता का कोई अन्त न था। पैर पैर गर्भिणी के साथ चलने लगीं। महल के कमरों के कोमल तल में रानी के पैर फिसलने के डर से गलीचे बिछा दिये गये। महल में रहने वाले लोग 'हमारी रानी के गर्भ से पुत्र ही पैदा हो' इस प्रकार देवताओं के आगे प्रार्थना करने लगे।

आठवें महीने में पुंसवन संस्कार की हुई रानी राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा के समान शोभा देने लगी। नगर से बुलाई हुई सुहागिन स्त्रियों ने अनेक प्रकार की वनस्पतियों से सुगन्धित जल से रानी को स्नान करवाया और उसे बहुत सारी भेंट देती हुई मंगलगीत गाने लगीं। नवमें महीने गर्भ के भार से सुस्त धीमी चाल वाली रानी ने बाहर घूमना छोड़ दिया और वह दोहद (गर्भिणी की इच्छा के रूप) में पुरुष संज्ञा वाले पदार्थों को ही मांगने लगी। इस से रनवास की नारियां उस के गर्भ में पुत्र का अनुमान लगा कर बहुत प्रसन्न रहने लगीं। सेविकाएं प्रसूति समय का गुप्त रूप से अनुमान लगाने लगीं। कोई कहती 'कल' दूसरी कहती 'परसों' तीसरी कहती नहीं नहीं, आज से 'तीसरे' दिन को। राजा भी मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएं करता हुआ परीक्षार्थी परीक्षा परिणाम की तिथि को जैसे

तिथिमिव भार्याप्रसूतिक्षणान् सोत्कण्ठं प्रत्यैक्षत । अपरप्रभाते महिषी प्रसवपीडां न्यवेदयत् । राजप्रासादः परिणामं ज्ञातुं शल्यचिकित्साकक्षगतरोगिणः स्वस्थतावृत्ताय तत्परिवार इवातुरोऽतिष्ठत् । प्रसूतिक्षणेषु महिषीमानसे [1]भर्त्रागमनपूर्वनिशानुभूतहंसीप्रसूतिस्वप्नो विलोड्यमानदध्नि नवनीतमिवोदियाय ।

अथ मेषस्थे भास्करे, बुधे कन्याराशिपरिगते, चन्द्रे वृषगे, गुरौ कर्कराशिमलंकुर्वति शुक्रे च मीनारूढे महिषी पुत्रयुगलं प्रासूत । एषो मंगलसमाचारः समस्तराज्ये वायुरिव प्रासरत् । नगर्यां गेहे गेहे मंगलगीतान्यगीयन्त । पुरुषा लोहितोष्णीषान् महिलाश्च स्थलपद्मप्रसूनरागरञ्जितदुकूलान्यधारयन् । सकललोका विविधविधिभिः सदनान्यभूषयन् । महिला मन्दिरेषु मनश्चिन्तितोपहारान् देवेभ्यः समार्पयन् । महाराजप्रमोदस्य पारावारो नालक्ष्यत । उन्मुक्तमुखः कोषो दानहेतवे । अन्नार्थिभ्योऽन्नं, धनार्थिभ्यो धनं वसनार्थिभ्यश्चाभीष्टवासांस्यदीयन्त । एकादशेऽह्नि नामकरणसंस्कारे त्रिकालज्ञज्योतिर्विद आहूयन्त । उच्चराशिपरिगतसूर्यचन्द्रबुधगुरुशुक्राणां शुभफलं भाषमाणास्तेऽवदन्—"उभौ कुमारौ वीरौ विद्वांसौ विनीतौ च भविष्यतः । सकलग्रहाः शुभफलप्रदाः परं नीचराशिस्थः शनिः कुमारयोर् वियोगं सूचयति । अपरग्रहप्रभावाद् वियोगश्च कालान्तरे संयोगे परिणंस्यति । पूर्वार्धं पितृमानसकुण्ठाकरं परमुत्तरार्धमतिसुखावहम् । ज्योतिर्विदश्चतुरक्षरनाम्नो महिमानमाकलयन्तो ज्येष्ठस्य नाम 'सूर्यकेतुः' अपरस्य च 'चन्द्रकेतुः' इति निरधारयन् ।

---

1. भर्त्रागमनेति-भर्तुरागमनात् पूर्वस्यां निशि अनुभूतः हंस्याः प्रसूते स्वप्नः ।

पत्नी की प्रसूति के क्षणों की उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे दिन प्रातः रानी ने अपनी प्रसवपीड़ा को बताया। सारा राजमहल प्रसूतिपरिणाम जानने के लिए इस प्रकार अधीर था जैसे ओपरेशन के कमरे में गये हुए रोगी का स्वास्थ्य जानने के लिये उसका परिवार उतावला हो जाता है। प्रसूति के क्षणों में रानी के मन में पति के आने से पहली रात्रि को हंसी के प्रसव का स्वप्न, मथे जा रहे दही में मक्खन के समान उदित हो गया।

इस के बाद जब सूर्य मेष राशि में, बुध कन्या राशि में, चन्द्रमा वृष राशि में, गुरु कर्क राशि में और शुक्र मीन राशि में आ गया तो रानी ने दो बालकों को जन्म दिया। यह मंगलसमाचार सारे राज्य में वायु के समान फैल गया। सारी नगरी में घर-घर मंगल गीत गाये जाने लगे। पुरुषों ने लाल पगड़ियां और स्त्रियों ने गुलाबी रंग के दुपट्टे धारण कर लिये। सब लोग अनेक प्रकार से अपने घरों को सजाने लगे। महिलाएं मन में सोची मनौतियों को देवताओं के आगे चढ़ाने लगीं। महाराजा की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। दान के लिये कोष का मुंह खोल दिया गया। अन्न की चाहना वालों को अन्न, धन चाहने वालों को धन और वस्त्र की इच्छा वालों को वस्त्र दिये जाने लगे। ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार में त्रिकालवेत्ता ज्योतिषी बुलाए गये। उच्च राशि में बैठे सूर्य, चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र के शुभ फल को बताते हुए वह बोले—"दोनों कुमार वीर, विद्वान और विनम्र होंगे। सभी ग्रह शुभ फल देने वाले हैं परन्तु नीच राशि का शनि राजकुमारों के वियोग को प्रकट करता है। दूसरे ग्रहों के प्रभाव से कुछ समय के बाद वियोग संयोग में बदल जाएगा। पूर्वार्ध माता-पिता के मन को कुंठित करने वाला है परन्तु उत्तरार्ध बहुत ही सुखदायक है।" ज्योतिषियों ने चार अक्षर वाले नाम की महिमा को समझते हुए बड़े का नाम 'सूर्यकेतु' और छोटे का 'चन्द्रकेतु' रख दिया।

फलवक्तारो दीनारशाटिकालंकरणरजतपात्रोपहारसत्कृताः समोदमानसा गृहाणि प्रययुः ।

भाग्यवद्धात्र्यौ कुमारसम्पोषणभारमधिगम्य प्रसादिते आस्ताम् । राज्ञी केवलं स्तन्यमेवापाययत् । उभयो र्ललाटपटले प्रच्छन्नतिलकं पादयोश्च पद्मचक्रचिह्ने । रूपे एतादृशी समता न भूता न भविष्यति । ज्येष्ठकनिष्ठान्तरं स्वयं जनन्यपि बोद्धुं नापारयत् । धात्र्यौ परिचयाय तत्करयोर्भिन्नं भिन्नं कंकणमबध्नीताम् । ज्येष्ठस्य हस्ते ताम्रवर्णमपरस्य च करे श्वेतवर्णम् । ते ओष्ठयोर्लावण्यचिह्नचिरारुणिमानं साधयितुं कृताभिषेककुमाराधरौ पाटलरागरंजितवासःखण्डेनारंजयताम् ।

अथ सप्तममासि प्रारभत बाललीला । एकोऽपरं [1]जिघृक्षुर् द्रुतं द्रुतमन्वसर्पत् । अग्रगोऽनुसर्पन्तं परं [2]मृगयुं मृगवदर्धपरिवर्तितग्रीवोऽपश्यत् । [3]वारितस्थलं पुनः पुनः स्प्रष्टुं प्रायतेताम् । कच्चिन्मुखे किञ्चिन्नामेलयतामिति धिया परिचारिकाः पदं पदमन्वसरन् । रुष्टौ प्रासादान्तश्चन्द्रसरसि विधुविम्बं प्रदर्श्य चन्द्रमातुलमिषेणासान्त्वयन् । रुदन्तौ काष्ठपात्रादिध्वनिनाऽ[4]वाप्तपरावधानौ तूष्णीमकारयन् । पारदर्शिकक्षभित्तौ प्रतिविम्बं निरीक्ष्य कोमलकरांगुलिभिः प्रतिग्रहीतुं प्रयतमानसूर्यकेतुं कौतुकवशात् कक्षे धारयन्तीं मातरं, चन्द्रकेतुरपि तत्सुखेप्सुः पादपमारोढुं [5]मर्कटशिशुरिवोन्नतग्रीवः सेर्ष्यमपश्यत् । तद्भावं निबुध्यमाना पद्मावती तमप्यरकक्षे धारयन्ती सुतद्वयालंकरणसुखं भेजे । अंकस्थशिशू मातृमुखं साभिप्रायं निरीक्षमाणौ रूपसादृश्यरहस्यमिवापृच्छताम् । स्नानाचरणाय रजतकुंडपरिगतौ सलिलं थपथपाय-

---

1. जिघृक्षु : – ग्रहीतुमिच्छुः । 2. मृगयु :– व्याधः ।
3. वारितस्थलं :– निषिद्धस्थानम् 4. अवाप्तेति :– अवाप्तं प्राप्तं परमपरं ध्यानं याभ्यां तौ । अपरत्र संलग्नमानसाविति भावः ।
5. मर्कटशिशु :– वानरशिशुः ।

फल बताने वाले, मोहर, धोतियां, भूषण और चांदी के पात्रों से सत्कार किये हुए प्रसन्न मन वाले अपने घरों को चले गये।

भाग्य वाली दो दाइयां राजकुमारों की देखभाल का उत्तरदायित्व पाकर बहुत ही प्रसन्न थीं। रानी का काम केवल स्तन का दूध पिलाना ही था। दोनों कुमारों के मस्तक में गुप्त तिलक और पैरों में कमल और चक्र के चिह्न थे। रूप में इस प्रकार की समता न हुई न होगी। बड़े छोटे के अन्तर को स्वयं माता भी न समझती थी। दाइयों ने पहचान के लिये उनके हाथ में अलग-अलग धागे के कंकण बांध दिये। बड़े के हाथ में तांबे के रंग का और छोटे के हाथ में सफेद रंग का। दाइयां स्नान कराने के बाद सौन्दर्य के लिये स्थायी लालिमा बनाने के हेतु राजकुमारों के होठों पर गुलाबी रंग का कपड़ा फेर देती थीं।

इसके बाद सातवें महीने बाल-लीलाएं प्रारम्भ हो गई। एक दूसरे को पकड़ने की इच्छा से जल्दी-जल्दी पीछे दौड़ने लगा। आगे जाने वाला पीछे आ रहे दूसरे को, शिकारी को हिरण के समान मुड़ी हुई आधी गर्दन से देखने लगा। जिधर जाने से रोके जाते थे वहां बार-बार जाते थे। कहीं मुंह में कुछ डाल न लें इस विचार से परिचारिकाएं पैर-पैर साथ चलती थीं। रूठे हुओं को महल के अन्दर चन्द्रतालाब में चांद की परछाईं दिखाकर चन्दा मामा के बहाने से मनाती थीं। रोते हुओं का किसी लकड़ी या बर्तन आदि की आवाज़ से ध्यान बदल कर चुप कराती थीं। पारदर्शी कमरे की दीवार में परछाईं देखकर उसे अपनी कोमल हाथ की उंगलियों से पकड़ने के लिये प्रयत्न करते हुए सूर्यकेतु को बगल में धारण करती हुई माता को, चन्द्रकेतु भी उसी सुख की इच्छा से पेड़ पर चढ़ने के लिये ऊंची गर्दन किये हुए वानर के बच्चे के समान ईर्ष्या से देखने लगा। उसके भाव को जानकर उसे भी दूसरी बगल में उठाती हुई पद्मावती दो पुत्रों से अलंकृत होने के सुख को प्राप्त करने लगी। गोद में बैठे हुए बालक माता के मुख को अभिप्राय के साथ देखते हुए मानों उससे अपने रूप की समानता के रहस्य को जानना चाहते थे। स्नान के लिये चांदी के कुण्ड में बैठे पानी को थपथपाते हुए

मानौ सारसवज्जलक्रीडापरायणावतिष्ठताम् । बालसुलभपक्ष्मपातपरायणं[1] शिशुयुगलं निरीक्ष्य हर्षविस्फारितलोचनमन्तःपुरं कौतुकाय पुनरावृत्तये प्रैरयत । प्रासादबाला जिह्वया[2] सृक्किणी लेलिहानौ, नितम्बबलेनोत्थानप्रयासे कन्दुकवद्भूमिं स्पृशन्तौ पुनः पुनरपि तथा कर्तुमभाषन्त । उन्नतपृष्ठं प्रचलन्तौ ततो वक्षसाऽऽलिङ्गितधरातलौ समुन्नतग्रीवं पश्यन्तौ शत्रुघाताभ्यासिसैनिक-दृश्यमिवोपास्थापयताम् । दोलास्थौ पादांगुष्ठं करबलेन मुखे मेलयन्तौ योगमभ्यस्यन्ताविव शुशुभाते । नाभिगतमृगमदगन्धमन्यत्रगवेषमाणमृगवत्[3] कटितटश्रृंखलक्षुद्रघंटिकानिनदमन्यत्र विभावयन्तावूर्ध्वकर्णौ व्यग्राविवातिष्ठताम् । मुखारूढरदनयुगं[4] रक्तमणिविन्यस्तश्वेतरत्नद्वयमिव छविमावहत् । शुकसारिका-कपोतचटकामयूरक्रीडनकैः खेलन्तावेकोऽपरकरगतं बलेनाकर्षन् कौतुकापादक-कलिमिवाकुरुताम् । महिषी दक्षिणकरेण सूर्यकेतुमपरेण च चन्द्रकेतुं संगृह्य भूपतितपोलतिकाऽवाप्तफलद्वयमिव तस्मै समुपाहरन्ती गौरवमन्वभवत् । महीपतिः शिशुमाशिर उन्नमयन् जठरं नासिकया गुदगुदायमानस्तं हासविवशं विधाय ततो नमयन् गण्डेन तन्मुखं मेलयन्[5] लालालिप्तकपोलो युगपद्रसद्वयानुभूतिं समार्जयत् । पृष्ठं प्रचलन् भूपस्तत्पादस्पर्शेप्सयेव शशकवद् द्रुतं रिंगन्तौ बालौ निरीक्ष्य नवानुभवसुखितः पुनः पुनस्तत्क्रीडामवांछत् । शिशुमृदुभुजावेष्टित-ग्रीव आत्मपरमात्मनोरेकीभावमिवान्वभवत् । बालौ पित्रोश्चिबुकं[6] मुखे मेलयन्तौ मूषिकबन्नवोद्भिन्नरदनखर्जूमवारयताम् । महिषी नखशून्यामलसलिलक्षालित-केतकगन्धसुवासित—तर्जनीं मुखे निवेशयन्त्यनुभूतपरिमर्दसुखा 'सी' कृत्वा

1. पक्ष्मपातेति-पुनः पुनरक्षिनिमीलनोन्मीलनपरायणम् ।
2. सृक्किणी-ओष्ठप्रान्तौ ।
3. मृगमदः-कस्तूरी ।
4. रदनयुगं-दन्तयुगलम् ।
5. लालेति-लालाभिः लिप्तौ कपोलौ यस्य सः ।
6. चिबुकम्-अधरोष्टस्य अधस्तात् स्थितम् ।

सारस के समान जलक्रीडा करते थे। बच्चों के स्वभाव में सुलभ पलक मारते हुए बालकों के जोड़े को देखकर प्रसन्नता से फैले नेत्रों वाली अन्तःपुर की नारियां कौतुक के लिये उन्हें बार-बार ऐसा करने को कहती थीं। महल के बच्चे, जीभ से होठों को चाटते हुए, चूतड़ओं के बल से उठने के प्रयास में गेंद के समान धरती को छूते हुए शिशुओं को बार-बार वैसा करने को कहते थे। पहले ऊंची पीठ से चलते हुए फिर छाती से धरती को छूते हुए ऊंची गर्दन करके देखते हुए, शत्रु पर घात लगाने का अभ्यास करते हुए सैनिक का दृश्य जैसे दिखाते थे। पालने पर पैर के अंगूठे को हाथ के बल से मुंह में मिलाते हुए योग का अभ्यास करते हुए जैसे शोभा देते थे। अपनी ही नाभि में होने वाली कस्तूरी की सुगन्ध को दूसरी जगह ढूंढते हुए हिरण के समान कमर में बंधी करधनी के छोटे घुंघरुओं के शब्द को दूसरी जगह समझते हुए उसे सुनने के लिये कान ऊंचे किये व्याकुल जैसे दिखाई देते थे। मुख में निकले दो दान्त लाल मणि पर रखे दो सफेद रत्नों की शोभा धारण कर रहे थे। तोता, मैना, कबूतर, चिड़िया, मोर के खिलौनों से खेलते हुए जब एक दूसरे के हाथ के खिलौने को खींचता था तो एक कौतुक पैदा करने वाला झगड़ा करते हुए प्रतीत होते थे। रानी दाएं हाथ से सूर्यकेतु को और बाएं से चन्द्रकेतु को पकड़ कर राजा की तपस्या रुपी बेल से प्राप्त मानों दो फलों को उसके पास ले जाती हुई गौरव का अनुभव करती थी। राजा बच्चे को सिर तक ऊपर ले जाता हुआ, उस के पेट को नाक से गुदगुदाता हुआ, उसे हंसा कर फिर नीचे लाता हुआ, अपनी गाल से उसके मुख को मिलाता हुआ, लारों से लिबड़े मुख वाला एक ही समय में दो रसों का सुख पाने लगा। पीठ की ओर चलता हुआ राजा मानों जैसे उसके पैर छूने की इच्छा से जल्दी-जल्दी घुटनुओं के बल चलते हुए बालकों को देखकर नये अनुभव से सुख पाकर उस खेल की पुनरावृत्ति चाहता था। बालक की कोमल भुजाओं से लिपटी गर्दन वाला राजा मानों आत्मा-परमात्मा के एकीभाव का अनुभव करने लगा। बालक माता-पिता की ठोडी को मुंह में लेते हुए, चूहे के समान नये निकले दान्तों की खुजली को दूर करते थे। रानी नाखून के बिना निर्मल पानी से धोई केवड़े की गन्ध से सुगंधित तर्जनी को बच्चे के मुंह में ले जाती हुई चबाने के सुख का अनुभव करके फिर 'सी' करके

बारयन्ती शिशुयुगलं पुनः पुनरहासयत् ।

दशममासेऽन्नप्राशनसंस्कार आयोज्यत । राज्यस्य दशवर्षाभ्यन्तरीयाः सकलकुमाराः क्षीरभोजनायामंत्र्यन्त । कुमारभविष्यज्जिज्ञासू राजदम्पती रत्नजटितरजतमञ्जूषासु योगोपकरणशस्त्रशास्त्रदीनारलेखनीदेवचित्रफल-पुष्पविविधवनस्पतीनधारयताम् । जानुबलप्रसरद्राजकुमारौ शस्त्रशास्त्राण्य स्पृशताम् । चन्द्रकेतुर्योगोपकरणेष्वपि रुचिं प्रादर्शयत् । पितरौ कुमारयोर् भाविशस्त्रशास्त्रज्ञतां चन्द्रकेतोश्च योगविद्यास्नेहं विज्ञायामोदेताम् । तदनु[1] जमदग्निनानुष्ठितहोमकार्यो महीपः सवेदमंत्रपाठं रजतपात्रस्थगोदुग्धपायसं रौप्यचमसेन कुमारावभोजयत् । राज्ञी भर्तारमन्वसरत् । तत आमंत्रितवटव-उदरपूरं पायससंतृप्ता[2] लब्धदीनारदक्षिणाः कूर्दमाना गृहाणि प्रययुः ।

गौतममुन्याशीर्वादसंप्राप्ताद्भुतप्रतिभाशालिकुमारौ तृतीयवर्ष एव शास्त्रश्रवणे[3] रुचिमदर्शयताम् । मोहाविष्टभूपतिः ऋषिकुल-सम्प्रेषणमतिं विहाय कुमारशिक्षायै राजप्रासादे सकलशास्त्रपारंगतं वेदविद्यार्थविदं धर्मभिक्षुनामपंडितं विनियोजयामास । असौ प्रभाते कृतस्नान उपासितसंध्यो देवपूजां विनिवर्त्य प्रासादान्तः सुसज्जितकक्षे, कुमारौ वेदोपनिषद्रामायण-महाभारतशौर्यकथाः श्रावयन् राजनीतिरहस्यमप्यशिक्षयत । कुमारौ तद्भाव-बोधतां "हुं हुं" संकेतेन विज्ञापयामासतुः । आदशममुभावपि सराजनीति-सकलशास्त्रपंडितावजायेताम् । एकादशहायने कुमारशस्त्रप्रशिक्षणकामो महीपतिर् मुख्यसेनापतिकृतमंत्रणः शरसंचालनेऽर्जुनमिव गदायुद्धे भीममिव व्यूहभेदनेऽभिमन्युमिवानेकयुद्धविजेतारं महावीरचक्रालंकृतं विजयवर्धनाभिधानवीर-

---

1. जमदग्निनेति-जमदग्निना अनुष्ठितं होमकार्यं यस्मै सः ।
2. लब्धेति-लब्धा दीनाराणां दक्षिणा यैस्ते ।
3. विहाय-त्यक्त्वा ।

पीछे हटाती हुई दोनों बालकों को बार बार हंसाती थी।

दसवें महीने अन्नप्राशन संस्कार का आयोजन किया गया। राज्य भर के दस वर्ष से नीचे के सभी बालकों को खीर खिलाने के लिये बुलाया गया। कुमारों के भविष्य की जिज्ञासा से राजा-रानी ने रत्नों से जड़ी चान्दी की टोकरियों में योगसामग्री, शास्त्र शस्त्र, मोहर, कलम, देवताओं के चित्र फल-फूल और अनेक प्रकार की जड़ी बूटियों को रख दिया। जानुओं के बल से रेंगते हुए राजकुमारों ने शस्त्र-शास्त्रों को छुआ। चन्द्रकेतु ने योगसामग्री में भी अपनी रुचि दिखाई। माता-पिता राजकुमारों के आगे होने वाले शस्त्र-शास्त्र के ज्ञान और चन्द्रकेतु के योगविद्या में स्नेह को जान कर बहुत प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर जमदग्नि से हवन कराकर राजा ने वेद मन्त्रों के साथ चांदी के कटोरे में डाली हुई गौ के दूध की खीर को चाँदी के चमच से कुमारों को खिलाया। पति के बाद रानी ने भी वैसा ही किया। फिर बुलाये हुए बालक पेट भर खीर खा कर मोहरों की दक्षिणा पाकर कूदते हुए अपने घरों को चले गये। गौतम मुनि के आशीर्वाद से प्राप्त अद्भुत बुद्धि वाले कुमार तीसरे वर्ष में ही शास्त्र सुनने में रुचि दिखाने लगे। मोह में फंसे हुए राजा ने बालकों को ऋषि कुल में भेजने का विचार छोड़ कर उनकी शिक्षा के लिये महल में ही सब शास्त्रों को जानने वाले वेदविद्या के ज्ञाता धर्मभिक्षु नाम के पंडित को नियुक्त कर दिया। वह प्रभात में ही स्नान-संध्या करके देवताओं की पूजा से निवृत्त होकर सजे हुए कमरे में कुमारों को वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत की शूरवीरता से भरी कथाओं को सुनाता हुआ राजनीति के रहस्य को भी सिखाता था। दोनों कुमार "हुं हुं' के संकेत से अपनी समझ को जतलाते थे। दसम वर्ष तक दोनों ही राजनीति सहित सारे शास्त्रों में पंडित बन गये। ग्यारहवें वर्ष कुमारों को शस्त्रों की शिक्षा देने की इच्छा वाले राजा ने मुख्य सेनापति से सलाह कर के तीर चलाने में अर्जुन के समान, गदा युद्ध में भीम के समान व्यूह भेदन में अभिमन्यु के समान, अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले महावीर चक्र पाये हुए विजयवर्धन नाम के बहादुर को इस काम के लिये

मेतत्कृते विन्ययोजयत् । विजयवर्धनोऽपि षष्मासेष्वेव राजकुमारौ शरसंचालनं, गदायुद्धं, शत्रुसंघे खड्गप्रहारविधिं, व्यूहप्रवेशनिर्गमौ, रिपुशिविरेऽनलबाणपातनं ततश्च स्वरक्षणविधिं प्राशिक्षयत। ज्येष्ठो नभसि विचरन्तं खगं शरेण संविध्य भूमावपातयत् । अपरश्च तरुशाखासंलग्नसप्तपत्राण्येकेनैवेषुणा[1] युगपद् धरातले निपात्य स्वकौशलमदर्शयत् । द्वादशवयस्येव कुमारौ शस्त्रशास्त्रविद्यापारंगतौ समीक्ष्य राज्ञो हर्षस्य नासीत्कश्चित्पारावार: । लवकुशसमौ शिष्टताया विग्रहधारिणाविव राजकुमारावीक्षितुं राज्यस्य बहवो जना विविधमिषै राजप्रासादमाजग्मु:।

अथैकदा राज्यकार्योन्मुक्तो रहसि निषण्णो महीपतिर् निशास्वप्नस्येव गौतममुने: पणस्यास्मरत् । व्योम्नि-अनलसंगृहीत्वायुयानचालकस्य मानसमिव राज्ञो हृदयं विकलतामयात् । सोऽचिन्तयत्, "राजवंशवृक्षं स्वपाणिपूतसुमन:-सलिलेन संवर्धयन् नायादसौ महात्मा राजकुमारमेकं प्रतिग्रहीतुम् । किं तन्मे परीक्षणमासीत् ? मुनय: प्रायो मानवबुद्धिपरीक्षणे रुचिं धारयन्ते ।" एवं संशयवारणाय मनोऽतोलयत् । अथवा किमनागमने विस्मृति: कारणम् ? परं विस्मरणं कालेनापक्वफलं पक्वावस्थायामिव स्मृतावपि परिणतं भवति । चेदसौ समायाति, पुत्रमेकं कथमुपहारीकरिष्यामि । अतिविनीतौ कामवत्कमनीयौ मे सुतौ । एकस्य वियोगवेदनां कथं सहिष्ये ।" एवं क्षमताधिकभारं वहतोऽश्वस्य पृष्ठमिव भाविवियोगशंकाभराक्रान्तं राज्ञो हृदयं नततामव्रजत् । ततो विविधविचारैर्मथ्यमानो नरपतिरस्ताचलप्रयाणोन्मुखभा-

---

1. इषुणा-शरेण ।

नियुक्त किया। विजयवर्धन ने छः महीने में ही राजकुमारों को तीर चलाना, गदायुद्ध, शत्रुओं पर तलवार का प्रहार करना, व्यूह में घुसना और निकलना शत्रुकटक पर अग्निबाण वर्षा करना और उस (अग्निबाण वर्षा) से अपनी रक्षा करना यह सभी सिखा दिया। बड़ा राजकुमार आकाश में उड़ते पक्षी को तीर से बींध कर नीचे गिराने लगा। छोटा पेड़ की शाखा के सात पत्तों को एक ही समय में एक ही तीर से धरती पर गिरा कर अपने कौशल को दिखाता था। बारहवें वर्ष में ही कुमारों को शस्त्र-शास्त्र विद्या में पार पहुंचा हुआ देख कर राजा की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। लव कुश के समान जो मानों नम्रता का शरीर ही धारण करने वाले थे ऐसे राजकुमारों को देखने के लिये राज्य के बहुत से लोग अनेक बहानों से राजमहल आते थे।

इसके बाद एक बार राज्य के काम-काज से स्वतंत्र हुए, एकांत में बैठे हुए राजा को रात्रि के स्वप्न के समान गौतम मुनि की शर्त की याद आ गई। आकाश में आग पकड़े हुए वायुयान के चालक के मन की तरह राजा का हृदय व्याकुल हो गया। वह सोचने लगा :"राजवंश वृक्ष को अपने हाथ से पवित्र फलरूपी पानी से बढ़ाने वाला वह महात्मा एक राजकुमार को लेने के लिए आया नहीं। क्या वह मेरी परीक्षा थी? मुनि लोग प्रायः मनुष्य की बुद्धि की परीक्षा में रुचि रखते हैं।" इस प्रकार संशय दूर करने के लिए अपने मन को तोलने लगा। 'अथवा उसे याद ही भूल गई है? परन्तु विस्मृति तो समय पा कर कच्चा फल पक्वावस्था में जैसे स्मृति में बदल जाती है। यदि वह आ गया तो एक पुत्र को उसे कैसे भेंट करूंगा। कामदेव के समान सुन्दर मेरे पुत्र बहुत ही विनम्र हैं। एक के वियोग की पीड़ा को कैसे सहन करूंगा।" इस प्रकार सामर्थ्य से अधिक भार को उठाते हुए घोड़े की पीठ के समान आने वाले वियोग की शंका के भार से राजा का हृदय झुकता ही चला गया। इस प्रकार अनेक प्रकार के विचारों से मथा जा रहा राजा अस्ताचल को जाने के लिये तैयार सूर्य की तरह,

स्कर इव, नृत्यावसाने नर्तक इव, क्षीणतैलदीपवत्, कन्यागर्भसमाचारेण जनक इव, निशावसाने कुमुद इव, निरपराधं कारागारक्षिप्तसुजन इव, पदे छिन्ने पदाधिकारीव, पयसि निर्गते [1]पयोद इव शिथिलतामभजत्। महिष्यपि भर्त्रे ताम्बूलमुपाहर्तुं तत्रायाता तस्यास्वाभाविकाकृतिं निरीक्ष्य चिरं ध्यायन्त्यपि पाणिनिव्याकरणशून्यपंडितः सूत्रार्थमिव तन्मनोभावं ज्ञातुं नापारयत्। "किं राज्यकार्ये काचित्समस्योद्भूता, मया परिजनेन वा क्वचित् किञ्चिदपराद्धमिति" गहनमनसाऽन्वेषणपरायणापि रहस्यं बोद्धुं न प्राभवत्। ततो विगतसङ्कोचाऽवादीत्—"भर्तः! भवतां म्लानाकृतिं समीक्ष्य विकलं मे मनः। मेघपटलो भानुमिवौदासीन्य मावृणोति भवतो मुखम्। अतो मनोगतेन मां परिचाय्यानुग्रहं दर्शयन्तु भवन्तः।" राजा प्राह –"प्रिये, अद्य निविड़ं विधृतं मे हृदयं पूर्वस्मृत्या।" इत्यपूर्णं श्रुत्वैव महिष्या मनस्यपि घनमंडले [2]तडित इव भर्तृनिशामितपूर्ववृत्तस्य प्रसारोऽजायत। सा कदलीव कम्पमाना भूमावुपाविशत्। राजा पुनरुवाच—"प्रिये! ममाद्योपान्तवाचमनाकर्ण्यैव विकलतां गतासि। किं निमित्तम्?" महिषी सिंहदूरगर्जनां श्रुत्वा मृगीव दीना सजलनयना राजानं पश्यन्ती न्यगदत्—"भर्तः! किं मुनिः समायास्यति मे [3]सूनुं नेतुम्? विगतोऽयं द्वादशवर्षकालः। आशासे तेनैतद् विस्मृतम्।" एवं कल्पितक्षतं कल्पनावसनखन्डेनैव वेष्टयन्ती हृदयं धारयितुं प्रायतत। अत्रान्तरे स एव शुकः कुतश्चिदागत्यापठत्—

> वियोगवल्लरी रूढा [4]मध्यगेयं कुमारयोः।
> कालेऽनुकूल आयाते छिन्ना नूनं भविष्यति॥

---

1. पयोद :—मेघः।
2. तडित :—विद्युतः।
3. सूनुं—पुत्रम्।
4. मध्यगा—मध्यवर्तिनी।

नृत्य के अन्त में नर्तक के समान, तेल समाप्त हुए दीपक के समान, कन्या के गर्भसमाचार से पिता के समान, रात्रि के अन्त में कुमुद के समान, बिना अपराध के कैद में डाले भद्र पुरुष के समान, पद के छिन जाने पर पदाधिकारी के समान, पानी बरस जाने के बाद बादल के समान शिथिल हो गया। रानी भी पति के लिये पान भेंट करने के लिये वहां आई हुई उसकी अस्वाभाविक शकल को देख कर चिरकाल तक ध्यान करती हुई भी पाणिनि के व्याकरण को न जानने वाला पंडित सूत्रार्थ को जैसे उस के मन के भाव को न जान सकी। "क्या राज्य के काम-काज में कोई बाधा पैदा हो गई है अथवा मुझ से या परिजन से कहीं कोई अपराध हो गया है"? इस प्रकार गहराई से खोज करती हुई भी रहस्य को न पा सकी। फिर सङ्कोच छोड़ कर बोली "पति-देव, आप की उदास आकृति को देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है। बादल का पर्दा जैसे सूर्य को उदासीनता आपके मुखड़े को ढक रही है। इस लिये अपने मन की बात मुझे बताने की कृपा करो।" राजा बोला—"प्यारी आज पहले की स्मृति ने मेरे हृदय को बुरी तरह से जकड़ लिया है।" इस प्रकार पति की बात को पूरा न सुने ही रानी के मन में भी बादल में बिजली के समान पति द्वारा सुनाये गये पहले समाचार का प्रसार हो गया। वह केले के समान कांपती हुई धरती पर बैठ गई। राजा फिर बोला—"प्रिये, मेरी बात को पूरा न सुने ही घबरा गई हो, इस का क्या कारण है?" रानी शेर की दूर से ही गर्जना को सुनकर हिरणी के समान दीन, पानी भरी आंखों से राजा को देखती हुई बोली—"पतिदेव, क्या मुनि मेरे पुत्र को लेने आ जाएगा? अब तो बारह साल बीत गये। मैं समझती हूं कि उसे यह सब कुछ भूल गया है" इस प्रकार कल्पित घाव को कल्पना के वस्त्र के टुकड़े से ही लपेटती हुई हृदय को थामने का प्रयत्न करने लगी। इतने में वही तोता कहीं से आकर पढ़ने लगा:—

राज कुमारों के बीच में वियोग की बेल उग आई है। अनुकूल समय आने पर यह अपने आप ही टूट जाएगी॥

इति पठित्वाऽक्षिनिमेषेणैव यथागतं निर्जगाम। राजदम्पती शुकोदीरितं क्षतेऽङ्गारस्पर्शमिवान्वभवताम्। कृतघ्नमित्रायेवैतद्दिने तस्मै न मोहो न स्नेहो न सहानुभूतिः। राज्ञीनयनाश्रुधारा मृदुपादपपत्रपतितपयोदबिन्दुः स्कन्धं स्नापयँस्तरुमूलमिव तस्याः कुचौ क्लेदयन्ती नाभिं विवेश। राज्ञः पश्यत एव दुर्जनदूषितसतीव विगतचेतना सा भूमौ न्यपतत्। नरपतिस्तु 'प्रासादान्तः कोप्येतद्वृत्तावगतो न स्यादि'ति भिया स्वयमेव तां चेतनां नेतुं तस्या दुकूलेन व्यजनं कुर्वन् मुखे जलबिन्दून् न्यपातयत्। भर्त्रा मुहूर्तं परिचर्यमाणा महिषी स्वेदान्ते ज्वररोगीव स्वस्थतामुपागमत्। अवाप्तसंज्ञां[1] तां महीप उवाच "प्रिये! कुसुमादपि कोमलं ते हृदयम्। तमसि परिभ्रमन् पथिकः सर्पाशंकयेव कल्पितभयेन क्लेषयसि मानसम्"। राज्ञी प्राह—"भर्तः! अस्माकं भाग्यप्रवक्ता कोऽयं शुकः। अद्यापि कनककंकणे ताम्रमिश्रणमिवानावृतं तिष्ठति रहस्यमिदम्। एतद्धारित्यं तिरस्करोति शाद्वलहरितताम्। चंचुरक्तिमा स्पर्धते कामिनीरक्ताधराभ्याम्। कीदृशं रम्यं वपुः कथंविधा च स्पष्टा वाक्। न कोऽपि सामान्यपंडित उदीरयितुं क्षम एवंविधम्। न जाने केन कारणेनायं तिरश्चां[2] योनिमुपगतः। जिज्ञासेयं बाधते हृदयम्। अयं विद्युद्गत्या समागत्यास्मद्भाग्यमभिधाय सहसोड्डीयते। प्रयतमाना अपि वयं नैनं ग्रहीतुं पारयामः"। राजोवाच—"भामिनि! विधातुः सृष्टेर्न कश्चित्पारावारः। जाने, केनचित्कर्मणा परिभ्रष्टः कश्चिन्महानात्मा शुकयोनिमुपापद्यत"। महिषी साश्रुनयना पुनरुवाच-

---

1. अवाप्तेति-अवाप्ता संज्ञा चेतना यया ताम्।
2. तिरश्चां-खगानाम्।

इस प्रकार बोल कर पलक मारने के समय में ही जहां से आया था वहीं चला गया। राजा-रानी को तोते का वचन घाव में अङ्गार के स्पर्श के समान प्रतीत हुआ। इस बार कृतघ्न मित्र के लिये जैसे उसके लिये उनके हृदय में न मोह था, न स्नेह था न सहानुभूति थी। रानी के नेत्रों की अश्रुधारा, कोमल पेड़ के पत्ते पर पड़ी हुई बादल की बूंद तने को नहलाती हुई मूल भाग में जैसे उसके स्तनों को नहलाती हुई नाभि में प्रवेश कर गई। राजा के देखते ही देखते दुर्जन से दूषित की गई सती के समान चेतनाहीन हुई वह धरती पर गिर गई। राजा 'महल के अन्दर किसी को इस घटना का पता न लग जाय' इस डर से अपने आप ही उसे चेतना में लाने के लिये उसके दुपट्टे से हवा करता हुआ मुख में जल की बूंदे गिराने लगा। पति से दो घड़ी सेवा की हुई रानी पसीना आने के बाद ज्वर रोगी के समान स्वस्थ हो गई। राजा चेतना आने पर उसको बोला, "प्यारी, तेरा हृदय फूल से भी कोमल है। अन्धेरे में घूमता हुआ यात्री सांप की आशंका से जैसे कल्पित डर से अपने मन को दुखी कर रही हो"। रानी बोली—"पतिदेव हमारे भाग्य को बताने वाला यह तोता कौन है। आज भी सोने के कंकण में ताम्बे की मिलावट के समान यह रहस्य गुप्त ही है। इस का हरापन हरे घास की हरियाली को तिरस्कृत करता है। चोंच की लाली नारी के लाल होठों से स्पर्धा करती है। कितना सुन्दर शरीर है। कितनी स्पष्ट वाणी है। कोई साधारण पंडित इस प्रकार न बोल सकता है। पता नहीं किस कारण से यह पक्षी बन गया है। यह जिज्ञासा हृदय को पीड़ित करती है। यह बिजली की गति से आकर हमारे भाग्य को बता कर एक दम उड़ जाता है। प्रयत्न करने पर भी हम इस को पकड़ न सके हैं। राजा बोला—"प्रिये, विधाता की सृष्टि का कोई पारावार न है। मैं समझता हूं किसी कर्म से भ्रष्ट हुई कोई बड़ी आत्मा तोते की योनि में आ गई है।" रानी आंखों में पानी भरे हुए फिर बोली—

"भर्तः ! चेन्मुनिः समायाति तदैकः कुमारः प्रासादं वियोगविकलं करिष्यति ? किं वयं प्रोषिततनयमुखारविन्दं पुनर्द्रष्टुं प्रभविष्यामः ?" राजा प्रत्यवदत्— "प्रिये ! समाश्वसिहि, अस्माकमदृष्टं वदता शुकेन भणितम् "कालेऽनुकूले वियोगः संयोगे परिणंस्यति"। एतद्हृदयधारणायालम्। [1]आप्तवचनानि न [2]मोघफलानि।

स एवाश्रमः।[3] परिणतवयाः श्वेतजटाजूटमण्डितस्तपस्तेजसाऽऽश्रमस्थलीं भूषयन्निव गौतमो मुनिरचिन्तयत्—'चिराध्युषितं वनमिदं न रोचते मे साम्प्रतम्। बहुकालपरिचिततपस्विनः कृतान्तराया[4] मे साधनायाम्। अथ चात्र पंचवट्यां रक्षसामिव कापालिकानां वासोऽपि संजातः। ते मद्यमांसाद्यमेध्यवस्तूनि विकीर्य तपोवनपावनतां दूषयन्ते। अतस्त्यक्तुमिच्छामि तपोवनमिदम्। सूर्यातपवर्जितघनान्धकारगुहायाभवशिष्टजीवनं निनीषामि। परं षष्टिसमाभिः समाश्रितमाश्रममिमं को द्रक्ष्यति।(कांश्चित्क्षणान् निमीलितनयनः) आस्तां तावत्। स्मर्यते मया। द्वादशवर्षाणि पूर्वं कुमुद्वतीनृपः पुत्रवरदानेनोपकृतो मया। तस्य भार्या सुतयुगलमेवासूत। विस्मृतपणोऽसौ नायात्तनयमेकमुपहारीकर्तुम्। आत्मजमोह एवमेव निबध्नाति पितृहृदयम्। दशरथः सूनुवियोगे प्राणानेवात्यजत्। यद्यपि वनवासिनां न प्रयोजनं राजप्रासादैः परं राजकुमारमानेतुमनिवार्यः प्रतिभाति मे तत्र पदन्यासः। आश्रमं तदाश्रयं विधायेतः प्रयास्यामि। वीरो राजकुमारः पंचवट्यां रामो रक्षांसीव भुजबलेन कापालिकान्निहत्य तपोवनमिदं मुनिवासाय निष्कंटकं निर्बाधं च करिष्यति।"

अपरनिशि महीपो वनवासानुभूतवृत्तं स्वप्ने

---

1. आप्तेति – आप्तानां सिद्धानां वचांसि।
2. मोघफलानि – निष्फलानि।
3. परिणतेति—परिणतं परिपक्वं वयः आयुः यस्य सः।
4. अन्तराय :— विघ्नः।
5. अमेध्यवस्तूनि—अपवित्रवस्तूनि।

पतिदेव, यदि मुनि आएगा तो क्या एक राजकुमार महल को छोड़ जाएगा ? क्या हम गये हुए पुत्र के मुखकमल को फिर देख सकेंगे ?" राजा ने उत्तर दिया, "प्रिये, तसल्ली करो। हमारे भाग्य को बताते हुए तोते ने ही कहा है 'अनुकूल समय आने पर वियोग संयोग में बदल जाएगा। यह हृदय को थामने के लिए पर्याप्त है। सिद्धों के वचन निष्फल न जाते हैं।'

वही आश्रम। पकी उमर वाला सफेद जटाजूट से युक्त तप के तेज से आश्रम को मानों सजाता हुआ गौतम मुनि सोचने लगा—"चिरकाल से सेवित यह वन अब मुझे अच्छा न लगता है। देर से परिचित तपस्वी मेरी साधना में विघ्न करते हैं। और अब यहां पंचवटी में राक्षसों की तरह कापालिक भी आने लग गये हैं। वह मद्य-मांस जैसी अपवित्र वस्तुओं को बिखेर कर तपोवन की पवित्रता को भंग करते हैं। इसलिये इस तपोवन को मैं छोड़ना चाहता हूं। सूर्य के प्रकाश से वर्जित किसी गुफा में बाकी जीवन को बिताना चाहता हूं। परन्तु साठ वर्ष से आश्रय लिये हुए इस आश्रम को कौन देखेगा। (कुछ क्षण आंखें बन्द करके) कोई बात नहीं। मुझे याद आ गई। बारह वर्ष पहले कुमुद्वती के राजा को पुत्र का वरदान देकर मैंने उपकृत किया था। उसकी पत्नी ने दो ही पुत्रों को जन्म दिया है। प्रतिज्ञा को भूलकर वह एक पुत्र को मुझे देने न आया है। पुत्रों का मोह इसी प्रकार-माता-पिता के हृदय को जकड़ता है। दशरथ ने पुत्र के वियोग में प्राणों को ही त्याग दिया। यद्यपि वनवासियों को राजमहलों से कोई प्रयोजन नहीं तथापि एक राजकुमार को लाने के लिये मेरा वहां जाना अनिवार्य है। आश्रम को उसकी देखरेख में छोड़कर यहां से जाऊंगा। बहादुर राजकुमार, पंचवटी में जैसे राम ने राक्षसों का संहार किया था उसी प्रकार अपनी भुजाओं के बल से कापालिकों को मार कर तपोवन को निष्कंटक और सुखकर बना देगा।"

दूसरी रात को राजा ने वनवास में हुई घटना को स्वप्न में बैसे का

यथावदपश्यत्—(स एवाश्रमः। असावेव मुनिः। तदेव पार्वतीस्रोतः। तदेव पुत्रवरदं पुष्पम्। मुनेः समक्षं कृतं स एव पणः। परं यथावृत्ताद्विपरीतं तत्प्रसूनं राज्ञः करान्मार्ग एवाभ्रश्यत्। असौ व्यलपत्—'अहो नष्टो मे वर्षार्जितो निधिः') अत्रान्तरे स्वप्नभङ्गोऽजायत। राजा—'हुँ' वरदायकं कुसुममेव भ्रष्टम्। कीदृशोऽयं स्वप्नः। मया प्रतिज्ञातं न पालितम्। कच्चित्कुमारयोः किञ्चिदनिष्टं न स्यात्। राज्या अनुमत्या कथं न स्वयमेव सुतमुपहारीकर्तुं मुनेः सकाशं गच्छेयम्।

प्रातः प्रबुद्धो भूपः स्नात्वा कृतदेवार्चनो महिषीं मंत्रणाकक्षे समाहूयावदत्—"प्रिये! प्रतिज्ञाभंगाद् बिभेति मे मनः। कुमारयोश्चेत् किञ्चिद्[1] मंगलं तदा जीवनमेव दुर्भरं स्थास्यति। कृतमना अहं स्वयमेव कुमारमेकं वनं प्रापयितुम्। महिष्यश्रूणि विमुञ्चती प्राह—"नाथ, न मे रोचते भवन्मतम्। एतदात्मघाताय वृषभामंत्रणम्। अनिवार्यतामनुभवन् मुनिः स्वयमत्रागमिष्यति। किं विश्वामित्रो रामलक्ष्मणाभ्यां दशरथद्वारं नाजगाम?" नृपः प्रत्यवदत् "परं प्रतिज्ञापालनाय दशरथप्राणत्यागोऽपि ते नाविदितः। भारतीयसंस्कृतिर्न सहते प्रतिज्ञाभंगम्। मुनेः कृपयैव तेऽङ्कस्तनयालङ्कृतः। पणातिक्रमणाच्चेत्काचिदापदापतेत्तदा तदुद्धरणं न सुकरम्।" एषस्[2]तर्कस्तंत्रक्रियेव राज्या मनोऽस्पृशत्। साऽचिन्तयत्—'भर्त्रा सत्यमुच्यते। महात्मानः स्वल्पनिमित्तमपि कुप्यन्ति। चेन्मे सुतयोः काचिद्विपत्पतिता तदा

1. अमंगलम्-अशुभम्।

2. तर्कः-युक्तिः।

वैसा ही देखा– (वही आश्रम। वही मुनि। वही पार्वतीस्रोत। वही वरदायक फूल। मुनि के सामने की हुई वही प्रतिज्ञा। परन्तु वास्तविकता से प्रतिकूल वरदायक फूल राजा के हाथ से रास्ते में ही गिर गया। वह विलाप करने लगा। हाय, मेरा वर्ष से कमाया कोष ही नष्ट हो गया)। इतने में स्वप्न टूट गया। राजा-हुं वरदायक फूल ही नष्ट हो गया। यह कैसा स्वप्न हुआ! मैंने प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। कहीं राजकुमारों का कुछ बुरा ही न हो जाय। रानी की अनुमति से क्यों न एक पुत्र को भेंट करने के लिये स्वयं ही मुनि के पास चला जाऊं।

प्रातः जागा हुआ राजा स्नान करके देवताओं की पूजा करके रानी को मंत्रणाकक्ष में बुला कर बोला। "प्रिये, प्रतिज्ञाभंग से मेरा मन बहुत डर रहा है। यदि राजकुमारों का कुछ बुरा हुआ तो जीना ही कठिन होगा। मैंने एक राजकुमार को अपने आप ही बन पहुंचाने का मन बना लिया है।" रानी आंसू बहाती हुई बोली "आप के मत से मैं सहमत न हूं। यह तो 'आ बैल मुझे मार' की बात होगी। मुनि अत्यावश्यक समझेगा तो अपने आप ही यहां आ जायगा। क्या विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के लिये दशरथ के द्वार पर न आया था?" राजा ने उत्तर दिया—"परन्तु दशरथ ने प्रतिज्ञापालन के लिये प्राणों का त्याग कर दिया था यह भी आप से छिपा हुआ न है। भारतीय संस्कृति प्रतिज्ञाभंग को सहन न करती है। मुनि की कृपा से ही तेरी गोद पुत्रों से अलंकृत हुई है। प्रतिज्ञा के अतिक्रमण से यदि कोई आपत्ति आ गई तो उससे छुटकारा पाना आसान न होगा।" इस युक्ति ने रानी के मन पर जादू जैसा असर किया। वह सोचने लगी—"पतिदेव ने सच कहा है। महात्मा लोग छोटे कारण से भी रुष्ट हो जाते हैं। यदि मेरे पुत्रों पर कोई विपत्ति आ गई तो मैं

कथं जीविष्यामि ।" हृदयं प्रस्तरसमं विधाय पुनरवदत्—भर्तः ! कुमारैक-रूपता सर्वविदिता । दर्पणे द्रष्टुः प्रतिविम्बमिवैतयोः स्वरूपं विषमतावर्जितम् । आपादमस्तकमवयवसन्निवेशे न क्वचिदपि विरूपता । अहं स्वयमपि ज्येष्ठ-कनिष्ठबोधशून्या । एवमुभयोः को देयः कश्च प्रासादे स्थास्यतीति कथं निर्धारयेव ।" राजा प्राह—"प्रिये ! विज्ञौ कुमारौ स्वयं निर्णेष्यतः । प्राभा-विकचर्यां विनिवर्त्याधुनैव समायास्यतः ।

अर्धकलाभ्यन्तरे रूपे मकरकेतुं तिरस्कुर्वन्तौ कुमारौ कक्षं प्रविश्य जननीं प्रणम्य तातमवन्देताम् । ततः 'चिरञ्जीवताम्' इत्याशिषोऽभिधाय स्नेहसिक्त-हृदयो नृपोऽवादीत्—"पुत्रौ ! भाग्यवानहं राम-लक्ष्मणवद् विनीतौ भवादृश-सुतौ समधिगम्य । अद्य वहाम्यहं मनसि विशिष्टवृत्तं भवत्कर्णगोचरं कर्तुम् । तातमनोभावबोधाय जिज्ञासुनयनाभ्यां तं सोत्कण्ठं वीक्षमाणौ कुमारौ प्राहतुः-"तात ! भणत्वत्रभवानस्मत्करणीयं येन भवदाज्ञापालनेनावयोः पुत्रत्वं [1]कृतार्थ-तां यायात् ।" कुमारयोर् [2]हृदयाह्लादकरं मृदुवचो निशम्य राजा सगद्गदं प्राह—"तनयौ! इतः सप्ततिक्रोशविदूरवर्तमानागस्त्याश्रमे गौतमो नाम मुनिर्वसति । जलधारायाः पयोदेनेव तस्यास्ति राजकुलसम्बन्धः । तस्याशीर्भिरिमं राज-वंशमष्टौ सिद्धयः सेवन्ते । अथ च तत्कृपयैव नो राजकुलेन वर्धितम् । स युवयोरेकं स्वाश्रमेऽभिलषति । तद् वदतां को मुनिचरणारविन्दं सिषेविषते । राजकुमारौ प्रसन्नमानसौ प्राहतुः–"तात ! दशरथनृपो विश्वामित्राग्रहपरवशो रामलक्ष्मणौ मुन्याश्रमं प्रहीय महद्यशो लेभे । कथं न भवानुभावपि तथैव गमयति । आवामपि

---

1. कृतार्थतां :—सफलताम् ।
2. आह्लादकरम् :—आनन्दकरम् ।

कैसे जी सकूंगी।" हृदय को पत्थर के समान बनाकर फिर बोली—"पतिदेव, राजकुमारों की एकरूपता सबको प्रतीत है। सिर से पैर तक कहीं भी विषमता न है। मुझे स्वयं बड़े छोटे का ज्ञान न है। ऐसी स्थिति में किस को देना है और महल में कौन रहेगा इस का निर्णय कैसे हो।" राजा बोला—"प्रिये, बुद्धिमान राजकुमार अपने आप ही निर्णय कर लेंगे। प्रभात की चर्या से निवृत्त हो कर अभी आ जाएंगे।"

आधी घड़ी के अन्दर ही रूप में कामदेव को भी मात करने वाले राजकुमारों ने कमरे में आ कर पहले माता को और फिर पिता को प्रणाम किया 'चिरकाल जीओ' इस प्रकार आशीर्वाद देकर प्यार से भरे हृदय वाला राजा बोला—"पुत्रो, रामलक्ष्मण के समान विनम्र आप जैसे पुत्रों को पाकर मैं भाग्यवान हूं। आज आप को बताने के लिये मेरे मन में विशेष बात है।" पिता के मन के भाव को जानने के लिये जिज्ञासापूर्ण नेत्रों से उसे उत्कण्ठा से देखते हुए राजकुमार बोले—"पिताजी, हमें जो करना है वह बताइये। जिस से आपकी आज्ञा का पालन करके हमारा पुत्र होना सफल हो जाय।" राजकुमारों के हृदय को आनन्द देने वाले कोमल वचन को सुनकर राजा गद्दद बाणी से बोला—"पुत्रो, यहां से सत्तर कोस दूर अगस्त्य आश्रम में गौतम नाम का मुनि रहता है। पानी की धारा का बादल से जैसे उस का राजकुल से सम्बन्ध है। उस की कृपा से इस राजवंश को आठों सिद्धियां प्राप्त हैं। उस की कृपा से ही हमारे राजकुल की वृद्धि हुई है। वह आप में से एक को अपने आश्रम में चाहता है। सो आप बोलो, आप में से कौन-सा मुनि के चरण कमलों की सेवा करना चाहता है।" राजकुमार प्रसन्न मन से बोले—"पिता जी, राजा दशरथ ने विश्वामित्र की मांग पर राम-लक्ष्मण को मुनियों के आश्रम में भेज कर बड़ा यश पाया था। आप भी वैसे ही हम दोनों को क्यों न भेज देते हो। हम भी

तद्वदेव बाहुबलेनाततायिप्राणिनो निहत्य तपोवनं मुनिसुखकरं विधाय गृहं प्रत्यावर्तिष्यावहे ।" भूपतिर्भावाप्लावितहृदयः पुनरभाषत—"पुत्रौ नहि, युवयोरेक एव गमिष्यति । अपरोऽत्रस्थो राज्यकार्ये मे साहाय्यं करिष्यति । अद्य सूर्यकेतुः प्रथमं कक्षं प्रविष्ट अत एष एव वनं प्रयास्यतीति ममादेशः ।

पितृवचनमाकर्ण्य कृताञ्जलिः सूर्यकेतुरुवाच—"तात, दाशरथिसमभाग्यवानहम् । ते के पुण्यक्षणा येष्वहं पित्रादेशमनुपालयन् वनं प्रयास्यामि । भ्रातृभाविवियोगविकलश्चन्द्रकेतुरुवाच—"तात ! सौमित्री राममिवाहमपि स्वाग्रजमनुजिगमिषामि । वनेषु पदे पद आपदः । शंकाकुलं मे मानसं न सहते ज्येष्ठमेकलं[1] वने वीक्षितुम्[2] । अहं सहोदरचरणाराधनपरायणः समयं नेष्यामि" । राजा प्राह—"जात, यावत्सूर्यकेतुर्वनात्प्रतिनिवर्तते त्वमत्र स्थितः प्रशासनकर्मणि मे सहायकः स्याः । तव जनन्यपि ते मुखं निरीक्षमाणा कालं गमयिष्यति । अतो नाहं त्वामनुज्ञातुं क्षमः ।" साश्रुनयनश्चन्द्रकेतुरपृच्छत्—"भ्राता कदा निवर्तिष्यते ।" राजा प्रत्यवदत "एतन्नियत्यधीनम्[3]" । चन्द्रकेतुरुवाच—'पितृदेव, एतद्विचित्रम् । अनवधिविरहं[4] कथं सहिष्यामहे । सुनिश्चितान्ता लम्बतमापि प्रतीक्षा न तथा बाधते यथाऽविदितविरामा[5] लघ्वी-अपि सा चेतो विकलयति' । भूपतिरभाषत 'पुत्र, इदं सारगर्भं प्रोक्तं त्वया परं यन्न मानवायत्तं तस्य किं वाच्यम् । समायातोऽयं युवयोः परीक्षाकालः । अनले स्वर्णवत्स्वोत्कृष्टतां साधयन्तौ राजवंशयशो नभो नेष्यत इत्यस्ति मे प्रत्ययः ।' निकटस्था सजलनयना महिषी किमपि भाषितुं न प्राभवत् ।

राजकुमारौ पितरौ प्रणम्य कक्षं विससृजतुः । सूर्यकेतुः-राजप्रासादान्तः प्रांगणपूर्वकोणे स्वहस्तविरचितवाटिकां सलिलेन संसिच्य मातृकराप्तधान्यकणान् वपंश्चन्द्रकेतुमुवाच "प्रियानुज, संध्यायां दिवसदिनकरयोरिवावयोर्वियोगकालः समापतति । एतद्वा-

---

1. एकलम्-एकाकिनम् ।
2. वीक्षितुं-द्रष्टुम् ।
3. नियत्यधीनं-भाग्याधीनम् ।
4. अनवधीति-अवधिरहितं वियोगमिति भावः ।
5. अविदितेति-अविदितः अज्ञातः विरामः अन्तः यस्याः सा अविदितविरामा ।

उसी प्रकार बाहुबल से जुल्म करने वाले प्राणियों को मार कर तपोवन को मुनियों के लिए सुखदायक बनाकर घर लौट आएंगे।" राजा भावों से भरे हृदय वाला फिर बोला "पुत्रो, नहीं आप में से एक ही जायेगा। दूसरा यहां ठहर कर प्रशासन में मेरी सहायता करेगा। आज सूर्यकेतु पहले कमरे में प्रविष्ट हुआ है इसलिए यही वन को जाएगा, यही मेरी आज्ञा है।

पिता का वचन सुनकर हाथ जोड़े सूर्यकेतु बोला – "पिता जी, मैं राम के समान भाग्यवान् हूं। वह कौन से पुण्यक्षण होंगे जिन में मैं पिता की आज्ञा का पालन करता हुआ वन जाऊंगा। भाई के आने वाले वियोग से व्याकुल हुआ चन्द्रकेतु बोला—"पिता जी, लक्ष्मण की तरह मैं भी अपने भाई के पीछे जाना चाहता हूं। वन में पैर-पैर पर आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए शंकाओं से भरा मेरा मन बड़े भाई को वन में अकेला देखना सहन न कर सकता है। मैं भाई के चरणों की आराधना करता हुआ समय बिताऊंगा।" राजा बोला—"पुत्र, जब तक सूर्यकेतु वापस आए, आप यहां ठहरे हुए राज्य के काम काज में मेरी सहायता करो। तुम्हारी माता भी आप के मुखड़े को देखती हुई समय बिताएगी। इसलिए मैं आप को जाने की आज्ञा न दे सकता हूं।" आंसुओं से भरे नेत्रों वाले चन्द्रकेतु ने पूछा—"भाई कब लौटेगा"। राजा ने उत्तर दिया—"यह भाग्य के अधीन है"। चन्द्रकेतु बोला—"पितृदेव, यह विचित्र बात है। बिना अवधि के वियोग को हम कैसे सहन करेंगे। निश्चित अन्तवाली लम्बी भी प्रतीक्षा उतना कष्ट न देती है जैसे अज्ञात अन्त वाली थोड़े समय की भी वह मन को व्याकुल करती है। राजा बोला–"पुत्र आप ने यह ठीक बात कही है परन्तु जो मनुष्य के अधीन ही न हो उसके बारे में क्या कहा जाय। आप की परीक्षा का समय आ गया है। आग में स्वर्ण के समान अपनी उत्कृष्टता को दिखाते हुए आप राजवंश की कीर्ति को ऊंचा ले जाओगे ऐसा मेरा विश्वास है।" पास बैठी हुई पानी से भरे नेत्रों वाली रानी कुछ भी न बोल सकी।

राजकुमार माता-पिता को प्रणाम करके कमरे से चले गये। सूर्यकेतु राजमहल के अन्दर आंगन के पूर्व के कोणे में अपने हाथों से बनाई बगीची को पानी से सींचकर माता के हाथों से प्राप्त धान्यकणों को बोता हुआ चन्द्रकेतु को बोला—"प्रिय भाई, सायंकाल में दिन और सूर्य के समान हमारा वियोग का समय आ गया है।

टिकोप्तधान्यकणास्तृतीयदिवसेऽङ्कुराणि दर्शयिष्यन्ति । त्वमेतां प्रत्यहं पानीयेन सिञ्चेथाः । क्षुपाः सदैव हरिताः स्थास्यन्ति । जलक्लिन्नापि यदेयं शुष्कतां प्रयायात्तदा मां विपद्ग्रस्तं विज्ञायोद्धर्तुमागच्छेः ।" इत्यभिधाय चन्द्रकेतुं वक्षसाऽऽलिङ्गत् । सोऽपि स्वीकृतवचाः सजलनयनो ज्येष्ठस्य पादावस्पृशत् ।

अपरमध्याह्ने लम्बजटाभिर् भूमिं स्पृशन् वेषभूषया लोकानां मनांस्याहरन्नायताक्षः समुन्नतभालस्तपस्तेजसा प्रहरिणां दृष्टिं नमयन्निव गौतमो मुनी राजप्रासादमुख्यद्वार मुपागमत् । तेजःपुञ्जमिव तमवलोक्य द्वारपालः किञ्चिद् भीत इव तेनानुक्त एव भूपतये तदागमनं निवेदयामास । मृगेन्द्रगर्जनां निशम्य प्राणभयात्पथिक इव राजकुमाराशंकितविरहविकलो हृदयं बलेन धारयन्निव राजा "मुनिः स्वयमागतो राजकुमारनिनीषये" ति विभाव्यानिच्छन्तीमपि भार्यां सहादाय विवाहमंगलकर्माणि लोकलज्जायै विरोधिप्रतिवेशिनमामंत्रयितुं यथा खिन्नमना मुनिं सत्कर्तुं राजद्वारं समागमत् । पाद्यार्घ्याचमनीयैः संपूज्य मस्तके तिलकं विधायार्तिक्येन [1]सभाजयित्वा तं प्रासादान्तः प्रवेशयामास । राजा प्राह — "भगवन्! भवद्भिश्चरणारविन्दाभ्यां पावनतां नीतोऽयं राजप्रासादः । महान्तमनुग्रहं मन्येऽहमत्रभवताम् । एवंविधपुण्यक्षणा मानवभाग्ययोगादेव कदाचिल्लभ्यन्ते । भवत्कृपयैव वर्धितं राजकुलेन । त्रयोदशहायनलब्धपदौ कुमारौ सांप्रतम् । आदिश्यतां मे करणीयं येनायं राजवंशः कृतकृत्यः स्यात् ।

मुनिर् "विनीतोऽयं महाराजः । नायमुपालम्भभाजनम्" इति मनसि विनिश्चित्योवाच-"राजन्! प्रासादमेतं राजकुमारालंकृतं समीक्ष्य मोदते मे चेतः । अद्यत्वे

1. सभाजयित्वा—सत्कृत्य ।

इस बगीची में बोए धान्यकण तीसरे दिन ही अंकुर रूप में उग आएंगे। आप प्रतिदिन इसे पानी से सींचते रहिये। सदा हरे रहेंगे। पानी से सींची हुई भी जब यह सूख जाय तो मुझे संकट में पड़ा जानकर मेरा उद्धार करने आ जाइये"। ऐसा कह कर चन्द्रकेतु को छाती से लगा लिया। उस ने भी बड़े भाई के वचन को स्वीकार कर आंसू भरी आंखों से उसके पैर छू लिये।

दूसरे दिन दोपहर को लम्बी जटाओं से धरती को छूता हुआ वेषभूषा से लोगों के मन को आकर्षित करता हुआ ऊंचे मस्तक वाला तप के तेज से पहरेदारों की नजर को झुकाता हुआ जैसे गौतम मुनि राजमहल के मुख्य दरवाजे पर आ गया। तेज के पुंज के समान उस को देख कर द्वारपाल डर गया और उस के बिना कहे ही राजा को उस के आने की सूचना दे दी। शेर की गर्जना को सुनकर प्राणों के भय से पथिक के समान राजकुमार के आशंकित वियोग से व्याकुल हृदय को कठिनाई से थामता हुआ राजा "मुनि स्वयं ही राजकुमार को ले जाने के लिये आ गया" ऐसा समझ कर न चाहती हुई भी पत्नी को साथ ले कर, विवाह मंगल में लोक लज्जा के लिये विरोधी पड़ोसी को बुलाने के लिये जैसे खिन्न मन वाला मुनि का सत्कार करने के लिए राजद्वार पर आ गया। पाद्य, अर्घ्य, आचमन से पूजा करके मस्तक में तिलक लगा कर आरती से सत्कृत कर उसे महल के अन्दर ले गया। राजा बोला—"प्रभो, आपने चरणकमलों से राजमहल को पवित्र किया। आप की बहुत कृपा हुई। ऐसा पुण्य समय मनुष्य के भाग्ययोग से ही कभी प्राप्त होता है। आप की कृपा से ही राजकुल की वृद्धि हुई है। राजकुमारों ने तेरहवें वर्ष में प्रवेश कर लिया है। मुझे सेवा बताओ जिस से यह राजवंश कृतार्थ हो जाय।"

मुनि "यह राजा बहुत ही विनम्र है। इसे उलाहना नहीं देना चाहिये"। ऐसा मन में सोच कर बोला—"हे राजा, इस महल को राजकुमारों से सजा हुआ देख कर मेरा मन बहुत प्रसन्न है। आजकल

मायाविकापालिकाक्रान्तं तपोवनमपेक्षते भवद्विधक्षात्रधर्मालंकृतभू[1]भुजमापत्परित्राणाय"।[2] महीपतिस्तमसि सूचीमन्वेष्टुं प्रयतमानो यथा मनस्यचिन्तयत्—"अहं कापालिकान्निहन्तुं स्वयं धनुर्धरः प्रयास्यामि मे वाहिनीं वा प्रेषयिष्यामि। परं किमेषो मंस्यते?" मुनिः स्ववचनं पूरयन् "रामवद् वीरोऽयं ज्येष्ठराजकुमारस्तेभ्यः कृताश्रमरक्षणो मुनिवासभूमिं सुसुखां विधाय तपोधनाशीर्वादान् प्राप्स्यति। अनुजानीह्येनं मामनुसर्तुम्"।[3] भूपतिर्मुनेरुक्तं तुषाद्वियोज्यमानं धान्यमुलूखले मुसलपातं यथाऽरुन्तुदमन्वभवत्। मुनिः स्ववचनशृङ्खलां संरक्षन्—"कालान्तरे पत्नीसहायो राज्यभूमिं समेत्य प्रजां धर्मेण पालयन् दुष्टान् दमयन् श्वशुरकुलराजवंशयशो वर्धयिष्यते"। 'आश्रमे कापालिकभीतिः, पत्नीसहायः प्रत्यावर्तिष्यते' इति मुनिवाचि प्रकाशान्धकारमिश्रणमिवानुभवन् राजा पणं पालयितुं फुफ्फुसरोगी जीवनेच्छया तच्छल्यचिकित्सामिव 'यथाज्ञापयन्ति भवन्तः' इति तद्वचनमङ्गीचकार।

सूर्यकेतौ निर्गतेऽनाचारपत्या स्वदोषगूहनाय प्रताडिता शीलवती भार्येव, व्याघ्रमुखात्सप्राणनिर्गता मृगीव, तस्करापहृतालंकरणा नवोढेव, गृध्नुश्वशुराभ्यां यौतुकार्थमुपालम्भसूचीविद्धा वधूरिव, केवलं कन्याप्रजननात्परिवारजनतिरस्कृतयुवतीव, रामे वनं गते कौशल्येव, दुर्वाससा शप्ता शकुन्तलेव, मधुन्याहृते मधुमक्षिकेव शिथिलाङ्गा महिषी राजप्रासादकक्षैककोणे भूमावेव लुठन्ती, अश्रुधाराभिर्महीं सिञ्चती परिचारिकाप्रबोध्यमानापि हृदयं धारयितुं नाक्षमत। लब्धसमाचारो महीपतिर् महीषीमुपगम्य प्राह-"प्रिये! समाश्वसिहि।

1. भूभुजं — राजानम्।
2. आपत्परित्रणाय — विपदो वारणाय।
3. अरुन्तुदं — मर्मभेदकम्।

छल-कपट का रूप धारण करने वाले कापालिक तपोवन पर आक्रमण कर रहे हैं। इस आपत्ति से छुटकारा पाने के लिये क्षत्रिय धर्म के अनुगामी आप जैसे राजा की जरूरत है।" राजा मानों जैसे अन्धेरे में सूई को ढूंढने का प्रयत्न कर रहा हो, मन में सोचने लगा "मैं कापालिकों को मारने के लिये स्वयं धनुष हाथ में लेकर जाऊंगा अथवा अपनी सेना को भेज दूंगा"। मुनि अपने वचन को पूरा करता हुआ "राम के समान बहादुर यह बड़ा राजकुमार उन से आश्रम की रक्षा करके मुनियों के वासस्थान को सुखदायक बनाकर तपस्वियों के आशीर्वाद पाएगा। इसे मेरे साथ भेज दीजिये।" राजा ने मुनि के इस वचन को तुष से अलग किया जा रहा धान्य ऊखल में मूसलपात को जैसे कोमलांगभेदी समझा। मुनि अपने वचन को बढ़ाता हुआ— "समयान्तर में पत्नी समेत राज्य में आकर प्रजा की धैर्य से पालना करता हुआ और दुष्टों को दण्ड देता हुआ ससुर कुल सहित राजवंश की कीर्ति को बढ़ाएगा।" "आश्रम में कापालिकों का डर और पत्नी के साथ लौट आएगा" इस प्रकार मुनि के वचन में प्रकाश और अन्धेरे का मिश्रण जैसे समझते हुए राजा ने प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये, जैसे फेफड़े का रोगी जीने की इच्छा से ओपरेशन को स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार "जैसे आप की आज्ञा" ऐसा कह कर मुनि के वचन को मान लिया।

सूर्यकेतु के चले जाने पर दुराचारी पति द्वारा अपना दोष छिपाने के लिये ताड़ना की हुई पतिव्रता पत्नी के समान, बाघ के मुख से प्राणों सहित निकली हिरणी के समान, चोरों से चुराये भूषणों वाली नई दुल्हन के समान, लालची सास ससुर द्वारा दहेज के लिये तानों की सूइयों से विंधी बहू के समान केवल कन्याओं को जन्म देने से परिवार के लोगों से तिरस्कार की हुई युवती के समान, राम के बन चले जाने पर कौशल्या के समान, दुर्वासा से शाप दी हुई शकुन्तला के समान, शहद के चुरा लेने पर मधुमक्खी के समान, शिथिल अंगों वाली रानी राजमहल के कमरे के एक कोणे में धरती पर ही लेटती हुई, आंसुओं से धरती को भिगोती हुई, परिचारिकाओं से समझाई जा रही भी हृदय को सम्भालने में समर्थ न हो रही थी। इस प्रकार का समाचार पाकर राजा रानी के पास जा कर बोला—"प्यारी, धीरज करो।

किमेवं प्राकृतजनवद्रोदिषि ।[1] अपहृतमुनिजनसंकटः सूर्यकेतुः प्रासादं प्रत्यागमिष्यति ।" महिषी गलगण्डावरुद्धकण्ठरोगीव मन्दवाचा प्राह—"भर्तः। न भवति मे विश्वासः।[2] दिवाकरमृगाङ्कयो विचित्रोऽयं संयोगो ममाशाविपरीतमकाल एव छिन्नः। राजावदत् "प्रिये, कुमारप्रत्यागमने संशयापन्नं मे मनः "पत्नीसहायः समायास्यति" इति मुनिवचसा[3] सप्रत्ययमिव वर्तते। विगतसन्देहोऽहं साम्प्रतं विधौ शीतलतेव। एतत्तर्कसमाश्वसितहृदया महिषी पुनरुवाच—"भर्तः। किं सूर्यकेतुरस्मदनाज्ञप्तो भार्यासहायो भवितुमर्हति ?" राजा प्रत्यवदत् —"तव चिन्तनस्य न कापि गतिः। नारीणां स्वभाव एवैतादृशः। त्रिकालज्ञमुनयो नासत्यं भाषन्ते। सूर्यकेतुर् ध्रुवं प्रत्यावर्तिष्यते। प्रदोषकालोऽयं समायातः। नैषः स्वापसमयः। उत्थाय देवानर्चय। अहमपि संध्यामुपासितुं प्रयामि।" एवं भाषमाणः किञ्चित् क्षुब्ध इव राजा कक्षाद् बहिर् जगाम।

सूर्यकेतूप्तवाटिका तृतीयेऽह्न्येवाङ्कुराणि प्रादर्शयत्। चन्द्रकेतुर्भ्रातृस्नेहाकुलो वाटिकां तत्पादाविव प्रत्यहं शुद्धसलिलेन सिञ्चँस्तेनानाश्वस्तोऽश्रुभिरप्यक्षालयत्। सहोदरे निर्गते विरक्तचन्द्रकेतुमनोविनोदाय भूपतिरन्नप्राशनसंस्कारकाले योगविद्यायां तद्रुचेः स्मरँस्तस्य योगप्रशिक्षणस्याचिन्तयत्। यौगिकसाधनापारंगतो योगेश्वरो नाम पण्डितो राजप्रासादमागत्य प्रत्यहं तं यौगिकक्रिया अशिक्षयत।[4] कुशाग्रबुद्धिश्चन्द्रकेतुरल्पदिवसेष्वेव सकलयोगरहस्यमबुध्यत। स प्राणान्नियम्य सकलं दिनं निष्प्राण इवातिष्ठत्। नासिकापीतजलं मुखेनोद्गिरत्। अवरुद्धवायुर्वर्धितवक्षःस्थले प्रस्तरस्फोटनमसहत। अक्षिपक्ष्मभ्यां भारवज्जलपात्रमुदतोलयत्। असौ भ्रातृविरहवेदनाकुलमातरं समाश्वासयन् राज्यकार्येषु

---

1. अपहृतेति-अपहृतो दूरीकृतो मुनिजनानां संकटो येन सः।
2. दिवाकरमृगांकयोः—सूर्यचन्द्रमसोः।
3. सप्रत्ययं—सविश्वासम्।
4. कुशाग्रबुद्धिः— तीव्रबुद्धिः।

इस प्रकार क्षुद्र मनुष्य के समान क्यों रोती हो। मुनियों के संकट को दूर करके सूर्यकेतु महल को लौट आएगा।" रानी गलगण्ड से रुके हुए कण्ठ वाले रोगी के समान धीमी वाणी में बोली—"पतिदेव, मुझे विश्वास न हो रहा है। सूर्य और चान्द का यह विचित्र संयोग मेरी आशाओं के विपरीत असमय में ही टूट गया। राजा बोला—"प्यारी, कुमार के लौटने में मेरे मन में भी सन्देह था परन्तु 'पत्नी के साथ लौट आएगा' इस मुनि के वचन से विश्वास वाला बन गया है। चन्द्रमा में शीतलता के समान अब मेरे मन में कोई शंका न रह गई है। इस तर्क से आश्वस्त हृदय वाली रानी फिर बोली—'पतिदेव, क्या सूर्यकेतु हमारी आज्ञा के बिना विवाह कर सकता है?" राजा ने उत्तर दिया—"तेरे सोचने का भी कोई ठिकाना नहीं। स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। तीनों कालों के ज्ञाता मुनि लोग झूठ न बोलते हैं। सूर्यकेतु निश्चय ही लौट आएगा। अब यह सायंकाल हो गया है। यह सोने का समय न है। उठ कर देवताओं की पूजा करो। मैं भी संध्या करने के लिये जा रहा हूं।" इस प्रकार बोलता हुआ राजा खिजा हुआ जैसे कमरे से बाहर चला गया।

सूर्यकेतु से बोई वाटिका में तीसरे दिन ही अंकुर निकल आए। भाई के स्नेह से व्याकुल चन्द्रकेतु बगीची को हर रोज शुद्ध पानी से सींचता हुआ उस से सन्तुष्ट न होकर उसे आंसुओं से भी धोता था। भाई के चले जाने पर व्याकुल चन्द्रकेतु का मन लगाने के लिये राजा अन्नप्राशन संस्कार में उसकी योगविद्या के प्रति रुचि को याद करता हुआ योग प्रशिक्षण के बारे में सोचने लगा। यौगिक साधना के पार पहुंचा हुआ योगेश्वर नाम का पंडित राज-महल में आकर हर रोज उसे यौगिक क्रियाएं सिखाता था। तेज बुद्धि वाले चन्द्रकेतु ने थोड़े ही दिनों में सारे योग के रहस्य को जान लिया। वह प्राणवायु को रोक कर सारा दिन प्राणहीन जैसे रह लेता था। नाक से पीये हुए पानी को मुंह से निकाल देता था। वायु के रोकने से फूली हुई छाती पर पत्थर का तोड़ना सहन कर लेता था। आंखों की पलकों से भार वाले जलपात्र को उठा लेता था। वह भाई की वियोगवेदना से व्याकुल माता को आश्वस्त करता हुआ राज्य के काम-काज में

पितुः साहाय्यमाचरत् ।

सूर्यकेतुर्मुनिना सह वनं गच्छन्नध्वनि विविधशौर्यकर्माण्यदर्शयत् । पर्वतस्थपंचतरूनेकेनैव शरेणाविध्यत् । सिंहमेकेनैवेषुणा विगतप्राणं भूमावपातयत् । गौतमस्तस्येदृग्विधां वीरतां निरीक्ष्य दाशरथेर् बाणकौशलेन विश्वामित्र इवामोदत । तृतीयेऽह्नि सूर्यकेतुसहायो गौतम आश्रममवाप। तपोभूमौ मुनिं सेवमानोऽसौ ज्ञानवर्धनाय वेदोपनिषदां विशिष्टाध्ययननिमग्नोऽतिष्ठत् । बहवो मुनिकुमारास्तस्य मित्राणि बभूवुः । तस्य शस्त्रकौशलं निरीक्ष्य सकलवनवासिनो विस्मयममन्यन्त । कालयोगात्कापालिकास्तत्र समागत्य महान्तमुत्पातं कर्तुमारभन्त । क्वचिन्मांसं, क्वचिद्रुधिरं क्वचिद्विष्ठां विकीर्याऽऽश्रमं दूषयन्त इतस्ततोऽधावन् । मुनिकुमारकाः कन्याश्च सर्पसंघादिव तेभ्यो भीता बहिर् गन्तुं नापारयन् । सूर्यकेतुस्तत्रागतांस्तान् सर्वान् बाणैर्निजघान ।

मुनिर्गौतमो राजकुमारशालीनताविमुग्धस्तं पुत्रवदपश्यत् । असौ मनस्यचिन्तयत्—"मयैनमिहानीय तपस्विजनाननुभूतो मोहः समर्जितः । एतस्य स्वभावो मे मनः प्रतिपलमाकर्षति । अयं क्षत्रियकुमारः क्षात्रधर्ममनुपालयँश्चेत्कदाचिन्मायाविकापालिक[1]जिघांसया तमनुधावेत्तदा न जाने कीदृशः परिणाम उपस्थितः स्यात् । एनं[2] विहाय नाहमन्यत्र गन्तुमुत्सहे । परं भवितव्यतां नाहमपि वारयितुं क्षमः । एतस्या वशस्थितस्त्रिलोकालोककरो भास्करोऽपि राहुग्रस्तः संजायते ।"

एकदैको महिषरूपकापालिकस्तत्रागत्य विविधानर्थपरायणो बभूव । तद्भीता आश्रमवासिन वर्षोपलपातभीतपथिकाः शरणस्थलमिवेतस्ततोऽधावन्। असौ तपस्विपूजास्थलेषु विष्ठां विकिरन् मूत्रोत्सर्गं कुर्वन् विषाणाभ्यां तपोवनवृक्षानुत्पाटयन् खुरापातैः कुटीराणि बभंज । वज्रसमदन्तान् बहिर् निष्कास्य वनवासिनो भयं निनाय । एतत्सकलं निरीक्ष्य सूर्यकेतुक्षत्रियत्वं[3] मेघसंघट्टनेन विद्युदिव जजागार ।

---

1. जिघांसया-हन्तुमिच्छया ।
2. विहाय-त्यक्त्वा ।
3. मेघानां संघट्टनेन-परस्परं घर्षणेन ।

पिता की सहायता करता था।

सूर्यकेतु मुनि के साथ वन को जाता हुआ रास्ते में अनेक प्रकार की शूरवीरताएं दिखाने लगा। पंक्ति में खड़े पांच पेड़ों को एक ही तीर से बींध दिया। शेर को एक ही तीर से मार कर धरती पर गिरा दिया। गौतम उसकी इस प्रकार की वीरता को देख कर रामचन्द्र के बाण-कौशल से विश्वामित्र के समान प्रसन्न हुआ। तीसरे दिन सूर्यकेतु के साथ गौतम मुनि आश्रम में पहुंच गया। तपोभूमि में वह मुनि की सेवा करता हुआ अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए वेद उपनिषदों के विशेष अध्ययन में मग्न रहने लगा। बहुत से मुनि कुमार उसके मित्र बन गये। उसके शस्त्र कौशल को देख-कर सभी वनवासी अचम्भा मनाने लगे। कालयोग से कापालिक वहां आ कर बड़ा उपद्रव मचाने लगे। कहीं मांस, कहीं खून, कहीं मल को बिखेर कर आश्रम को दूषित करते हुए इधर-धर दौड़ते थे। मुनिकुमार सांपों से जैसे उन से डरे हुए बाहर न जा सकते थे। सूर्यकेतु ने वहां आने वाले उन सभी को वाणों से मार दिया।

गौतम मुनि राजकुमार की शिष्टता से मुग्ध हुआ उसको पुत्र के समान देखता था। वह मन में सोचने लगा "मैंने इस को यहां लाकर तपस्वियों से अनुभव न किया हुआ मोह पैदा कर लिया। इस का स्वभाव मेरे मन को पल पल खींचता रहता है। यह क्षत्रिय कुमार क्षात्रधर्म का पालन करता हुआ यदि कभी मायावी कापालिक को मारने की इच्छा से उसके पीछे दौड़ जाय तो न मालूम क्या परिणाम हो! इस को छोड़कर में कहीं भी न जा सकता हूं। परन्तु होनहार को मैं भी न टाल सकता हूं। इसके वश में हुआ तीनों लोकों में प्रकाश करने वाला सूर्य भी राहु से ग्रसा जाता है।"

एक बार भैंसे के रुप में एक कापालिक वहां आ कर बड़ा उत्पात मचाने लगा। उससे डरे हुए आश्रमवासी ओलों के गिरने से डरे हुए यात्री शरण-स्थल को जैसे इधर-उधर भागने लगे। वह तपस्वियों के पूजास्थल में विष्ठा को विखेरता हुआ, पेशाब करता हुआ सींगों से तपोवन के वृक्षों को उखाड़ता हुआ खुरों के प्रहार से मुनियों की कुटियाओं को तोड़ने लगा। वज्र के समान दान्तों को बाहर निकाल कर महात्माओं को डराने लगा। यह सब कुछ देखकर बादलों के आपस में घर्षण से बिजली के समान सूर्यकेतु का क्षत्रियत्व जाग उठा।

स धनुषि बाणमाधाय मारीचमनु राम इव तत्पश्चाद्दधाव। महिषः क्रोशानन्तरं मृगरूपाविष्टो वामं दक्षिणञ्चाकूर्दत। सूर्यकेतुस्तं लक्ष्ये समानेतुं भृशं प्रयेते परं न शशाक। पंचगव्यूतेरनन्तरं[1] कापालिको मृगरूपं विहायाश्वरूपमास्थितो वायुवेगेनाधावत्। राजकुमारोऽपि तद्गत्यैव तमन्वधावत् परं[2] सप्तेषुभिरपि वेद्धुं नापारयत्। पंचदशक्रोशानुल्लंघ्य भूतनाथस्त्यक्ताश्वरूपो वास्तविकाकृतिं दधार। मुण्डमालामण्डितमायतनेत्रं तं निरीक्ष्य भीतः स्खलितपादो राजकुमारो हस्तयोर्धनुर्धारयितुमपि न शशाक। भूतनाथः सूर्यकेतुं पृष्ठमारोप्य गुहां निनाय।

भूतनाथकापालिकः सूर्यकेतो रूपलावण्यं समीक्ष्य मनस्यचिन्तयत्—"मीनकेतुरिवातिरूपवानयं राजकुमारः। नाहमेतस्यानिष्टं करिष्यामि। चेदयं मे सुतां परिणयेत्तदातिशोभनमापतेत्। अस्तु, कतिचिद्दिवसानन्तरं प्रस्तावं करिष्यामि"। ततोऽसौ सूर्यकेतुमाह "मा बिभीहि त्वम्। नाहं ते मुण्डं कर्तिष्यामि। पत्नीविहीनोऽहं प्रातर् गुहान्निर्गतः सायं प्रत्यावर्ते। मम तनया दामिन्येकलात्र तिष्ठति। एतया सह त्वमानन्देन कालं नयेः। परमवधेयं, मामनापृच्छ्य नेतोऽपसर्पेरन्यथा ते मुण्डमपि मे मालामलंकरिष्यति।" सूर्यकेतुः पलायनक्षमोऽपि कानिचिद्दिनानि तत्र नेतुं मनश्चकार।

भूतनाथे बहिर्गते सूर्यकेतुर्दामिन्या सह गुहायामवातिष्ठत। दामिनी कनकलतेव सौन्दर्ये रम्भामप्यतिचक्राम। तस्याः प्रभा गुहान्तर्गतं तमः प्रकाशपरिवर्तितमिवाकरोत्। सा स्वलावण्येन स्पर्धमानं सूर्यकेतो रूपं विलोक्याचिन्तयत्—"वनदेवताभिर्मदर्थमेवायं प्रेषितः।

---

1. पंचगव्यूतेरिति – गव्यूतिः क्रोशद्वयम्। दशक्रोशानन्तरमिति भावः। "गव्यूतिः (स्त्री) क्रोशयुगं नल्वः किष्कुचतुःशतम्" (इत्यमरः)
2. सप्तेषुभिः—सप्तबाणैः।

वह धनुष पर बाण चढ़ा कर मारीच के पीछे राम के समान उसका पीछा करने लगा। भैंसा एक कोस के बाद हिरण के रूप में बांए-दांए घूमने लगा। सूर्य-केतु ने उसे लक्ष्य में लाने के लिये बहुत प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सका। दस कोस के बाद कापालिक मृग के रूप को छोड़ कर घोड़े के रूप में वायु के समान वेग से दौड़ने लगा। राजकुमार भी उसकी गति से ही उसके पीछे दौड़ा परन्तु सात तीरों से भी उसे बींध न सका। पन्द्रह कोस के बाद भूत-नाथ घोड़े के रूप को छोड़कर असली शकल में आ गया। मुण्डमाला से सजे लम्बे नेत्र वाले उस कापालिक को देखकर राजकुमार डर गया उसके पैर फिसल गये और धनुष भी उस के हाथ से छूट गया। भूतनाथ सूर्यकेतु को पीठ पर बैठा कर गुफा को ले गया।

भूतनाथ कापालिक सूर्यकेतु की सुन्दरता को देखकर मन में सोचने लगा—"यह राजकुमार कामदेव के समान बहुत ही सुन्दर है। यदि यह मेरी पुत्री के साथ बिबाह करना मान जाय तो बहुत ही अच्छा है। अच्छा कुछ दिनों के बाद यह प्रस्ताव रखूंगा।" फिर वह सूर्यकेतु को बोला—"तुम डरो मत। मैं आपके सिर को नहीं काटूंगा। पत्नी से हीन मैं प्रातः ही घर से निकल जाता हूं और सांयकाल को लौटता हूं। मेरी पुत्री दामिनी यहां अकेली रहती है। इसके साथ तुम आनन्द से समय बिताओ। पर ध्यान रहे मेरे से बिना पूछे यहां से जाना नहीं। नहीं तो आपका सिर भी मेरी माला को सजाएगा।" सूर्यकेतु ने भागने में समर्थ होते हुए भी कुछ दिन वहां बिताने को मन बना लिया।

भूतनाथ के बाहर चले जाने पर सूर्यकेतु दामिनी के साथ गुफा में रहने लगा। दामिनी सोने की लता के समान सुन्दरता में रंभा को भी मात करती थी। उसकी कान्ति गुफा के अन्धेरे को मानों प्रकाश में बदल रही थी। वह अपनी सुन्दरता से स्पर्धा करने वाले सूर्यकेतु के सौन्दर्य को देखकर सोचने लगी—"वनदेवताओं ने इसे मेरे लिये ही भेजा है।

अहमेनमात्मसात्करिष्यामि ।" सा स्रग्गुम्फनकलायामेवंविधं कौशलमावहत् यथा शतकुसुमग्रथितमालायामेकपुष्पस्यैवानुभूतिः । न केवलमेतदेवासौ पृथक् कृतानि प्रसूनस्य शतं पर्वाणि पुनर्मेलयित्वा पूर्वनिर्विशेषमकरोत् । सूर्यकेतुं दामिनीलावण्यं न तथाकर्षद् यथैषा कला । स स्वयमप्येतं गुणं प्रशिक्षितुमैच्छत् । दामिन्यपि भाविभर्तृ[1]चिकीर्षया तन्मोहनाय [2]लब्धावसरा तं हृदयेनैव कलामिमां प्राशिक्षयत । [3]मेधावी सूर्यकेतुः सप्तदिवसेष्वेवैतत्कलायां दामिनीसमकौशमलभत । दामिनी प्रत्यहं मालां निर्माय तस्मै प्रयच्छन्ती वनान्मधुरकन्दमूलफलान्याहृत्योपाहरन्ती स्वीयभावानुभावैस्तमात्मप्रियं कर्तुं भृशं प्रायतत । 'ममैवायं जातः साम्प्रतम्' इति [4]जातप्रत्यया समयमुपलभ्य तमेकदा सहशय्यार्थं प्रार्थयामास । सूर्यकेतुरचिन्तयत्—"अहं भारतीयराजकुमारः । अस्मत्संस्कृतौ परिणीतभार्यातिरिक्तं सकलयुवतयः [5]स्वसृसमाः । नाहमेनां स्प्रष्टुत्सहे ।" नवनीतमालोक्य को भक्षणाद् विरमति । ज्योत्स्ना कस्य चित्तं नाकर्षति । शीतार्तः क आतपं निषेवितुं न कामयते । परं सूर्यकेतुर्नासीदेवंविधो राजकुमारः । संस्कृतिदीक्षितः स दामिनीप्रार्थनां सगर्वं निरादृत्य चरितमानदण्डमस्थापयत् ।

सायं गुहामायातो भूतनाथो दामिनीमुदासीनां विलोक्य तत्कारणं ज्ञातुं प्रायतत परं सा किमपि नाभाषत । 'सूर्यकेतुपरिणयप्रस्तावे विलम्बमनुभवन्ती तनया मयि रुष्टेति' विभावयन्नसौ तं तां परिणेतुमभ्यर्थयामास । सूर्यकेतुः 'वयं राजकुमाराः पित्रनाज्ञप्ता न विवाहबन्धनं स्वीकुर्मः' इत्यभिधाय तस्य प्रार्थनां निरादद्रे । एतेन भूतनाथः सूर्यकेतौ रुष्टः 'श्व एतन्मुण्डं मे मालां शोभयिष्यते' इति कृतनिर्णयोऽतिष्ठत् । [6]अपरेद्युर्दामिन्यपि [7]कर्णेजपेव

---

1. चिकीर्षया कर्तुमिच्छया ।
2. लब्धेति—लब्धः अवसरः सुसमयः यया सा ।
3. मेधावी—बुद्धिमान् ।
4. जातेति—जातः प्रत्ययः विश्वासः यस्याः सा ।
5. स्वसृसमाः—भगिनीसमाः ।
6. अपरेद्युः—अपरस्मिन् दिने ।
7. कर्णेजपा—पिशुना ।

मैं इसे अपना बनाऊंगी ।" वह माला बनाने की कला में इतनी चतुर थी कि सौ पुष्पों से बनी माला में एक ही फूल प्रतीत होता था । केवल यही नहीं वह अलग की हुई फूल की सौ पंखुड़ियों को फिर मिला कर पहले की तरह ही बना देती थी। सूर्यकेतु को दामिनी की सुन्दरता ने इतना आकर्षित न किया जितना इस कला ने । उसने स्वयं भी इस गुण को सीखना चाहा । दामिनी ने भी उसे अपना पति बनाने की इच्छा से उसे मोहित करने का यह अच्छा अवसर समझा और अन्तर्मन से इस कला को उसे सिखाने लगी। बुद्धिमान सूर्यकेतु ने सात दिन में ही इस कला में दामिनी के बराबर ही कौशल प्राप्त कर लिया । दामिनी हर रोज माला बना कर उसको देती थी और बन से मीठे कन्दमूल, फल लाकर उसको खिलाती हुई अपने हाव-भावों से उसे अपना बनाने का भरसक प्रयत्न करने लगी । 'अब यह मेरा ही हो गया है। ऐसा जब उसे विश्वास हो गया तो एक दिन समय पा कर उस से सहशय्या की प्रार्थना की । सूर्यकेतु सोचने लगा—"मैं भारतीय राजकुमार हूं। हमारी संस्कृति में विवाहित पत्नी के अतिरिक्त सब युवतियां बहन के बराबर हैं। मैं इसका स्पर्श न कर सकता हूं ।" मक्खन को देख कर खाने से कौन रुकता है। चान्दनी किस के चित्त को न खींचती है। शीत से पीड़ित कौन धूप में न बैठना चाहता है । परन्तु सूर्यकेतु इस प्रकार का राजकुमार न था । संस्कृति से प्रभावित उसने दामिनी की प्रार्थना को बड़े गर्व के साथ ठुकरा कर चरित्र का मानदण्ड स्थापित किया ।

सांयकाल गुफा में आये हुए भूतनाथ ने दामिनी को उदासीन देखकर उसका कारण जानने का प्रयत्न किया परन्तु वह कुछ भी न बोली । सूर्यकेतु-'हम राजकुमार माता-पिता की आज्ञा के बिना विवाहबन्धन को स्वीकार न करते है" ऐसा कह कर उस की प्रार्थना को ठुकरा दिया । इस से भूतनाथ उस पर रुष्ट हो गया । 'कल इस का सिर मेरी माला को सजाएगा' उसने ऐसा निर्णय कर लिया । दूसरे दिन दामिनी भी चुगलखोर के समान

तातेन सह बनं गता सूर्यकेतुविरुद्धं तत्कर्णौ-अपूरयत् । ततः स एव शुको गुहामागत्य सूर्यकेतुसमक्षमेवमपठत्—

कापालिकोऽस्ति संक्रुद्धः प्रेरितः सुतया स्वया ।
सायं गुहां समागत्य वधं तेऽद्य करिष्यति ॥

एवं निगदन्नसौ विहस्य रोदितुमारभत। सूर्यकेतुः शुकं हासरोदनहेतुमपृच्छत् । ततोऽसाववदत्—'तव कामसमरूपं निरीक्ष्य मया हसितं परमद्यैव ते मरणमिति विज्ञाय मया रुदितम्'। 'ततो मम प्राणरक्षणं कथं स्यादिति' तेन पृष्टः शुकोऽभाषत—'अद्य कापालिको भ्राष्ट्रेऽनलं प्रज्वाल्य तदुपरि तैलकटाहेऽङ्गारसमसंतप्ते सति स त्वां तस्य सप्त[1]परिक्रमाः कर्तुं वदिष्यति। सप्तमपरिक्रमायां कटाहं नन्तुं नतं त्वां तस्मिन् प्रक्षेप्स्यति। एवं सति 'अहं राजकुमारो नात्रत्यरीतिं बुध्ये। भवान् दृष्टान्तं प्रस्तौतु।' एतत्तर्केण ते मार्गदर्शनाय भ्राष्ट्रं परिक्रमन्तं सप्तमपरिक्रमणे वन्दितुं नतं तं धक्कया कटाहे प्रक्षिप्येतः पलायेथाः। परं विद्रवन् मां सह नेतुं मा विस्मरे' त्यभिधाय विरराम।

सूर्यकेतुरचिन्तयत्—'नेतः धावितुमक्षमोऽहम्। परं शत्रुभीत्या पलायनं न क्षत्रियधर्मः। अहं भूतनाथं बाणेनापि हन्तुं[2] क्षमः। परमतेदपि न करिष्यामि। शुकवचनमनुसरन् कापालिकप्रथा निरीक्षिष्ये। नेतः परं कौतुकमिदं जीवनसुलभम्। चेच्छुकवचनं सत्यं तदा कापालिकं कटाहे प्रक्षिप्यैवेतो गमिष्यामि।"

प्रकृतेर्नियममनुलंघ्याथापतत्सायंकालः। कापालिकस्त[3]नयां स्वमित्रसदने परित्यज्यैकल एव गुहां समागमत्। सूर्यकेतुस्तस्यापूर्वदृष्टाकृतिं निरीक्ष्य 'शुकवचनं प्रमाणितं स्थास्यती'ति विश्वसन्नाशङ्कितभयप्रतिकाराय प्रस्तुतोऽतिष्ठत्।

1. परिक्रमाः—प्रदक्षिणाः।
2. क्षमः—समर्थः।
3. तनयां—पुत्रीम्।

पिता के साथ वन को गई और सूर्यकेतु के प्रतिकूल उसको बहुत भड़काया। फिर वही तोता गुफा में आया और सूर्यकेतु के सामने यह श्लोक पढ़ा—

अपनी पुत्री से भड़काया हुआ कापालिक आप पर क्रुद्ध है। वह सायंकाल गुफा में आकर तुम्हारा वध कर देगा ॥

इस प्रकार बोलता हुआ वह पहले हंसा और फिर रोने लगा। सूर्यकेतु ने तोते से हंसने और रोने का कारण पूछा। तब वह बोला—"तुम्हारे काम सम रूप को देखकर मैं हंसा हूं परन्तु आज ही तुम्हारी मौत हो जायगी यह जानकर मैं रोया हूं।" "तो फिर मेरे प्राणों की रक्षा कैसे हो सकती है।' इस प्रकार उसके पूछने पर तोता बोला—"आज कापालिक भट्ठी में आग जलाकर उस के ऊपर रखा तेल जब अङ्गार के समान गर्म हो जायगा तो वह तुम्हें उसकी सात परिक्रमा करने को कहेगा। सातवीं फेरी में कड़ाह को नमस्कार करने के लिये झुके हुए तुम को उस में फैंक देगा। ऐसा होने पर 'हम राज-कुमार यहां की प्रथाओं को न जानते हैं। आप पहले स्वयं करके दिखाएं।' इस युक्ति से तुम्हारे मार्गदर्शन के लिये भठ्ठी की परिक्रमा करते हुए और सातवीं फेरी में नमस्कार के लिये झुके हुए उस को धक्का देकर कड़ाहे में फैंक कर यहां से भाग जाना। परन्तु भागते हुए मुझे साथ ले जाने की बात न भूल जाना" इतना कह कर चुप हो गया।

सूर्यकेतु सोचने लगा—"मैं यहां से भाग भी सकता हूं। परन्तु शत्रु के भय से भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं। मैं भूतनाथ को तीर से भी मार सकता हूं पर ऐसा भी न करूंगा। तोते के वचन का पालन करता हुआ कापालिक प्रथाओं को देखूंगा। यह कौतुक जीवन में फिर देखने को न मिलेगा। यदि तोते का कहा सत्य हुआ तो कापालिक को कड़ाहे में फैंक कर ही यहां से जाऊंगा।"

प्रकृति के नियमानुसार सायंकाल हो गया। कापालिक अपनी पुत्री को किसी मित्र के घर छोड़कर अकेला ही गुफा में आया। सूर्यकेतु उसकी अनोखी आकृति को देखकर 'तोते का वचन ठीक हो प्रमाणित होगा'। ऐसा विश्वास करके आंशकित भय का सामना करने के लिये तैयार हो गया।

भूतनाथस्तमवदत्—"अद्यास्माकं महान् पर्वदिवसः। निशीथे सकलकापालिका अत्रागत्य विविधवाद्यवादनपूर्वकं गास्यन्ति नर्तिष्यन्ति च। अद्यैवानूढानां परिणयः परिणीतानां च मधुरमिलनम्। दामिन्यप्यद्यैव भर्तारमाप्स्यति। अहं प्रधानकापालिकः। अद्यैव नवप्रधाननिर्वाचनम्। त्वमेतदुत्सवे सहर्षं भागं गृह्णीयाः। इतरकापालिकोपस्थितेः पूर्वमुत्सवविशिष्टविधिं पूरयितुमहं भ्राष्ट्रे प्रदीप्तानलः कटाहे कर्पटिकापाकाय तैलमुष्णं करिष्यामि। कटाहसप्तपरिक्रमणरीतिं भवान् पूरयिष्यति', इत्युक्त्वा तत्सर्वं विधाय तैलेऽनलसमतापमावहति स सूर्यकेतुं परिक्रमितुमादिदेश। 'भवान् पूर्वं दृष्टान्तं दर्शयतु'। इति सूर्यकेत्वभ्यर्थितो भूतनाथः सप्तमपरिक्रमणे यदा कटाहं नन्तुं नतस्तदा लब्धावसरोऽसौ तं धक्कया कटाहे प्रक्षिप्य वायुवेगेन पलायांचक्रे। परं संभ्रमवशाच्छुकं नेतुं व्यस्मरत्। निशीथे[1] दामिनीसंगा गुहागताः कापालिकाः प्रधानं भूतनाथं [2]गतासुं विज्ञाय भृशं रुरुदुः। तेषां नारीवक्षःस्थलप्रताडनोत्थितो दुन्दुभिसमघोर-ध्वनिर् वन्यप्राणिनो दूरमद्रावयत्। दामिनीनयनाश्रुधारा तस्याः पादावक्षालयत्। ततः प्रशान्ते कोलाहले रुमन्वान्नाम कापालिकधर्माचार्यः प्रोवाच—भो भो बान्धवाः, युगाननुकूलं भद्रपुरुषघृणास्पदं विचित्रं नो जीवितम्। मानवरक्तमेवास्माकं मधुरं पयः। पशुमेदो यवागूः। पिशितं प्रियाहारः। अस्थिचूषणमिक्षुरसास्वादः। मदिरा[2] जाह्नवीपयः। मांसेन देवार्चनमस्माकं धर्मः। शृगालीशब्दो वेदवाक्यम्। [3]विधिनिषेधनिर्धारणे काका एव गुरवः। श्वान एव सखायः। विहंगमवेध एव बुद्धिपरीक्षणम्। परयुवतिसंगः कौतुकम्। गीतैर्मृगाकर्षणमेव पाटवम्। तपोधनोत्पीडनं मनोविनोदः। नरमु-

---

1. निशीथे-अर्धरात्रौ।
2. गतासुं-मृतम्।
3. जाह्नवीपयः—गंगोदकम्। विधिनिषेधनिर्धारणे—कार्याकार्यनिर्णये।

भूतनाथ उसको बोला—"आज हमारा बहुत बड़ा पर्वदिवस है। आधी रात को सारे कापालिक यहां आकर अनेक प्रकार के बाजों को बजाते हुए गाएंगे और नाचेंगे। आज ही अविवाहिताओं का विवाह और विवाहिताओं का मधुर मिलन होगा। दामिनी भी आज ही पति को पाएगी। मैं प्रधान कापालिक हूं। आज ही नये प्रधान का निर्वाचन होगा। आप को इस उत्सव में बड़ी प्रसन्नता के साथ भाग लेना चाहिये। दूसरे कापालिकों के आने से पहले उत्सव की विशेष विधि को पूरा करने के लिये मैं भट्ठी में आग-जला कर कड़ाहे में पूरी पकाने के लिये तेल को गर्म करूंगा कड़ाहे की सात परिक्रमा की प्रथा को आप पूरा करोगे"। ऐसा कह कर वह सब कुछ पूरा कर के तेल जब आग के समान गर्म हो गया तो उसने सूर्यकेतु को फेरी देने का आदेश दिया। 'आप पहले वैसा करके दिखाएं' सूर्यकेतु की ऐसी प्रार्थना पर भूतनाथ सातवीं फेरी में जब कड़ाहे को नमस्कार करने को झुका तो वह मौका पाकर उसे धक्के से कड़ाहे में गिराकर वायु के वेग से भाग गया। परन्तु घबराहट के कारण तोते को साथ ले जाना भूल गया। आधी रात को दामिनी के साथ गुफा में आए हुए कापालिक प्रधान भूतनाथ को मरा हुआ जान कर बुरी तरह से रोने लगे। उन की नारियों के छाती पीटने से उठी हुई नगारे के समान घोर आवाज़ ने वन के प्राणियों को दूर भगा दिया। दामिनी की आंसुओं की धारा ने उसके पैरों को धो दिया। तब फिर इस कोलाहल के समाप्त होने पर रुमन्वान नाम का कापालिकों का धर्माचार्य बोला—"अरे अरे बन्धुओं, युग के प्रतिकूल भद्र पुरुषों से घृणा किया जाने वाला हमारा जीवन भी विचित्र ही है। मनुष्य का खून ही हमारे लिये मीठा दूध है। पशुओं की चर्बी खिचड़ी है। मांस प्यारा भोजन है। हड्डियों का चूसना गन्ने के रस का स्वाद है। शराब गंगा का जल है। मांस से देवताओं की पूजा करना हमारा धर्म है। गीदड़ों की ध्वनि वेदवाक्य है। कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करने में कौए गुरु हैं। कुत्ते मित्र हैं। पक्षियों के बींधने में ही बुद्धि की परीक्षा है। दूसरों की नारी से समागम करना तमाशा है। गीतों से हिरणों का खींचना चतुराई है। तपस्वियों को पीडा पहुंचाना दिलबहलाव है।

ण्डान्येव जपार्यं रुद्राक्षकाणि । शून्यारण्यान्येव नो राज्यपरिधिः । अद्याहं कापालिकशास्त्रोक्तमर्यादां भवतां पुरस्तात्प्रस्तुवन् गर्वमनुभवामि—"यदा प्रधानकापालिकः कटाहे निपत्य प्राणांस्तक्ष्यति तदैव कापालिकप्रथान्तः संभविष्यति"। अतोऽद्यारभ्य न कोऽपि मुण्डमालया कण्ठं भूषयिष्यति न चैतत्कृते कमपि प्राणैर्वियोजयिष्यते । शुभकर्मप्रवृत्ता भवन्तः सभ्यमानवसमाजे पदं प्राप्याऽऽदरमालभन्ताम्"। इत्युक्त्वा तूष्णीमभवत् । सर्वे कापालिकास्तद्वचनं सतालिकावादनमन्वमोदन्त । दामिन्येतद्दुष्कृत्यं सूर्यकेतोर्विज्ञाय सुगुप्तं समवयसो यूनस्तमन्वेष्टुं प्रेरयामास । ते भृशं प्रयेतिरे परं क्वापि द्रष्टुं नाशक्नुवन् अन्ततः सापि सूर्यकेतोर्देवतुल्याचरणं प्रशंसन्ती शान्तकोपा परित्यक्तकापालिकजीवनतरुणेन कृतोद्वाहा ससुखं जीवनं निनाय ।

सूर्यकेतुर्भ्रष्टमार्गः सप्तदिनानि महारण्यानि विगाहमानः पश्चिमोत्तरे वेत्रवत्या भद्रसेनराज्ञो नन्दनोद्यानमागमत् । तदुद्यानं मुन्याश्रमादपि रमणीयम् । फलनतशाखतरवः,[1] पुष्पभारानतलताः पानीयस्रोतांसि च मनोऽहरन् । स आतृप्ति फलान्युपभुज्य पीयूषकूपाज्जलं निपीय तदुद्यानवासिनीं निस्सन्ततिं मालत्यभिधानां भद्रसेनराज्ञो मालाकारामपश्यत् । सूर्यकेतुमवलोक्याधिगतपुत्रेव सा हर्षमनुभवन्ती "कुतो भवान्, किमभिधानं किमर्थञ्चात्रागमन' मित्यपृच्छत् सोऽपि "संभ्रान्तोऽहं सूर्यकेतुर्नाम युवा सप्तदिवसबुभुक्षितो न स्मरामि मे जन्मस्थलस्ये" ति प्रत्यवदत् । उपात्तकरुणा मालती तं स्वकुटीरे घृताभिघारितयवागूमभोजयत्[2] । पश्चिमोत्तरस्य भद्रसेनराज्ञो द्वे एव कन्ये । ज्येष्ठा प्रतिभाऽपरा च सुषमा । उभेऽपि रतिवद्रूपवत्यावनूढे च । भद्रसेनः प्रतिभोद्वाहचिन्तातुरो दूतैर्वरान्वेषणपरायणः क्वापि सुयोग्यकुमारं नालभत ।

---

1. फलैः नताः शाखाः येषां ते फलनतशाखतरवः ।
2. घृतेति-घृतेन अभिघारिता सिक्ता यवागूस्तां घृताभिघारितयवागूम् । "यवागूरुष्णिका श्राणाविलेपी तरला च सा" (इत्यमरः)

जप के लिये लोगों के मुंड ही रुद्राक्ष हैं। शून्य वन ही हमारे राज्य की सीमा है। आज मैं कापालिक शास्त्र में कही मर्यादा को आप के सामने प्रस्तुत करता हुआ गर्व का अनुभव करता हूं "जब प्रधान कापालिक कड़ाहे में गिरकर अपने प्राणों का त्याग करेगा तभी कापालिक प्रथा का अन्त हो जायेगा" इस लिए आज से लेकर कोई भी मुण्डमाला से गले को न सजाएगा न ही इस उद्देश्य के लिये किसी को प्राणों से वियुक्त करेगा। शुभ कर्मों में लगे हुए आप सभ्य मानव समाज में स्थान पा कर आदर के पात्र बनें।" इतना कह कर चुप हो गया। सभी कापालिकों ने उसके वचन का ताली बजा कर अनुमोदन किया। दामिनी ने इस दुष्कृत्य को सूर्यकेतु का समझ कर अपनी उमर के कुछ जवानों को उसे खोजने के लिये भेजा। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु ढूंढ न सके। अन्त में वह भी सूर्यकेतु के देवतुल्य आचरण की प्रशंसा करती हुई शान्त क्रोध वाली त्यागे हुए कापालिक जीवन वाले एक युवा से विवाह करके सुख से जीवन बिताने लगी।

सूर्यकेतु भूले रास्ते वाला सात दिन वन पर्वतों में घूमता वेत्रवती के भद्रसेन राजा के नन्दनोद्यान में पहुंच गया। वह बाग मुनि के आश्रम से भी सुन्दर था। फूलों के भार से लदी हुई बेलें, फलों से झुकी हुई टहनियों वाले पेड़, पानी के स्रोत मन को मोह रहे थे। उसने वहां तृप्त होकर फल खाये, पीयूषकूप से पानी पिया और फिर उसी बाग में रहने वाली सन्तान-हीन मालती नाम की भद्रसेन राजा की मालिन को देखा। सूर्यकेतु को देख कर मानों जैसे उसे पुत्र ही मिल गया हो इस प्रकार प्रसन्न होती हुई उससे 'आप कहां से आ रहे हो, क्या आप का नाम है और यहाँ किस लिये आये हो" ऐसा पूछने लगी। उसने उत्तर दिया "मैं भूला-भटका सूर्यकेतु नाम का युवा हूं। सात दिन का भूखा हूं। मुझे अपने जन्मस्थल का कुछ पता न है।" मालती ने दया करके उसे अपनी कुटिया में घी से तर करके खिचड़ी खिलाई। भद्रसेन राजा की दो ही कन्याएं थीं। बड़ी का नाम प्रभा और छोटी का नाम सुषमा था। दोनों ही रति के समान सुन्दर और अविवाहित थीं। भद्रसेन प्रभा के विवाह की चिन्ता से पीड़ित दूतों के द्वारा वर की खोज में लगा था परन्तु कहीं भी सुयोग्य कुमार न मिल रहा था।

अपरस्मिन् प्रभाते प्रतिभाऽज्ञातं चिन्तयन्तीव ध्यानमग्नाऽ [1]ट्टालिकायाम-तिष्ठत् । [2]पीयूषकूपे स्नानार्थमवतारितवसनसूर्यकेतोर्भालतेज उदीयमानभानोः प्रकाश इव राजसदनमस्पृशत् । विद्युतो दीप्त्येव सूर्यकेतोर्विपुलप्रकाशेन मुग्धा प्रभा चिन्तयत्—"अहो ! कस्याऽयं प्रकाशः । दिनकरस्तु साम्प्रतमुदयाङ्क एव क्रीडति । (उत्थाय) "हुं कश्चिद् युवा पीयूषकूपे स्नानमाचरति । प्राभातिकमार्तण्ड-रश्मिरिवैतन्मस्तकनिःसृतदीप्तिः प्रासादं स्पृशति । केनायं प्रवेशित उद्यानम् । किं मालत्या ? अस्तु पश्यामि ।"

मालती प्रत्यहं पुष्पमालां निर्माय राजदारिकायै प्रददाति स्म । एकदा स्रजंसाधयन्तीं तां सूर्यकेतुः प्राह—"अम्ब ! अहमपि मालागुम्फनकुशलः । देहि मे कुसुमानि गुम्फितुम् ।" मालती (किञ्चिद्विहस्य) प्रसूनानि समार्पयत् । दामिनी-प्रशिक्षितसूर्यकेतुगुम्फितमालायामेकस्यैव पुष्पस्यानुभूतिं निरीक्ष्य सा विस्मय-ममन्यत । ततः सूर्यकेतुरगेन्दकपुष्पपर्वाणि विकीर्य 'अम्ब ! सन्धेहि प्रसूनमिदं पूर्ववत्" इति मालतीं प्रार्थयामास । साऽसमर्थतां ज्ञापयन्ती तमेवैतत्कर्तु-मवदत् । असौ क्षणेष्वेव तत्कुसुमं पूर्ववत्सन्धाय तस्याः करेऽधारयत् । मालती मनस्यचिन्तयत्—"तेजसाऽयं राजकुमारः परं कर्मणा प्रतिभाति कश्चिन्माला-कारः ।" अहमाजीवनमेतत्कर्मपरायणापि नावापमेतत्समदक्षताम् ।" ततः प्रत्यक्षमवदत् "पुत्र ! कुतः शिक्षितेयमद्भुता कला त्वया । मालाकारजातौ न कोऽप्येवंविधरचनाक्षमो दृष्टिपथमागतो मेऽद्यावधि ।" सूर्यकेतुर्न किमप्यभाषत । मालत्यनुरोधं रुन्धती मनसि "अद्यैतद्रचितस्रजमेवोपहारीकरिष्यामि भर्तृदारि-कायै" इति निर्णयमकरोत् ।

सायं राजप्रासादोपस्थिता मालती प्रतिभायै सूर्यकेतुगुम्फितमालां समुपाहरत् । सा तां निरीक्ष्यावदत्—"मालति !

---

1. अट्टालिकायां—हर्म्योपरिगृहे । "स्यादट्टः क्षौममस्त्रियाम्" (इत्यमरः) अट्ट एव अट्टालिका ।
2. पीयूषकूपे—पीयूषनाम्नि कूपे । पीयूषम्—अमृतम् ।

दूसरे दिन प्रभात को प्रतिभा किसी अज्ञात चिन्ता में ध्यानमग्न वरामदे में बैठी थी। पीयूष कूप पर स्नान के लिये उतारे हुए वस्त्र वाले सूर्यकेतु के मस्तक का तेज चढ़ते हुए सूर्य के प्रकाश के समान वरामदे को छूने लगा। बिजली की चमक के समान सूर्यकेतु के तेज प्रकाश से मुग्ध हुई प्रतिभा सोचने लगी—"अरे। यह किस का प्रकाश है। सूर्य तो अभी उषा की गोद में ही खेल रहा है। प्रातःकाल के सूर्य की रश्मि के समान इसके मस्तक से निकली कान्ति महल को छू रही है। इसे बाग में किसने प्रवेश करवाया। क्या मालती ने ? अच्छा देखती हूं।"

मालती प्रतिदिन फूलमाला बनाकर राजपुत्री को देती थी। एक बार माला बनाती हुई उसको सूर्यकेतु बोला—"माता, मैं भी माला बनाना जानता हूं। मुझे पिरोने के लिये फूल दो।" मालती ने (कुछ हंस कर) उसे फूल दे दिये। दामिनी से प्रशिक्षित सूर्यकेतु द्वारा गुथी हुई माला में एक ही फूल की अनुभूति को देख कर उसे बहुत अचम्भा हुआ। फिर सूर्यकेतु ने गेन्दा फूल की पंखड़ियों को विखेर कर "माता, इस फूल को पहले की तरह बनाओ" इस प्रकार मालती से प्रार्थना की। उसने अपनी असमर्थता को जतलाते हुए उसी को ऐसा करने को कहा। सूर्यकेतु ने कुछ ही क्षणों में उस फूल को पहले की तरह जोड़कर उसके हाथ पर रख दिया। मालती मन में सोचने लगी—"तेज से यह राजकुमार है परन्तु काम से कोई माली प्रतीत होता है। मैं जीवन भर इस काम में लगी हुई भी इसके समान कुशलता को न प्राप्त कर सकी हूं।" फिर प्रत्यक्ष बोली—"पुत्र यह अनोखी कला आप ने कहां से सीखी है। मालियों की जाति में इस प्रकार की रचना में समर्थ किसी को भी आज तक मैं न देख पाई हूं।" सूर्यकेतु ने कोई भी उत्तर न दिया। मालती ने अधिक अनुरोध न करते हुए अपने मन में "आज इस की बनाई हुई माला को ही राजकुमारी को भेंट करूंगी। ऐसा निर्णय कर लिया।

सायंकाल राजमहल जाकर मालती ने सूर्यकेतु द्वारा बनाई हुई माला प्रभा को भेंट कर दी। प्रभा माला को देख कर बोली—"मालती,

केनेयं गुम्फिता स्रक् । न त्वया ग्रथितेयं संभाव्यते । एकमेव पुष्पं स्यूतमस्याम् । [1]अपावृणु रहस्यमिदम् । मालती "भर्तृसुते! राजवंशसमक्षं कोऽसत्यं वक्तुमुत्सहते उद्यानं प्राप्तः कश्चित्संभ्रान्तो युवा मया करुणाविष्टया स्वकुटीरे विनिवासितः । तत्कोमलकरांगुलिविरचितेयं माला । सो विकीर्णपुष्पमपि पुनः संधाय यथावत्करोती" ति भाषमाणा तथाकृतं गेन्दकप्रसूनमपि तस्या हस्तेऽधारयत् ।

प्रतिभां भावसागरे निक्षिप्य मालती तत्याज राजनिकेतनम् । पुष्पहारश्चुम्बकं लोहमिव व्याकर्षत् प्रभामानसम् । वरयात्रिवर्गवन्नभसि सुसज्जितं तारामण्डलम् । चन्द्रोऽपि मत्स्यग्राही मीनार्थं रत्नाकरे यथा कामुकजिघृक्षयेव भूमौ श्वेतजालं प्रसारयन्नारुरोह गगनतलम् । प्रतिभा मालालङ्कृतकरा ज्योत्स्नाप्रकाशे तां पुनः पुनर् निरीक्षमाणा 'एतस्यां सुमनसां संख्या ज्ञातुं न पार्यते । किमयं स एव युवा, पीयूषकूपामलसलिलेन स्नानमाचरतो यस्य प्रकाशेट्टासीनाया मे हृदयतलगाधतां ज्ञातुमिवापतत् ? किं मस्तकप्रकाशकिरणमपर्याप्तं मत्वा विफलान्यसाधनो मेघनादो[2] मारुतिं, बद्धुं नागपाशमिव हारमिममगमयन्मामावेष्टयितुम् ? नाहमेनं कण्ठोच्छिष्टं करिष्यामि । एषा निर्मातुर्ग्रीवामेवालंकरिष्यति ।" ततो मालत्युपाहृतगेन्दकपुष्पमादाय "विकीर्णपर्वाणि पुनः संधाय कथं गठितं प्रसूनमिदं यथापूर्वम् । कुसुमसंसारे कोऽयमपर [3]स्रष्टेव समायातो मां जेतुम् ।" ततः स्रजं शय्याभ्यर्णरजतपिटके संस्थाप्य स्वप्तुमचीकमत परं निद्रा मालां सपत्नीमिव बुध्यमाना ततो दूरमधावत् । पुनः पुनर् निपीतं शीतलसलिलमपि दूषितवनस्पतिघटितौषधमिवानिद्रानिवारे सहायकं नासिध्यत् । चन्द्रकिरणा गवाक्षात् प्रतिभां गुप्तं सन्दिश्येव बहिरव्रजन् सा खर्जूग्रस्तरोगीव प्रतीयमानातिलम्बयामिनी विविधकल्पनामथ्यमानमानस

1. अपावृणु-उद्घाटय ।
2. मारुतिं-हनुमन्तम् । रावणो मेघनादं हनुमन्तं बद्ध्वानेतुमादिशत् । अन्य सकलसाधनेषु विकलेषु मेघनादस्तं नागपाशेन बद्ध्वा रावणस्य समक्षमानयत् ।
3. स्रष्टा-ब्रह्मा ।

इस माला को किसने पिरोया है। यह तेरे द्वारा गुन्थी गई प्रतीत न होती है। इस में तो एक ही फूल पिरोया हुआ प्रतीत होता है। इस रहस्य को खोलो। मालती—"राजपुत्रि, राजवंश के आगे कौन झूठ बोल सकता है। बाग में कोई भूला भटका जवान आया है, उसे दया करके मैंने अपनी कुटिया में रख लिया था। उसी की कोमल हाथ की उंगलियों से बनी हुई यह माला है। वह बिखरे फूल को भी जोड़कर पहले जैसा बना देता है' इस प्रकार कहती हुई उसने वैसे जोड़े हुए गेन्दा के फ़ूल को भी प्रतिभा के हाथ पर रख दिया।

प्रतिभा को भावों के समुद्र में फैंक कर मालती राजमहल से चली गयी। हार ने, चुम्बक जैसे लोहे को खींचता है उसी प्रकार प्रभा के मन को खींच लिया। वरयात्रियों के समान आकाश में तारामण्डल सज गया। चन्द्रमा भी मछेरा समुद्र में जैसे मछलियों के लिये कामुक लोगों को पकड़ने की इच्छा से धरती पर सफेद जाल को फैलाता हुआ आकाशमण्डल पर आ गया। माला को हाथ में लिये हुए प्रतिभा चान्दनी के प्रकाश में उसे बार बार देखती हुई 'इस में फूलों की संख्या न जानी जा सकती है। क्या यह वही युवा है पीयूष कूप के निर्मल जल से स्नान करते हुए जिस का प्रकाश बरामदे में बैठी हुई मेरे हृदय तल की गहराई को जानने के लिये आया था। क्या मस्तक के प्रकाश की किरण को कम जानकर, दूसरे साधनों के विफल होने पर मेघनाद ने लंका में आग भड़काने वाले हनुमान को बांधने के लिये जैसे नागपाश फैंका था उसी प्रकार मुझे लपेटने के लिये क्या अब यह माला भेज दी है? मैं इस हार को अपने गले में पहन कर जूठा न करूंगी। यह बनाने वाले की गर्दन को ही सजाएगा।" (फिर मालती के दिये हुए गेन्दा को लेकर) विखरी पंखुड़ियों को पुनः मिला कर यह फूल पहले जैसा कैसे बना दिया है। फूलों के संसार में यह कौन सा दूसरा ब्रह्मा मुझे जीतने के लिये आ गया है"। फिर माला को सेज के पास चांदी की टोकरी में रखकर सोने की इच्छा करने लगी परन्तु नींद माला को सौतन जैसी समझ कर वहां से दूर भाग गई। बार-बार पिया ठंडा जल भी गली-सड़ी जड़ी बूटियों से बनाई औषधि के समान निद्राभंग को दूर करने में सहायक न बन सका। चन्द्रमा की किरणें झरोखे से प्रतिभा को गुप्त संदेश देकर बाहर जा रही थीं। उसे खाज के रोगी के समान रात बहुत लम्बी प्रतीत हो रही थी। अनेक प्रकार की कल्पनाओं

[1]विभावरीमुद्विग्नैवानयत् ।

प्रतिभा प्रातरुत्थाय स्नात्वा [2]सखिवर्जं पुष्पावचयायोद्यानं गता तत्र सूर्यकेतुं यथानियमं लक्ष्यवेधमभ्यस्यन्तमपश्यत् । स पंक्तिबद्धसप्ततरुशाखा एकेनैव बाणेन संविध्य भूमावपातयत् । तरोः समापतज्जम्बुफलं [3]नभस्येवेषुणा द्विखण्डमकार्षीत् । प्रतिभा सुगुप्तं लतामण्डपस्थैतच्छौर्यकार्यं निरीक्ष्य "नायं मालाकारोऽपितु वीरः कश्चिद्राजकुमारः । एष एव मे प्राणाधार" इति मनसि निरणैषीत् । सूर्यकेतुरपि 'किमियं प्राभातिकभास्कररक्तिमान्विता प्रभीतवा युवतिमिषेण विद्युद्रेखा भुवमागतेति [4]विभावयन् शरसंचालनविरतः प्रयान्तीं तां कांश्चित् क्षणान् निर्निमेषमिवालोकत ।

भद्रसेनः प्रतिभावरान्वेषणविकलोऽतिष्ठत् । अनेकराजकुलस्थापितसंपर्का अपि राजदूता अनुकूलवरं न लेभिरे । प्रतिभा सूर्यकेतुलावण्यशौर्याकृष्टा ग्रीष्मे जलासिक्तलतेव, परीक्षानुत्तीर्णयोग्यछात्रावद्दिनं दिनं कृशतामयात् । महिषी दौर्बल्याक्रान्तराजकुमारीचिन्तातुरा रहस्यपृच्छत्—"तनये ! अंगुलिगण्य-दिवसेष्वेव ते कपोलौ स्वभावसुलभारुणिमानं विहाय शाखास्रस्तपत्रवच्छ्वेततां भजतः । [5]लुप्ताम्बुरोगिण इव शुष्कशिथिले [6]तेऽक्षिकनीनिके भयं जनयतो मे । ब्रूहि विश्रब्धं स्वमनोगतं येनाहं तातं ते प्रबोध्य त्वदनुकूलमालभेय । प्रासादे किं विपरीतं विभावयसि त्वम्" । राजकुमारी प्राह—"निषेधतु भवती तातं मे वरान्वेषणनिमित्तं दूतसम्प्रेषणात् । यतोऽहं कृतपणा स्वयंवरे स्ववरं चेतुम् । राज्यस्य न केवलं राजवंशीया अपि त्वाविंशतिवर्षीया अनूढाः सर्वेऽपि तरुणाः स्वयंवरे भागं गृह्णीयुः । अनागतो मृत्युदण्डमवाप्नुयात्" । महिष्युवाच—"कस्ते पणः स्वयंवरस्य" । राजकुमारी प्रत्यवदत्—"नभसो

1. विभावरीं-रात्रिम् ।
2. सखीवर्ज-सखीभिर्विना ।
3. नभसि-आकाशे ।
4. विभावयन्-चिन्तयन् ।
5. लुप्तं समाप्तम् अम्बु जलं (यस्य शरीरे) एतादृशरोगिणः ।
6. अक्षिकनीनिके-नेत्रतारके । "तारकाक्ष्णः कनीनिका" (इत्यमरः)

से मथे जा रहे मन वाली प्रतिभा ने रात्रि को बड़े कष्ट के साथ बिताया।

प्रतिभा प्रातःकाल उठकर स्नान करके सखियों के बिना ही फूल चुनने के लिये बाग को गई तो उसने वहां सूर्यकेतु को नियम के अनुसार लक्ष्यवेध का अभ्यास करते हुए देखा। उसने पंक्ति में रखी पेड़ की सात शाखाओं को एक ही बाण से बींध कर धरती पर गिरा दिया। पेड़ से गिरते हुए फल को आसमान में ही एक तीर से बींध कर दो टुकड़े कर दिये। प्रतिभा लतामण्डप में गुप्त रूप से बैठी हुई शूरवीरता के इस काम को देखकर "यह माली नहीं अपितु कोई वीर राजकुमार है। यही मेरा प्राणों का आधार है।" इस प्रकार मन में निर्णय कर लिया। सूर्यकेतु भी "क्या यह प्रभातकाल के सूर्य की लाली वाली कान्ति है या बिजली की रेखा युवती के बहाने से धरती पर आ गई है" इस प्रकार सोचता हुआ तीर का अभ्यास छोड़ कर, जा रही प्रतिभा को कुछ क्षणों के लिये बिना पलक मारे देखने लगा।

भद्रसेन प्रतिभा के लिये वर की खोज में बहुत चिन्तित था। कई राजकुलों से सम्पर्क बनाने पर भी राजदूत अनुकूल वर न पा रहे थे। प्रतिभा सूर्यकेतु के सौन्दर्य और शौर्य पर लट्टू हुई गरमी की ऋतु में पानी के अभाव में बेल के समान और परीक्षा में फेल हुई योग्य छात्रा के समान दिन दिन कमजोर होने लगी। राजकुमारी की दुर्बलता की चिन्ता से पीड़ित रानी ने उसे एकान्त में पूछा—"पुत्री, कुछ ही दिनों में तेरे गाल स्वाभाविक लालिमा को छोड़ कर शाखा से गिरे पत्तों के समान सफेद बन रहे हैं। समाप्त हुए पानी वाले रोती की जैसे सूखती हुई और शिथिल तेरी आंखों की पुतलियां देख कर मुझे डर लग रहा है। तुम निडर होकर अपने मन की बात बताओ जिससे मैं तेरे पिता को समझा कर तेरे अनुकूल वस्तु को प्राप्त करूं। महल में आप को क्या बात विपरीत लगती है।" राजकुमारी बोली—"आप पिता जी को वर ढूंढने के लिये दूत भेजने से रोक दीजिये क्योंकि मैं स्वयंवर में अपना वर चुनने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूं। राज्य के न केवल राजवंश के बल्कि वीस वर्ष के नीचे अविवाहित सभी युवाओं को स्वयंवर में भाग लेना होगा। न आने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जाये"। रानी बाली -"स्वयंवर की शर्त क्या है" राजकुमारी ने उत्तर दिया-

निपात्यमानजम्बुफलं यस्तरुणोऽन्तराले व्यत्स्यति स मे भर्ता भविष्यति।" महिषी प्राह "तनये ! दुष्करोऽयं पणः कथं पूर्ति प्रयास्यसि ।" कुमारी प्रत्यवदत्—"किमर्जुनो व्योमलम्बमानमत्स्याक्षि जले तत्प्रतिबिम्बं निरीक्ष-माणो नाविध्यत ?" न केवलमेतदेव, ममापरोऽपि विशिष्टः पणः ।" महिषी "तमपि ब्रूहि" । राजकुमारी प्राह "प्राक्परीक्षायां ये युबानो विशृंखल-गेन्दकपुष्पं कलाभ्यन्तरे पुनः संधाय पूर्वनिर्विशेषं करिष्यन्ति त एव लक्ष्वेध-परीक्षाधिकारिणः स्थास्यन्ति ।" महिषी सहासकोपमवदत् "तनये ![1]स्त्रैणीयं कला कथं रोचिष्यते राजकुमारेभ्यः। शरसंचालनकुशलराजकुमारा न पुष्पसन्धानमभ्यस्यन्ति। न ते पणोऽयं राजवंशानुकूलः अपराजकुलानि कि वदिष्यन्ति, 'मैवंविधप्रतिज्ञाग्रहे समुन्नतराज्यगरिमाणं लघयिष्यसि त्वम्'। कुमारी प्रत्यवदत्—"अम्ब ! स्वयंवरपणः कुमारीपक्षनिर्भरः। कुमारकुलानां नालोचनाधिकार एतदविषये ।" राज्ञी प्राह-"पुत्रि ! उभे अपि प्रतिज्ञे दुष्करे। चेन्न पूरिते तदा का स्थितिः" कुमारी प्रत्यवदत्—"अपूर्ताविामरणमनूढा[2] स्थास्यामि" ।

महिष्या अवगतवृत्तो महीपतिर् मंत्रिभिर् विहितपरामर्शः पंचमदिवसं स्वयंवराय निर्णीयापरस्मिन्नेव दिवसे राजकुमार्यभीष्टघोषणामकारयत् । राज-वंशावलम्बिनोऽपरे च तरुणाः[3] कोदण्डालंकृतभुजदंडा विविधवेषेषु तत्राजग्मुः। मालती सूर्यकेतुमपि तत्र गन्तुं प्रेरयामास परं सूर्यकेतुः प्राह —"अम्ब! संभ्रान्तोऽहं युवा। न मे गेहो न घरट्टः। मां तत्र कः प्रक्ष्यति। अतो नाहं जिगमिषामि।" मालत्यवदत्–"पुत्र ! राजादेश ईश्वरादेशः। न कोऽप्येतमुल्लंघयितुं पारयति। ज्येष्ठातपमिव राज्ञः कोपं कः सोढुं समर्थः। अनुप-स्थिततरुणः शूलमारोपयिष्यते। अतस्त्वमवश्यं प्रयायाः"।

1. स्त्रैणीति-स्त्रिया इदं स्त्रैणम्। स्त्रैणी कला-स्त्रीभिरभ्यस्यमाना ।
2. आमरणं-मरणपर्यन्तम् ।
3. कोदंडेति-कौदण्डैर् धनुर्भिरलंकृताः सुशोभिता भुजदंडा येषां ते ।

आसमान से गिराये जा रहे जामन के फल को जो युवक बीच में ही बींध देगा वही मेरा भर्ता होगा।" रानी बोली—"पुत्री, यह शर्त बहुत क्लिष्ट है, कैसे पूरी होगी," कुमारी ने उत्तर दिया—"क्या अर्जुन ने आसमान में लटक रही मछली की परछाईं को जल में देखकर उसकी आंख को न बींध दिया था? केवल यही नहीं, मेरी दूसरी शर्त भी है।" रानी ने कहा "उसे भी बताओ" राजकुमारी बोली—"पहली परीक्षा में जो युवक बिखरे हुए गेन्दा के फूल को एक घड़ी के अन्दर जोड़ कर पहले जैसा बना देंगे वही निशाना लगाने की परीक्षा के अधिकारी होंगे।" रानी हंसी मिश्रित गुस्से में बोली—"पुत्री, यह तो स्त्रियों जैसा काम है। राजकुमारों को यह कैसे अच्छा लगेगा। तीर चलाने में चतुर राजकुमार फूल जोड़ने का अभ्यास न करते हैं। यह शर्त राजवंश से मेल न खाती है। दूसरे राजकूल क्या कहेंगे। इस प्रकार की प्रतिज्ञा के हठ में उच्च राजवंश की गरिमा को छोटा मत बनाओ। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"माता, स्वयंवर की शर्त कुमारीपक्ष पर निर्भर करती है। कुमारों के कुलों का इस सम्बन्ध में आलोचना करने का कोई अधिकार न है।" रानी बोली—"पुत्री, दोनों ही प्रतिज्ञाएं बहुत ही कठिन है। यदि पूरी न हुई तो क्या बनेगा।" राजकुमारी ने उत्तर दिया—"न पूरी होने पर मरने तक अविवाहित रहूंगी।"

रानी से समाचार पाकर राजा ने मन्त्रियों से सलाह करके स्वयंबर के लिए पांचवां दिन निश्चित करके राजकुमारी की मनचाही घोषणा करवा दी। राजवंशों के और दूसरे युवक धनुष से सजी भुजाओं वाले वहां आ गये। मालती ने सूर्यकेतु को भी वहां जाने की प्रेरणा दी। परन्तु सूर्यकेतु बोला - "माता, न मेरा घर है न घाट है, मुझे वहां कौन पूछेगा। इस लिये मैं न जाना चाहता हूं।" मालती बोली—"पुत्र, राजा की आज्ञा ईश्वर का आदेश होता है। इसका उलंघन कोई भी न कर सकता है। जेठ की धूप के समान राजा के क्रोध को कौन सहन कर सकता है। न जाने वाले युवा को शूली पर चढ़ा दिया जायेगा। इसलिए तुम्हें अवश्य जाना चाहिये।"

ततस्तया प्रबोधितः सूर्यकेतुः सामान्यवेष एव धनुरादाय स्वयंबरस्थ जगाम । राज्यस्याबालवृद्धसकलजनाः कौतुकाकृष्टमानसास्तत्र समाजग्मुः स्वयंवरस्थलस्यानुपमैवाभा । स्थाने-स्थाने पुष्पालंकृततोरणानि नगरकान्ति मवर्धयन् । वायुदोलितराष्ट्रध्वजा[1] दिदृक्षुश्रमहरणाय वातमिवाकुर्वन् एतत्कुतूहलमालोकितुं देवा अपि विमानारूढा गगनतलमलञ्चक्रुः । द्विधावि भक्तसभामण्डपे नरा नार्यश्च पृथगासनानि जगृहुः । महिलामण्डपेऽनुपमवेष बिता सखीपरिवृतप्रतिभा तामेव मालां हस्तयोर्धारयन्ती रजतासने व्यराजत स्वयंवरसमागततरुणाः प्रतिभाकरालङ्कृतस्रजं स्वकण्ठानुकूलामाकलयन्त स्वाभीष्टसिद्धये निजेष्टदेवान् ध्यायन्तः शरेण फलवेधनविधिं विचिन्तयन्तः कुमा समुत्सुकनयना अपश्यन् । सामान्यवेषेऽपि जनमनः समाकर्षन्तं सूर्यकेतुमपरतरुण परीक्षालये कुशाग्रमतिं द्रुतगत्यो[illegible] लिखन्तं दरिद्रछात्रमनुकरणजीविन यथा काकचेष्टया व्यालोकन्त ।

अथापतन्मुहूर्तकालः । प्रा[illegible] भेरीनादेनाघोषि । सज्जा युवा परीक्षायै । एतत्कौतुकाय [illegible] द्विरागमनार्थमागतं भर्तारं निरीक्षि नवोढा इव समुत्सुका अतिष्ठन् । ततो [2]रक्तपरिधानालंकृताः शतं युवत शतरजतपात्रेष्वेकैकं विशृंखलगेन्दकपुष्पं निधाय यूनां पुरस्तात्समाजग्मुः केचिच्चंचलमानसा विस्मृतस्वकृत्या अग्रस्थलोललोचनतरुणिमुखान्येवापश्यन् केचित्पंचदशपर्वाणि संधायैव विरताः । सूर्यकेतुरर्धकलाभ्यन्तरे विशीर्णपु क्षुपाहृतनवपुष्पवन्मेलयित्वा स्वकौशलमदर्शयत् । तस्य पुरतः स्थिता प्रतिभ ऽभिन्नहृदया सखी मनोरमा मनस्यचिन्तयत् "अहो ! अद्भुतोऽस्य प्रयास

---

1. दिदृक्षिवति—दिदृक्षूणां दर्शनार्थिनां श्रमहरणाय ।
2. रक्तेति—रक्तवसनालंकृताः ।

उससे समझाया हुआ सूर्यकेतु साधारण वेष में ही धनुष लेकर स्वयंवर भूमि को चला गया । राज्य के बच्चे-बूढ़े सभी लोग तमाशा के लिये वहां आ गये । स्वयंवरस्थल की शोभा अनोखी ही थी । जगह जगह फूलों से सजे दरवाजे नगर की कान्ति को बढ़ा रहे थे । वायु से झुलाए जा रहे राष्ट्रध्वज मानों देखने वालों की थकावट को दूर करने के लिये हवा कर रहे थे । इस कौतुक को देखने के लिये देवता भी विमानों पर चढ़कर आकाश में आ गये । दो ओर विभाजित सभामण्डप में पुरुष और स्त्रियां अलग-अलग बैठे थे । महिलाओं के मण्डप में अनोखे वेष को धारण करती हुई सखियों से घिरी प्रतिभा उसी माला को हाथ में लिये हुए चांदी के आसन पर बैठी थी । स्वयंवर के लिये आये हुए युवक प्रतिभा के हाथ से सजी माला को अपने कण्ठ के अनुकूल समझते हुए अपने मनोरथ की पूर्ति के लिये अपने इष्टदेवों का ध्यान करते हुए तीर से फल बींधने की विधि को सोचते हुए उसे(प्रतिभा को)उत्कण्ठित नेत्रों से देख रहे थे । साधारण भेष में भी लोगों के मन को आकर्षित करने वाले सूर्यकेतु को दूसरे युवक, परीक्षाभवन में तेज बुद्धि वाले शीघ्रता से प्रश्नोत्तर लिख रहे गरीब छात्र को नकल करने वाले परीक्षार्थी जैसे बार बार गर्दन उठा कर देख रहे थे ।

इस के बाद मुहूर्त का समय आ गया । पहली परीक्षा की घोषणा नंगाड़े के शब्द से की गई । युवक परीक्षा के लिये तैयार हो गए । इस कौतुक को देखने के लिये युवतियां, मकलावा के लिये आये पति को देखने के लिये नवविवाहिताओं के समान उत्कंठित थी ! तब लाल वस्त्र पहने हुए एक सौ युवतियां सौ चांदी के थालों में गेन्दा का एक एक बिखरा हुआ फूल डाल कर युवकों के सामने आ गईं । कुछ चंचल मन वाले युवक अपने काम को भूलकर सामने चपल नेत्रों वाली युवतियों के मुखों को ही देखते रह गये । कुछ पांच-दस पंखुड़ियों को जोड़ कर के ही बस कर गये । सूर्यकेतु ने आधी घड़ी के अन्दर ही बिखरे फूल को पौधे से तोड़े हुए नये फूल के समान फिर से जोड़ कर अपनी चतुराई दिखाई । उसके आगे खड़ी प्रतिभा की अन्तरंगसखी मनोरमा मन में सोचने लगी—'अरे, इस का प्रयास अनोखा है ।

एषो नूनं द्वितीयपरीक्षायामपि सफलः स्थास्यति । मन्ये, प्रतिभा साक्षाद् दिनक
वरितुं प्रयाति ।'' कलानन्तरं घंटिकाशब्देन युवतयः पुष्पभाजनानि निर्णा
कमण्डलाग्रेऽधारयन् । केवलं दश युवानोऽपरपरीक्षायै समचीयन्त । तेषु सूर्यके
सर्वप्रथमोऽघोष्यत । परं तद्भीता अपरराजकुमारा वर्णक्रमेण लक्ष्यवेधावसरं या
न्तो निर्णायिकाँस्तमन्तिमं कर्तुममानयन् । सूर्यकेतुमग्नमानसा प्रतिभैतत्
शृण्वन्ती, पश्यन्ती, गौरीं ध्यायन्ती चावातिष्ठत । अपरपरीक्षोद्घोषो[1] डिण्डि
नाक्रियत । एकः कुशलो नरो दशजम्बुफलान्यादाय[2] शतहस्तपरिमितोच्चस्त
समुपाविशत् । ततो भेर्यामेको दण्डो न्यपाति । प्रथमस्तरुणो धनुषि[3] संहिते
स्तंभात्पंचदशहस्तदूरस्थितः फलं वेद्धुं निष्फलं प्रायतत । एवं वाद्ये नवदण्डपाते
नवजम्बुफलपातनं नवयूनां च मोघो वेधप्रयासः । महिषी मनस्यचिन्तयत्-
''अहो । विधिविडम्बना । अपुत्रावावां जामातृसुखादपि वंचितौ । किं
प्रतिभाऽनूढैव स्थास्यति । एक एव युवाऽत्रशिष्टः परीक्षायै । सोऽपि दीन इव
वलोकयते । भगवति पार्वति, कुरु कृपाम् । सिद्धे समीहिते त्वां विधि
त्पूजयिष्ये ।'' ततो भेर्यां दशमदण्डपाते शिवधनुस्तोलयितुं राम इवोत्थि
सूर्यकेतुर् यथास्थानं लक्ष्यवेधमुद्रास्थित उपरिष्टादापतज्जम्बुफलं तथाविध्य
यथा तदर्धमर्धं राजदम्पत्यङ्कयोरपतत् । मनोरमासहाया प्रतिभा सहसोत्था
सूर्यकेतुकण्ठे तत्करगुम्फितामेव पुष्पमालामधारयत् । ततः सूर्यकेतोर्जयघो
र्गुञ्जितं सभामण्डपम् । भेरीमृदंगढोलकनादेन सह लोका नर्तितुमारेभिरे । मनोर
स्वकल्पितं सत्यपरिधानालंकृतं समीक्ष्य सेर्ष्यस्नेहेन[5] प्रतिभाकपोलकान्तिमाहृ

---

1. डिण्डिमेति-डिण्डीति शब्दं मिनोति प्रकाशयतीति डिण्डिमः तम्बूराख्यस्ते
''वाद्यप्रभेदा डमरुमड्डुडिण्डिमझर्झराः'' (इत्यमरः) ।
2. शतहस्तेति —''प्रकोष्ठे विस्तृतकरे हस्तो मुष्ट्या तु बद्धया । सरत्नि
स्यादरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना ।'' (हस्तश्चतुर्विंशत्यंगुलः) ।
3. संहितेषुरिति—संहित आरोपित इषुर्येन सः ।
4. अनूढा—अविवाहिता ।
5. सेर्ष्येति—ईर्ष्यामिलितप्रेम्णेति भावः ।

यह निश्चय ही दूसरी परीक्षा में भी सफल होगा। ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रतिभा साक्षात् सूर्य का वरण कर रही हैं"। एक घड़ी के बाद घंटी के शब्द के साथ युवतियों ने फूल के पात्रों को निर्णायकमण्डल के आगे रख दिया। केवल दस युवक दूसरी परीक्षा के लिये चुने गये। सूर्यकेतु उन सबमें प्रथम था। परन्तु उस से डरे हुए दूसरे युवक वर्णक्रम से लक्ष्यवेध के अवसर को मांगते हुए निर्णायकों को उसे अन्तिम बनाने में सफल हो गये। सूर्यकेतु में मग्न मन वाली प्रतिभा यह सब कुछ देखती सुनती हुई पार्वती के ध्यान में बैठी रही। दूसरी परीक्षा की घोषणा डिण्डिम से की गई। एक चतुर मनुष्य दश जामन के फल ले कर सौ हाथ ऊंचे खंभे पर बैठ गया। तब नंगारे पर एक चोट लगाई गई। पहले युवक ने धनुष पर बाण चढ़ाकर खंभे से पंद्रह हाथ दूर खड़ा हो कर फल को बींधने का प्रयत्न किया परन्तु विफल रहा। इस प्रकार वाद्य पर नौ वार दण्ड गिराया गया, नौ जामन के फल गिराये गये। नौ युवक फल बींधने के प्रयास में फेल हो गये। रानी मन में सोचने लगी—"अरे, कैसी भाग्य की विडम्बना है। बिना पुत्र के हम जामाता के सुख से भीं वँचित रहे। क्या मेरी प्रतिभा अविवाहित ही रहेगी। एक ही युवक परीक्षा के लिये बाकी रह गया है। वह भी गरीब जैसा दिखाई देता है। हे भगवती पार्वती, कृपा करो। यदि अभीष्ट पूरा होगा तो मैं विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा करूंगी"। फिर नंगारे पर दसवां दण्ड गिराने पर शिवधनुष को उठाने के लिये राम के समान सूर्यकेतु उठ कर ठीक स्थान पर लक्ष्यवेध की मुद्रा में खड़ा हो गया। ऊपर से गिरते हुए जामन के फल को उस ने इस प्रकार बींधा कि वह आधा-आधा राजा-रानी दोनों की गोद में जा गिरा। मनोरमा को साथ लेकर प्रतिभा जल्दी उठी और सूर्यकेतु के गले में उसके हाथों से ही बनाई हुई माला को पहना दिया। तब सूर्यकेतु के जय-जय कार से सभामण्डप गुञ्जायमान हो गया। तुरही, मृदंग, ढोलक की आवाज के साथ लोग नाचने लग पड़े। मनोरमा ने अपनी कल्पना को सत्य हुआ देख कर ईर्ष्या भरे प्यार से मानों प्रतिभा के गालों की कान्ति चुराने के लिये ही जैसे उस को चूम लिया।

मित्र तामचुम्बीत् । नवनवति-तरुणाः स्वनिर्बलतां निगूहितुमनुद्यमिछात्राः [1]प्रश्ना-प्रासंगिकतां वदन्तो यथा स्वयंवरपद्धतिं निन्दन्तः स्वगेहान् प्रत्यावर्तन्त । एकान्त-स्थिता मालती सूर्यकेतुविजयेन हृष्टमानसा स्वलाघवसङ्कोचभाजा जनसमवाये स्थितं सूर्यकेतुं मिलितुमक्षमा प्रेमाश्रुभिर्भूमिं सिञ्चती दूरादेव प्रसूनानि प्रवर्ष-न्त्यात्मसन्तोषमकरोत् ।

अथ निर्गते जनसमुदाये महाराजो भद्रसेनः सूर्यकेतुसहायां प्रतिभां प्रासादे प्रवेशयामास । सूर्यकेतुर्मनस्यचिन्तयत्—"एतत्समस्तं पित्रनुपस्थितौ भाग्य-योगात्सम्पन्नं परं संकलं क्षत्रिय- धर्मानुगतमतो न दोषः । धान्यवाटिका साम्प्रतं न म्लानेति संभाव्यते । तां शुष्काङ्कुरां निरीक्ष्य यावच्चन्द्रकेतुर्मां गवेषमाणो-नायाति तावदहं शास्त्रार्थसंलग्नविद्वत्समुदाये यावद् विजयं शिष्टपण्डित इव मे वंशपरिचयं गोपायिष्यामि" । महाराजः सूर्यकेतुमपृच्छत्—"कुमार ! भव्यं भवतो रूपं शब्दवर्जं वदति सर्वम् । नैवंविधाकृतयः सामान्यकुलजा भवन्ति । चन्द्रिकां चन्द्र एव जनयति । प्रभां प्रभाकर एव सूते । सुगन्धं चन्दनतरुरेव प्रददाति । रत्नानि सागरादेव जायन्ते । प्रशस्यं तं राजवंशं भवान्, वक्तुमर्हति तपःपूते यस्मिन् कुले भवादृशो रूपवान् वीरो देवप्रसादाज्जातः" । सूर्यकेतुः प्रत्यवदत्—"महाराज ! संभ्रान्तोऽहं युवा वनाद्वनं परिभ्रमन्नत्र भवदुद्यान-माप्तो मालाकारया सदयं स्वकुटीरे विनिवासितः । राजकुमारी किं विचिन्त्य मे कण्ठं मालयालङ्करोदित्यहं न जानामि" । महाराजः पुनरवदत्—"जात [2]काञ्चनं न भाषते स्वमूल्यं स्वयम् । तत्तेज एव तस्य [3]महार्घतां द्योतयते । चेद् भवान् संभ्रान्तो युवा, अहं नन्दनोद्याने हर्म्यमेकं विनिर्माय भवते प्रददामि । भवान् सप्रतिभस्तत्र निवसन् राज्यकार्ये मे सहायको—

1. प्रश्नानामिति—प्रश्ना न पाठ्यपुस्तकसम्बद्धा इति वदन्तः ।
5. काञ्चनं—स्वर्णम् ।
3. महार्घतां—महामूल्यताम् ।

निन्यानवे युवक अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिये परिश्रम न करने वाले छात्र प्रश्नों की अप्रासंगिकता (कोर्स से बाहर का होना) को बताते हुए जैसे स्वयंबर की पद्धति की निन्दा करते हुए अपने घरों को लौट गये। एकान्त में खड़ी सूर्यकेतु की विजय से प्रसन्न मन वाली, अपनी लघुता के संकोच के कारण भीड़ में खड़े सूर्यकेतु को मिलने में असमर्थ होती हुई मालती ने दूर से ही फूल बरसाकर आत्मसन्तोष कर लिया।

इसके बाद भीड़ के चले जाने पर महाराजा भद्रसेन ने सूर्यकेतु के साथ प्रतिभा को महल में बुलाया। सूर्यकेतु मन में सोचने लगा—"यह सब कुछ क्षत्रिय धर्म के अनुसार ही हुआ है इसलिए कोई दोष नहीं। शायद अभी धान की बगीची सूखी न होगी। उसके सूख जाने पर जब तक चन्द्रकेतु मुझे ढूंढता हुआ यहां न आता है तब तक मैं शास्त्रार्थ में लगे विद्वानों के समुदाय में सभ्य पंडित के समान अपने वंश के परिचय को छिपाए रखूंगा" महाराज ने सूर्यकेतु से पूछा - "कुमार ! आप का सुन्दर रूप बिना शब्दों के ही सब कुछ बता रहा है। इस प्रकार की आकृतियां साधारण कुल में जन्म न लेती हैं। चान्दनी को चन्द्रमा ही पैदा करता है। प्रकाश सूर्य से ही आता है। सुगन्ध चन्दन के पेड़ से ही आती है। रत्न समुद्र से ही निकलते हैं। प्रशंसनीय उस वंश को मैं जानना चाहता हूं, तपस्या से पवित्र जिस कुल में देवताओं की कृपा से आप जैसा सुन्दर बहादुर राजकुमार पैदा हुआ है।" सूर्यकेतु ने उत्तर दिया—"महाराज, मैं भूला-भटका युवक हूं। वन से वन में घूमता हुआ यहां आपके बाग में पहुंचा था। मालिन ने दया करके अपनी कुटिया में मुझे रख लिया। राजकुमारी ने क्या सोचकर मेरे गले में माला पहना दी यह मैं न जानता हूं।" राजा फिर बोला—"पुत्र, सोना अपना मोल स्वयं न बताता है। उसका तेज ही उसके महामूल्य को बताता है। यदि आप संभ्रान्त युवक है तो मैं नन्दनोद्यान में एक महल बना कर आप को देता हूं। आप प्रतिभा के साथ उस में रहते हुए राज्य के काम में मेरी सहायता करो।" ऐसा

भवत्वि' ति स्ने हं ज्ञापयितुं तस्य पृष्ठं दक्षिणकरेणास्पृशत् ।

भूपत्यादेशेन कतिपयदिवसेष्वेव नन्दनोद्याने रमणीयं हर्म्यं निरमीयत । सभार्यः सूर्यकेतुस्तत्र सुखेन दिनानि नियाय । राज्ञाकारितो राजप्रासादमुपगम्य प्रशासनकर्मणि तस्य साहाय्यमप्याचरत् । प्रतिभा रूपवद्वीरभर्तारं प्राप्यामन्दानन्दमग्ना समुपलब्धिमिमां मालतीनिमित्तां विभाव्य तां मातरमिवामन्यत । एकदा [1]रहसि स्थिता प्रतिभा भर्तारमवादीत्—"मां स्रग्गुम्फनकलां विशीर्णपुष्पसन्धानं च कदा शिक्षयिष्यन्ति भवन्तः"। सूर्यकेतुर् "यदा भवती शरसञ्चालनेऽपि रुचिं प्रदर्शयिष्यति" । एवं दम्पती स्वयंवरपूर्वं घटितोदन्तजातं सव्यङ्ग्यमन्योन्यमाहतुः ।

एकदा सूर्यकेतुः प्रतिभां प्राह–"प्रिये ! आखेटकं मे प्रियम् । इषुणा मृगेन्द्रपातने य आनन्दोऽनुभूयते, शत्रुकर्तने कुतः । बहुदिवसान्यतीतान्येतद्रसानुभूतेः । चेदनुमन्यसेऽहमेतदर्थं वनं जिगमिषामि" । प्रतिभा प्रत्यवदत् —"[2]पत्युरीप्सा-[3]यामन्तरायकरणं न नारीधर्मः । जानामि भवद्बाण-कौशलम् । प्रत्यागमने विलम्बवर्जं भर्ता सहर्षं यातुमर्हति ।" सूर्यकेतुर् धनुः खड्गञ्चादाय श्वशुरेणोपहारीकृतं समीरणनामाश्वमारुह्य वनं निर्जगाम । प्रतिभा कण्वाश्रमात्प्रवसन्तं दुष्यन्तं शकुन्तलेव दृष्टिं यावत् सनिःश्वासमपश्यत् । सूर्यकेतुर् वनाद्वनं परिभ्रमन् दूरं निर्गतोऽपि सिंहं द्रष्टुं नापारयत् । ततः पिपासाकुलः समीरणमपि जलाभिलाषिणं विज्ञाय पानीयान्वेषणपरायणो घने वने तडागमेकमवालोकत । तृषाशमनेप्सुर् जलाभ्यर्णगतो यादवञ्जलिं पुरस्करोति, तडागेशयक्षः 'भो-भो मे प्रश्नोत्तरं बिना न कोऽपि सलिलं पातुमर्हति कासारेऽस्मिन् । आज्ञाभंगकरः पयःस्पर्शसम-

1 रहसि एकान्ते ।
2. ईप्सायाम्-इच्छायाम् ।
3. अन्तरायकरणं विघ्नोत्पादनम् ।
4. कासारे-तडागे ।

कह कर अपना प्यार जतलाने के लिये उस की पीठ को दाएं हाथ से छू लिया ।

राजा की आज्ञा से कुछ ही दिनों में नन्दन उद्यान में एक सुन्दर महल बना दिया गया । सूर्यकेतु प्रतिभा के साथ वहां सुख से दिन बिताने लगा । राजा से बुलाया हुआ राजमहल में आकर प्रशासन के काम में उसकी सहायता भी करने लगा । प्रतिभा रूपवान बहादुर पति को पा कर परम आनन्द को मानती हुई इस उपलब्धि में मालती को निमित्त जान कर उसे माता के समान मानने लगी । एक बार एकान्त में बैठी प्रतिभा ने पति को कहा—"आप माला गून्थने की कला और बिखरे फूल का जोड़ना मुझे कब सिखाएंगे ।" सूर्यकेतु—"जब आप तीर चलाने में भी रुचि दिखाओगी ।" इस प्रकार पति-पत्नी स्वयंवर से पहले घटित घटनाओं को व्यङ्ग्य के साथ एक दूसरे को बताने लगे ।

एक बार सूर्यकेतु प्रतिभा को बोला—"प्रिये, शिकार खेलना मुझे बहुत अच्छा लगता है । तीर से शेर को गिराने में जो आनन्द आता है वह शत्रु के काटने में कहां । इस रस का अनुभव किये बहुत दिन बीत चुके हैं । यदि आप की अनुमति हो तो मैं इस उद्देश्य के लिये वन को जाना चाहता हूँ । प्रतिभा के उत्तर दिया—"पति की इच्छा में विघ्न डालना नारी का धर्म नहीं । आप के बाण चलाने के कौशल को मैं जानती हूं । लौटने में देर किये बिना आप प्रसन्नता से जा सकते हैं ।" सूर्यकेतु धनुष और तलवार लेकर ससुर से उपहार में दिये समीरण नाम घोड़े पर चढ़ कर वन को चला गया । प्रतिभा कण्व के आश्रम से निकलते हुए दुष्यन्त को शकुन्तला जैसे नजर से ओझल होने तक श्वास भरती हुई देखती रही । सूर्यकेतु वन से वन भटकता हुआ दूर तक चला गया परन्तु उसे शेर न दिखाई दिया । फिर प्यास से व्याकुल हुए ने समीरण को भी प्यासा जानकर पानी की खोज में घने वन में एक तालाब को देखा । प्यास बुझाने की इच्छा से पानी के पास जाकर जब अंजलि आगे करता है तो तालाब का मालिक यक्ष—"अरे, मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना कोई भी इस तालाब में पानी न पी सकता है । आज्ञा का उल्लंघन करने वाला पानी के छूते ही यमद्वार चला जायेगा ।"

कालमेव यमद्वारं प्रवेक्ष्यति" इति भाषमाणस्तं जलपानादवारयत् । सूर्यकेतुस्तृषां धारयितुमक्षमो यावत्पातुं प्रायतत, मृत इव मूर्छितो भूमौ न्यपतत् । समीरणो जलं निपीय शाद्वलं भक्षयँस्तत्रैव बने व्यचरत् ।

गौतममुनिना सह प्रवसता सूर्यकेतुनारोपिता धान्यवाटिका षड्वर्षानन्तरं भास्करेऽस्ते कमलवन्म्लानतामयात् । तस्यां निशायां चन्द्रकेतुर्बहून् दुःस्वप्नानवालोकत । सः करच्युतकोदण्डं हिंस्रकाक्रान्तं द्रुतगत्या धावन्तं सूर्यकेतुं प्राणरक्षार्थं नद्यां कूर्दमानमपश्यत् । शुष्कवाटिकया दुःस्वप्नैश्च शंकाकुलोऽसौ सहोदरवचसः स्मरँस्तं विपन्नमाशंक्य[1] विकलचेता अद्यैव तमन्वेष्टुं प्रयास्यामीति निश्चित्य तातादेशमाप्तुं[2] तमुपगम्यावदत्—"पितः । सहोदरारोपिता धान्यवाटिकाऽजहात्स्वरूपम् । प्रवासकाले भ्रात्राहमभाणिषि—"धान्यांकुरेषु हारित्यवियुक्तेषु मां विपद्ग्रस्तं विजानीहि' अतोऽद्यैव तद्गवेषणाय प्रयातुकामोऽहम् । अनुजानन्तु मामत्रभवन्तः ।" महीपतिरवदत्—"जात । ज्येष्ठे निर्गते त्वामालोक्य जीवामः । चेत्त्वमपि प्रासादं त्यक्तुकामस्तदा कथं श्वासाः शरीरे स्थास्यन्ति ।" चन्द्रकेतुरुवाच—"तात, सौमित्री राममनुसेवमानश्चतुर्दशवर्षाणि वने न्यवसत् । भरतस्तावतीरेव समा रामागमनं प्रतीक्षमाणो नन्दीग्रामे निनाय । अहमापद्ग्रस्तभ्रातरं निरीक्षितुं कथं न प्रयायाम् ।" महीपतिरवदत्—"चेदेवं तदा मातुः स्वीकृतिमप्यादेहि । ज्येष्ठसुतविरहाकुला सा तवाननमालोक्य माता यथाकथञ्चिज्जीवति । अनाज्ञप्तश्चेत्प्रयासि, नाहं क्षमस्तामाश्वासयितुम् । पितृसाभिप्रायवचःसमाकृष्टचेताश्चन्द्रकेतुर् मातरमुपगम्य तामपि तथैव प्रार्थयामास ।[3] पेषण्यन्तर्गतचणकवन्मनोमर्दनमनुभवन्ती महिषी प्राह—"पुत्र ! अग्रजः पूर्वमेव त्यक्तप्रासादः । अथ त्वमपि तथाऽऽचिचरिषसि । कथं निवत्स्यामि भवद्विरहक्लेशभाजि राजप्रासादेऽस्मिन् (रुदती) पुत्र, मा द्विगुणय मे वेदनाम्" ।

1. विपन्नं—विपद्ग्रस्तम् ।
2. अजहात्—अत्यजत् ।
3. पेषणी—प्रस्तरयंत्रं यस्मिन् बीजाः चूर्णीक्रियन्ते ।

यह कहते हुए उसने उसे पानी पीने से रोका। सूर्यकेतु प्यास रोकने में असमर्थ होने के कारण जब पानी पीने का प्रयास करने लगा तो मृत जैसा मूर्छित हो कर धरती पर गिर गया। समीरण पानी पीकर हरे घास को चरता हुआ वहीं वन में घूमने लगा।

गौतम मुनि के साथ जाते हुए सूर्यकेतु से लगाई हुई धान की बगीची सूर्य के अस्त होने पर कमल के समान मुरझा गई। उस रात्रि को चन्द्रकेतु ने बहुत से दुःस्वप्न देखे। उस ने हाथ से गिरे धनुष वाले हिंसक जानवरों से आक्रान्त सूर्यकेतु को प्राणरक्षा के लिये नदी में छलांग लगाते हुए देखा। सूखी वाटिका और बुरे स्वप्न से शंकाकुल चन्द्रकेतु भाई के वचन का स्मरण करता हुआ उसे विपद् ग्रस्त जान कर व्याकुल चित्त वाला 'आज ही उसे ढूंढने के लिये चला जाऊंगा' ऐसा निश्चय कर के पिता की आज्ञा प्राप्त करने के लिये उसके पास जा कर बोला "पिता जी, भाई ने जो धान की बगीची लगाई थी उसने अपने रूप को छोड़ दिया है। जाते समय भाई ने मुझे कहा था —"धान के पौदे जब हरियाली छोड़ दें तो मुझे संकट में पड़ा जानिये" इस लिये मैं आज ही उसे ढूंढने के लिये जाना चाहता हूं। आप मुझे आज्ञा दें"। राजा बोला—"पुत्र, बड़े के चले जाने पर तुझे देखकर हम जी रहे हैं। यदि आप भी राजमहल छोड़ना चाहते हो तो हम प्राणों को कैसे धारण करेंगे"। चन्द्रकेतु बोला—"पिता जी, लक्ष्मण श्रीराम की सेवा में चौदह वर्ष वन में रहा था। भरत ने उतने ही वर्ष राम के आने की प्रतीक्षा में नंदीग्राम में बिता दिये थे। मैं आपत्ति में बड़े भाई को देखने के लिये कैसे न जाऊं"। राजा बोला–"यदि ऐसा है तो माता की भी आज्ञा ले लो। बड़े पुत्र के वियोग से व्याकुल तुम्हारा मुखड़ा देखती हुई वह जैसे कैसे जी रही है। बिना आज्ञा लिये जाओ गे तो मैं उसे आश्वस्त न कर सकूंगा"। पिता के अभिप्रायपूर्ण मचन को सुनकर चन्द्रकेतु ने माता के पास जा कर भी बैसे ही प्रार्थना की। चक्की के अन्दर गये चणे के समान अपने मन की मसलन को अनुभव करती हुई रानी बोली—"पुत्र. तुम्हारा बड़ा भाई पहले ही महल को छोड़ चुका है। अब आप भी बैसा ही करना चाहते हो। आपके वियोग के क्लेश से भरे इस महल में मैं कैसे रहूंगी। (रोती हुई) पुत्र, मेरी पीड़ा को दुगना मत बनाओ"।

एवं भाषमाणा तं भुजयोराददात् । मातुरश्रूणि प्रोंछँश्चन्द्रकेतुरुवाच—"जननि ! अग्रजमानेतुमेवाहं प्रयामि । शपेऽहं मे शरीरेण, चेदष्टादशमासाभ्यन्तरे सहोदरमादाय न प्रत्यावर्ते, त्यक्ताधिकारोऽहं राजसंपदि" । पतनभयमनपेक्ष्य [1]पादभारप्रकम्पमानशाखाग्रसंलग्नफलद्वयं युगपदेककरेणादातुं प्रयतमानेव महिषी तद्वचोऽनुमन्यमाना प्राह—"पुत्र! यद्येवं प्रयाहि समीहितसिद्धये । शिवास्ते सन्तु पन्थानः" ।

प्रतिभा प्रत्यहं भर्तुः प्रतीक्षमाणा विरहाकुलमानसा काठिन्येन दिनानि व्यत्यगमयत् । "न जाने क्व गतो मे पतिः । किमद्यावधि नाप्रापि कश्चिज्जीवो निपातनाय ? हिंस्रकजीवा न विश्वस्या भवन्ति । क्षता अप्येते घातकं प्रहरन्ति । अनुक्तवंशपरिचयोऽसौ न्यपातयन्मे मानसं संशयकूपे । किं मां विहाय गतः ? न मन्यते मे हृदयम् । यतो हि न दधाति क्रूरं चेतः । किं स्वयंवरवृत्तं निगदितुं पितृकुलमेव प्रययौ ? एतदपि न सम्भवम् । ममामन्दस्नेहनिबद्धो नैतन्निमित्तं मामनापृच्छ्य गन्तुमर्हति" । एवं वियोगविकला दिवसएकाहारसन्तुष्टैकामेव वेणीं धारयन्ती प्रातःसायं गौर्याः पुरस्तात्समासीना भर्तृमंगलाय प्रार्थयत् । प्रतिदिवसं षट्पदसेवितगन्धवत्कुसुमावगुम्फितमालां स्वामिशय्यायामधारयत् । मालती तन्मन आश्वासनाय रामायणमहाभारतेतिहाससंबद्धविविधकथा अश्रावयत् । भद्रसेनोऽपि सभार्य एतदर्थं विकलोऽतिष्ठत् ।

पित्रभ्यनुज्ञातश्चन्द्रकेतुर्वेगे वायुमप्यतिशयानं चंचरीकनामाश्वमारुह्य मलयाचलं प्रति चचाल । घनं वनम् । विकटो मार्गः । हिंस्रकजीवानां भयदशब्दः । भ्रातृविपच्छंकाकुलोऽसौ [2]वाजिशफप्रताडितभूमिरजःकणलिप्तांगो वामं दक्षिणमनिरीक्षमाणः क्षुधातृषयोरपि व्यस्मरत् । [3]हयोऽपि तद्भावं निबुध्य-

---

1. पादेति-पादयोर् भारेण प्रकम्पमानायाः शाखायाः अग्रे संलग्नं फलद्वयम् ।
2. वाजिनः शफैः खुरैः प्रताडितायाः भूमेः रजःकणैः लिप्तानि अंगानि यस्य सः ।
3. हयः-अश्वः ।

इस प्रकार बोलती हुई रानी ने उसे भुजाओं में ले लिया। माता के आंसुओं को पोंछता हुआ चन्द्रकेतु बोला—"माता मैं बड़े भाई को लाने के लिए ही जा रहा हूं। मैं अपने शरीर की सौगंद खाता हूं यदि अठारह मास के अभ्यन्तर भाई के साथ न लौटूं तो राजसंपत्ति में मेरा कोई अधिकार न होगा"। गिरने का भय छोड़कर पैरों के भार से कांपती हुई शाखा के अगले भाग में लगे हुए दो फलों को एक ही समय में एक हाथ में लेने का प्रयत्न करती हुई जैसे रानी उसके वचन को मानती हुई बोली—"पुत्र, यदि ऐसा है तो आप अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए जा सकते हो। रास्ता आपका कल्याण-कारी हो।"

प्रतिभा प्रतिदिन पति की प्रतीक्षा करती हुई वियोग से व्याकुल कठिनाई से दिनों को बिताने लगी। पता नहीं मेरा पति कहां चला गया। क्या आज तक कोई जीव मारने के लिए मिला ही नहीं। हिंसक जीवों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह घायल होते हुए भी घातक पर प्रहार कर देते हैं। वंश का परिचय न बताकर उसने मेरे मन को संशय के कुएं में गिरा दिया है। क्या मुझे छोड़कर ही चला गया है? इस बात को दिल मानता नहीं। क्योंकि उसका मन क्रूर न है। क्या स्वयंबर का समाचार बताने के लिए पितृ-कुल को ही चला गया। यह भी संभव नहीं। मेरे तीव्र प्यार से बन्धा हुआ इस के लिए मुझ से बिना पूछे न जा सकता है"। इस प्रकार वियोग से व्याकुल दिन में एक ही बार भोजन करती हुई और एक ही वेणी को धारण करती हुई प्रातः और सायं पार्वती के सामने बैठी हुई पति की भलाई के लिए प्रार्थना करने लगी। प्रतिदिन भ्रमरों से सेवित सुगन्ध वाले फूलों से बनाई माला को पति के सेज पर रख देती थी। मालनी उसके मन को समझाने के लिये रामायण और महाभारत के इतिहास से सम्बन्धित अनेक प्रकार की कथाओं को सुनाती थी। इस निमित्त से भद्रसेन और उसकी पत्नी भी व्याकुल रहने लगे।

माता-पिता से आज्ञा पाकर चन्द्रकेतु वेग में वायु को भी तिरस्कृत करने वाले चंचरीक नाम के घोड़े पर चढ़कर मलयाचल की ओर चल पड़ा। घना वन, बीहड़ रास्ता। हिंसक जीवों का भयानक शब्द। भाई की विपत्ति की शंका से व्याकुल वह घोड़े के खुरों से प्रताड़ित भूमि के धूलिकणों से लिबड़े अंगों वाला दाएं-बांएं कुछ भी न देखता हुआ भूख-प्यास को भी भूल गया।

मान इव क्लान्ततामगणयन्नविरामं दधाव । चन्द्रकेतुर् भास्करे क्षीणमयूखे स
गस्त्याश्रमे गौतममुनिमपश्यत् । वाजिनं पादपेन निबध्य जलमपायय
घोटको रज्जुपरिधिपरिमितक्षेत्राच्छाद्वलं चरितुमारभत । असौ सचरणस
मुनिं प्रणम्य तं सहोदरवृत्तमपृच्छत् । मुनिरवदत् —"षण्मासपूर्वं स आश्रमब
धाकरकापालिकमेकमनुसरन्नितो निर्गतो नाद्यावधि प्रतिनिवृत्तः । आश्र
साम्प्रतं निष्कापालिकः । मुनयः ससुखं तप आचरन्ति ।" ततः (कांश्चित्क्षण
नेत्रे निमील्य) पुनरभाषत—"असौ पश्चिमोत्तरे भद्रसेनराज्ञो ज्येष्ठदुहि
स्वयंबरवृत एतस्मिन् समये निर्जनवनतडागतटे मूर्छितस्तिष्ठति । भवांस्तमन्वे
[1]मार्तण्डलयदिशं प्रयातु" । ततो मुनिर् [2]दुग्धोत्तरविविधफलैस्तं समादृत ।

पत्रानुवर्तिदूरभाषयंत्रेणाधिगतपुत्ररुग्णतावृत्तः पिता यथा मुने
भ्रातृमूर्च्छनासमाचारमधिगम्य पूर्वतोऽपि विकलतरश्चन्द्रकेतुर्मनस्यचिन्तय
"केनाचेतनतां नीतो मे सहोदरः । किं राजदुहितुः स्वयंबरे कश्चित्कलह उत्पन्नः
[3]पार्थवद् बाणसंचालनकुशलो मे भ्राता सहस्रं योधानेकलो निहन्तुमर्हति
अतो नैतन्मानवकृतं ज्ञायते । काचिद्देवमायैव तं निस्संज्ञमकरोत् । कामं कश्चि
द्देवो मानवो वा स्याद्, भ्रातृद्रुहं द्रुतमेकेनैवेषुणा हनिष्यामि ।" ततस्तुरंगमम
ताकृष्टो घटिकाद्वयं विश्रम्य पुनरारूढो [4]मंक्षु पथि प्रचचाल
संभ्रमंश्चन्द्रकेतुस्तृतीयेऽह्नि भूतनाथकापालिकस्य गुहां ददर्श । तद्दि
दामिनी [5]सभर्तृकाऽनवधाना युवतिरिव गुहाद्वारमनावृतं परित्यज्य
निरसरत् । चन्द्रकेतुः कृतसाहसस्तदन्तः प्राविशत् । गुहान्तर्गतशुक
निरीक्ष्य तमपृच्छत्—"भोः कीर ! त्वमेकलोऽत्रस्थः किं करोषि

1. मार्तण्डेति—मार्तण्डलयदिशं पश्चिमदिशम् ।
2. दुग्धोत्तरेति—दुग्धम्उत्तरं परवर्ति येषां तादृशैर् विविधफलैः । फलानन्तरं
दुग्धेनेति भावः । समादृत—दृङ् आदरे तुदादिगणीयः
3. पार्थवित्—अर्जुन इव ।
4. मंक्षु—शीघ्रम् ।
5. अनवधाना—कार्येषु ध्यानहीना ।
6. अनावृतम—उद्घाटितम् ।

ड़ा भी उसके भाव को जानता हुआ थकावट को न गिनता हुआ लगातार
ड़ने लगा । सायंकाल को चन्द्रकेतु ने अगस्त्य आश्रम में गौतम मुनि को देखा ।
ड़े को पेड़ से बांध कर पानी पिलाया । तदनन्तर घोड़ा रस्सी के बराबर खेत
हरे घास को चुगने लगा । उसने चरण छूकर मुनि को प्रणाम किया और भाई
समाचार पूछा । मुनि बोला—"छः महीने पहले वह आश्रम में बाधा पैदा
ने वाले एक कापालिक के पीछे भागता हुआ यहां से चला गया था । अब
लौटा न है । आश्रम में अब कापालिक न आते हैं । मुनि सुख से तपस्या
ते हैं । (तदनन्तर कुछ क्षण आंखों को बंद करके) फिर बोला—"वह
चमोत्तर में भद्रसेन राजा की बड़ी लड़की के द्वारा स्वयंबर में पहनाई
माला वाला इह समय सुनसान वन के तालाब के किनारे मूर्छित पड़ा है ।
उसे पाने के लिये पश्चिम दिशा को जाओ" तब मुनि ने उसे फल
ाए और दूध पिलाया ।

पत्र के साथ-२ दूरभाष से पुत्र की बीमारी का समाचार पाने वाले पिता
मान मुनि से भाई की मूर्छा का समाचार पाकर पहले से भी अधिक
ल हुआ चन्द्रकेतु सोचने लगा—"मेरे भाई को किसने अचेतन बनाया है ।
राजपुत्री के स्वयंबर में कोई झगड़ा पैदा हो गया ? अर्जुन के समान तीर
में कुशल मेरा भाई हजार योधाओं को अकेला ही मार सकता है । इस
यह मनुष्य का काम प्रतीत न होता है । किसी देवमाया ने ही उसे
तन बनाया है । कोई देवता हो या मनुष्य, भाई से द्रोह करने वाले को में
ही एक ही तीर से मार दूंगा ।" फिर घोड़े की ममता में दो घड़ी विश्राम
फिर सवार होकर शीघ्र रास्ते पर चल पड़ा । भटकता हुआ चन्द्रकेतु
दिन भूतनाथ कापालिक की गुफा में पहुंच गया । उस दिन दामिनी
ति के साथ लापरवाह युवती के समान घर का दरवाजा खुला छोड़
कल गई थी । चन्द्रकेतु हौंसला करके अन्दर चला गया । गुफा के अन्दर
ो देखकर उसने पूछा—"अरे तोते, आप यहां अकेले क्या कर रहे हो ।

तव हरितवर्णाभया गुहापि ते रागरंजिताऽवलोक्यते।" सोऽपि कुमारयोस्तुल्यरूपतारहस्यं विजानन्नपि चन्द्रकेतुं[1] विस्मापयितुं तं सूर्यकेतुमेव मन्यमानः प्राह—"त्वं मिथ्याभाषी कपटी च।[2] हतप्रतिज्ञस्त्वं कापालिकात्कृतजीवनरक्षणं मां विहायेतः पलायांचकृषे। नाहं त्वया कृतघ्नेन वदिष्यामि। गच्छेतः।" चन्द्रकेतुर्मनस्यचिन्तयत्—"अहो। कीदृशीं मानवसमस्पष्टवाचमुदीरयत्ययं विहंगमः। जाने, कश्चिद्देवः शुकरूपेऽवतरितः। एषोऽवश्यं मे भ्रातुर् वृत्तं बुध्यते। एतदाश्रयेणैवाहमभीष्टस्थानमवाप्तुं पारयामि।" ततः प्रत्यक्षमवदत्—"पक्षिवर! मम प्रमादस्य महानस्ति मे पश्चात्तापः। तत्प्रायश्चित्तार्थी—एवाहं समायातो भवन्तं नेतुम्। चलतु साम्प्रतं मया सह मे मार्गदर्शनाय।" शुकस्तदुक्तेनाश्वस्तस्तमनुगन्तुमन्वमन्यत।

शुकसहायश्चन्द्रकेतु[3]श्चंचरीकमारुह्य [4]विहंगमेंगितमनुसरन् पश्चिमोत्तरे भद्रसेनराज्ञो नन्दनोद्याने प्रतिभाहर्म्यमद्राक्षीत्। अट्टालिकाविराजमानप्रतिभा चन्द्रकेतुं रूपसादृश्यात्सूर्यकेतुमेव मन्यमानाऽऽनन्दातिरेकाविष्टोपरिस्थित[5]-सोपाननिपातितकन्दुकवत्क्षणेष्वेवाधोऽवातरत्। ततश्च पतिप्रवासकाले विविधप्रसूनगुम्फितमालां तस्य कण्ठे धारयितुमियेष। चन्द्रकेतुः स्रजं करयोरेवागृह्णात्। ततः प्रतिभावदत्—"आखेटकार्थं विगतेन भवता बहु विलम्बितम्। पत्यौ प्रोषिते नारीसुकोमलहृदयं तृणकम्पनेनापि शंकाकुलं संजायते। श्रान्तनयनाहं प्रतीक्षमाणा।" चन्द्रकेतुर्मनस्यचिन्तयत्—"सूर्यकेतुः पश्चिमोत्तराज्ञो दुहित्रा स्वयंवरे वृत इति गौतममुनिभाषितं प्रमाणितं प्रतिभाति। सैवेयं मे भ्रातृजाया राजकुमारी। महति धर्मसंकटे पतितोऽहं सांप्रतम्।

1. विस्मापयितुं—विस्मये पातयितुम्।
2. हतेति-हता भग्ना (अपालिता) प्रतिज्ञा येनासौ हतप्रतिज्ञः।
3. चञ्चरीकम्—एतन्नामानमश्वम्।
4. विहगेंगितं-पक्षिसंकेतम्।
5. सोपानम्-आरोहणम्। "आरोहणं निश्रेणिस्त्वधिरोहणी" (इत्यमरः)

तुम्हारी हरी क्रान्ति से गुफा भी रंगी हुई जैसे दिखाई दे रही।" तोता भी राजकुमारों की समानरूपता के रहस्य को जानता हुआ भी चन्द्रकेतु को विस्मय में डालने के लिये उसे सूर्यकेतु ही समझ कर बोला - "तुम झूठ बोलते हो और कपटी हो। अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर इधर से भाग गये। मैं तुम्हारे जैसे कृतघ्न से बात न करूंगा। तुम यहां से चले जाओ।" चन्द्रकेतु मन में सोचने लगा—"यह पक्षी मनुष्य के समान कैसी स्पष्ट वाणी बोल रहा है। शायद कोई देवता ही तोते के रूप में चला आया है। यह अवश्य ही मेरे भाई का समाचार जानता होगा। इसके सहारे से ही में अभीष्ट स्थान तक पहुंच सकता हूं।" फिर सामने बोला—"श्रेष्ठ पक्षी, मुझे अपनी भूल का बड़ा पश्चाताप है। उसका प्रायश्चित्त करने के लिये ही मैं आप को ले जाने के लिये आया हूं। अब आप मेरा मार्गदर्शन कराते हुए मेरे साथ चलो।" तोता उसकी बाणी पर विश्वास करके उसके साथ चलने को सहमत हो गया।

तोते की सहायता से चन्द्रकेतु चंचरीक पर चढ़कर पक्षी के इशारे पर चलता हुआ पश्चिमोत्तर में भद्रसेन राजा के नन्दनोद्यान में प्रतिभा के महल में पहुंच गया। अटारी पर बैठी हुई प्रतिभा रूप समानता से चन्द्रकेतु को सूर्य केतु मानती हुई प्रसन्नता से भरी हुई ऊपर की पौड़ी से गिराये हुए गेन्द के समान कुछ ही क्षणों में नीचे आ गई। फिर पति के प्रवास काल में अनेक प्रकार के फूलों से बनी हुई माला को उसके गले में डालने की इच्छा करने लगी। चन्द्रकेतु ने माला को हाथ में ही पकड़ लिया। फिर प्रतिभा बोली—"शिकार के लिये गये हुए आप ने बहुत देर कर दी। पति के बाहर चले जाने पर नारी का कोमल दिल तिनका के हिलने से भी शंका में पड़ जाता है। प्रतीक्षा करते करते मेरी आंखें थक गई।" चन्द्रकेतु मन में सोचने लगा—"सूर्यकेतु को पश्चिमोत्तर के राजा की लड़की ने स्वयम्बर में वर लिया है,गौतम मुनि की यह बात सत्य ही जान पड़ती है। यह वही मेरी भावज राजकुमारी है। अब मैं बड़े धर्मसंकट में फंस गया हूं।

चेद् वदेयं सूर्यकेतुसहोदरोऽहं तदैषा तद्वियोगे विलपिष्यति। एतस्याः क्रन्दनं कथं सहिष्ये। अपरतो भ्रातृजायायां पत्नीत्वकल्पनां कथं कुर्याम्। नैवमस्मत्संस्कृतिः समादिशति। चतुर्दश[1] समाः सहोदरपत्नीं सेवमानः[2] सौमित्रिस्तां[3] नेत्रपूरमपि नापश्यत्। एतद्धर्मपरम्परां प्राणपणेनापि पालयिष्ये।" ततः प्रत्यक्षमवदत्—"एवं विगतो मे प्रलम्बकाल आखेटकार्थं परिभ्रमतः। मनोऽनुकूलमलब्धवध्यजीवः प्रतिनिवृत्तोऽहं विहगमेनमादाय। शुकश्चन्द्रकेतूक्तं सावधानं शृण्वँस्तद्बुद्धिपाटवं सद्य उत्तरशंकित च भूरि प्रशशंस। प्रतिभा शुकसौन्दर्यविमुग्धा तं पयोऽपाययत्। कर्मचारिणश्चणकसंतृप्तघोटकं जलं पाययित्वा हरितघासं तदग्रेऽधारयन्।

"भगवत्प्रसादात्प्रतिनिवृत्तो मे भर्ता चिराद् वनं गतः" इति विचिन्तयन्ती प्रतिभा पाचकैराप्तस्वादुभोजनपरिपाका स्नेहाकृष्टैकस्यामेव स्थाल्यां भोक्तुमचिकीर्षत्। चन्द्रकेतुः पुनर् मानसिकद्वन्द्वे निपतितोऽचिन्तयत्—"एषा मेऽग्रजभार्या। कथमेनां स्वोच्छिष्टं भोजयिष्ये।" इति विचिन्त्य लवित्रमेकमादाय स्थालीमध्ये रेखामाकृष्योवाच—"भवती दक्षिणतो भुनक्तु, अहं वामतो भुञ्जे।" प्रतिभा तद्रहस्यज्ञानाक्षमैतद् भर्तुर् विनोदमात्रं निबुध्यमाना तथैवाचरत्। परं ग्रासान् मुखे मेलयन्त्यचिन्तयत्—"न मे भर्तरि पूर्वभावानुभावान् पश्यामि। नैषो मां नेत्रपूरं समीक्षते। न ममाङ्गस्पर्शस्पृहा प्रत्युत मे करस्पर्शादप्यु[4]द्विजते। न मे भावभंग्यां मुह्यति। न पूर्ववन्मां मनोऽभीष्टवस्त्रालंकरण—परिधानाय वदति। मां दक्षिणतो भोक्तुं कथमादिशत्। किं न वामतः। किमेष मां वामाङ्गीं न मन्यते? स्वयंवरमपर्याप्तं मत्वा विवाहविधिमपेक्षते?

1. समाः – वर्षाणि।
2. सौमित्रिः—लक्ष्मणः।
3. नेत्रपूरं—पूर्णदृष्ट्या।
4. उद्विजते—त्रस्यति।

यदि मैं कहूं कि में सूर्यकेतु का भाई हूं तो यह उसके वियोग में विलाप करनें लग जायेगी। इस के रुदन को मैं कैसे सहन करूंगा। दूसरी ओर भाई की पत्नी में पत्नी की कल्पना कैसे करूं। हमारी संस्कृति से यह बात मेल न खाती है। चौदह वर्ष भावज की सेवा करते हुए लक्ष्मण ने उसे आंख भर कर न देखा था। धर्म की इस मर्यादा को प्राणों को देकर भी पूरा करूंगा"। फिर सामने बोला—"हां शिकार के लिये घूमते हुए मुझे बहुत देर लग गई। मन के अनुसार कोई वध्य जीव न पाकर मैं इस तोते को लेकर लौट आया हूं।" तोता चन्द्रकेतु की बात को ध्यान से सुनता हुआ उस की तीव्र बुद्धि और तत्काल उत्तर देने की शक्ति की बहुत प्रशंसा करने लगा। तोते की सुन्दरता पर मोहित प्रतिभा ने उसे दूध पिलाया। कर्मचारियों ने घोड़े को चणे खिलाये और फिर जल पिलाकर हरा घास उसके आगे डाल दिया।

वन को गया मेरा पति प्रभुकृपा से चिर के बाद घर लौटा है" इस प्रकार सोचती हुई प्रतिभा ने पाचकों से स्वादिष्ट भोजन तैयार करवाया और फिर प्रेम से आकर्षित होकर एक ही थाली में खाने की इच्छा प्रकट की। चन्द्रकेतु फिर मानसिक दुविधा में पड़ा हुआ सोचने लगा—"यह मेरे बड़े भाई की पत्नी है। इस को जूठा कैसे खिलाऊंगा"। ऐसा सोच कर एक चाकू ले कर थाली के बीच रेखा खींच कर बोला—"आप दाईं ओर से खाएं, मैं बाईं ओर से खाता हूं"। प्रतिभा इस रहस्य को न समझ सकी और इसे पति का विनोदमात्र समझते हुए वैसा ही कर लिया परन्तु मुख में ग्रास डालती हुई मन में सोचने लगी—"मैं अपने पति में पहले जैसे भाव-अनुभावों को न देखती हूं। यह मुझे आंख भर कर देखता भी न है। मेरी भावभंगी पर मोहित न हो रहा है। पहले की तरह मुझे अपने मन के अनुकूल वस्त्र-भूषण पहनने के लिये न बोल रहा है। मुझे दाईं ओर से खाने को क्यों कहा, वाएं से क्यों नहीं। क्या यह मुझे बामाङ्गी न मानता है? क्या यह इसके लिये स्वयंवर को पर्याप्त न मानता हुआ विवाहविधि की आवश्यकता समझता है?

एतस्य जिह्वायामद्य प्रियाशब्दोऽपि दुर्लभः। विजनवने परिभ्रमतो मे भर्तुर्मनः कथं परिवर्तितम्। कच्चित्केनचित्तांत्रिकेणावयोः स्नेहेऽन्तरायोऽकारि कयाचिन्मायाविन्या वा मोहितो मे भर्ताऽरण्ये परिभ्रमन्। किं पितृपरोक्षं स्वीकृतस्वयंवरस्य पश्चात्तापः? अथवा विकलं मनस्तद्वियोगे? अस्तु, समापततीयं कामिनीसखी [1]विभानरी। एषा में संशयं नूनमपनेष्यति"।

अथालंकृतं नभस्तारामण्डलेन। श्वेतरजतविन्दुसमलंकृतनीलदुकूलेन लोकान्मोहयितुमिव समागमत्तमस्विनी। प्रतिद्वन्द्विराज इवान्धकारस्य प्रभुत्वमसहमानः सुधाकरो नभसि मालतीपुष्पाण्याकीर्य तत्सज्जां द्रष्टुमिव समुपाविशन्नीलासने। चन्द्रकिरणान् कामिनीकपोलमिलितान् निरीक्ष्य 'चन्द्रस्य कोऽधिकारोऽस्माकमर्धांगिनीनामङ्गस्पर्शे' एवं तस्यानधिकारचेष्टया कुपिताः पतयो विधुं सेर्ष्यमिवापश्यन्। कन्दर्पोऽपि [2]पङ्गुः परपृष्ठमिव ज्योत्स्नासनमासीनः प्रचचाल शनैः शनैः कामिनीहृदयान्यवगाहितुम्।

वियोगानुवर्तिसंयोगः स्नेहं शतगुणं वर्धयते। प्रतिभैकस्मिन्नेव पर्यंके क्षौमवसनान्यास्तीर्य सुगन्धितद्रव्यसुवासिताऽऽस्तरणा विविधसुमनोगुम्फितलम्बमालया [3]पल्यङ्कं परित आवेष्ट्य पुरतः स्थितं चन्द्रकेतुं शब्दवर्जं स्वमनोभावमव्यञ्जयत्। तस्या तद्भावं निबुध्यमानश्चन्द्रकेतु-"रेतस्मात्स्खलनान्मयाऽऽत्मा कथं रक्षणीयः" इति किंकर्तव्यविवेकविहीनोऽजायत। ततः क्षणं विचिन्त्यावदत्—"देवि! वने परिभ्रमन्नहं कापालिकैराक्रान्तो महत्काठिन्येन तान्निहत्य कथमपि सप्राणः प्रतिनिवृत्तः। तत्र मया प्रतिज्ञातं जीवितप्रत्यागमने मासमेकं ब्रह्मचर्येणास्थातुम्। येन खड्गेन मया ते निहता, मे प्राणरक्षकं तमेवासिमास्तरणान्तो धारयामि। भवती दक्षि-

---

1. विभावरी-रात्रिः।
2. पङ्गुः-श्रोणः (जंघाहीनः)।
3. पल्यंकमिति—शयनं मञ्चपर्यंकपल्यंकखट्वया समाः (इत्यमरः)

यह अपनी जीभ से प्रिया शब्द का उच्चारण भी न कर रहा है। सुनसान वन में घूमते हुए मेरे पति का मन कैसे बदल गया। क्या किसी जादूगर ने हमारे स्नेह में विघ्न पैदा कर दिया अथवा वन में घूमते हुए इसे किसी मायाविनी ने मोहित कर लिया है? क्या माता-पिता के परोक्ष में स्वयंवर स्वीकार करने का पश्चाताप है अथवा उन के वियोग मे मन ही उदास हो गया है। कोई बात नहीं, यह नारी की सखी रात्रि आ ही रही है। यह मेरे सन्देह को दूर करेगी।"

इसके बाद तारामण्डल ने आकाश को सजा दिया। सफेद चान्दी के बिन्दुओं से सजे नीले दुपट्टे से लोगों को मानों मोहित करने के लिये रात आ गई। विरोधी राजा के जैसे अन्धेरे के प्रभुत्व को न सहता हुआ चन्द्रमा आसमान में मालती के फूल बिखेर कर मानों उसकी सजावट को देखने के लिये नीले आसन पर बैठ गया। नारियों की गाल पर पड़ी चन्द्र किरणों को देखकर 'हमारी पत्नियों के अंग छूने का चन्द्रमा को क्या अधिकार है' इस प्रकार उसकी इस अनधिकार चेष्टा से कुपित हुए पति चान्द को ईर्ष्या के साथ देखने लगे। कामदेव भी लंगड़ा जैसे दूसरे की पीठ पर, चान्दनी के आसन पर चढ़कर नारी हृदय की टोह लेने के धीरे धीरे चल पड़ा।

वियोग के बाद का संयोग प्यार को सौ गुणा बढ़ा देता है। प्रतिभा ने एक ही पलंग पर रेशमी वस्त्र बिछा कर सुगन्धित द्रव्यों से बिस्तर को सुवासित कर अनेक प्रकार के फूलों से बनी माला से चान्दी की खाट को चारों ओर से लपेट कर आगे खड़े चन्द्रकेतु के प्रति बिना शब्द के अपने मन के भाव को प्रकट किया। उसके भाव को समझ कर चन्द्रकेतु "इस गिरावट से मैं अपनी रक्षा कैसे करूंगा।" इसके बारे में उसे कुछ पता न चल रहा था। फिर पल भर सोच कर बोला—"देवी, वन में घूमते हुए मुझ पर कापालिकों ने आक्रमण कर दिया था। बड़ी कठिनाई से उनका संहार कर जीवित लौटा हूं। वहां मैंने जीवित घर लौटने की स्थिति में एक महीना ब्रह्मचर्य से रहने की प्रतिज्ञा की है। जिस तलवार से मैंने उनको मारा है उसी को विस्तर के मध्य में रख देता हूं। आप

णतः स्वपितु अहञ्च वामे शये" इत्यभिधाय करवालं शय्यान्तरालेऽधारयत् ।

प्रतिभा तद्वचनं निशम्य स्तब्धैव न किमप्यवोचत् । प्रकाशं[1] निर्वाप्य चन्द्रकेतुर्वामे प्रतिभा च तदनु दक्षिणेऽलुण्ठत् । चन्द्रकेतोर् जितेन्द्रियत्वविमुग्धैव निद्रा तमचिरादालिलिङ्ग । परं प्रतिभा समागमेऽपि विरहमनुभवन्ती विचार-सागरनिमग्नोद्विग्ना पार्श्वे परिवर्तयन्ती भृशं प्रयतमानापि निद्रां न लेभे । साचिन्तयत्—"किं सत्यमेवायं मे पतिरुतवा काचित्प्रतारणा ।[2] आपादमस्तकं न किमप्यन्तरं पश्यामि । श्वासप्रश्वासयोरेकैव गतिः । परमेतावान् संयमः कुतोऽर्जितः । किमयं कलौ[3] पुष्पेषुं जेतुमपरो महादेवोऽवतरितः ? मामनिद्राङ्के निक्षिप्यान्यायमेतमुपेक्षमाणो गाढं प्रसुप्तोऽयं स्वयम् । किमहमेनं स्पृशेयम् ? (करं प्रसारयन्त्यपरस्मिन्नेव क्षणेऽङ्गारस्येव स्पर्शं वर्जयन्ती) अचिन्तयत्- "नाहमेतस्य व्रते विघ्नमाचरिष्यामि । नायं कुलांगनाधर्मः" एवं तर्कवितर्क-पतिता स्वापवर्जं सकलां निशामनैषीत् । चन्द्रकेतुस्पर्धयेव निद्रापि तां नास्पृशत् । आकुलमानसा प्रहरमात्रावशिष्टयामिन्यामेवोत्थाय विनिवृत्तनित्यचर्या कृतस्नाना देवानुपास्य सपुष्पचन्दनाक्षतसलिलेन प्रभाकरायोपहृतार्घ्या प्रतिभा "संशयापन्नं मनः सत्यवस्तुष्वपि न विश्वसिति" अतः पुनः प्रत्ययाय शयनकक्षं प्राविशत् । गाढं प्रसुप्तः स्वप्नमनुभवँश्चन्द्रकेतुः कक्षे तत्पादन्यासस‌मकालमेव "आयामि आयामि" इत्यवदत् । प्रतिभा मनस्यचिन्तयत्—"अहो ! एषः स्वप्नं पश्यति । "आयामि आयामि" इत्यस्य कोऽर्थः । क एनमाह्वयति । किं मां वदति ? चेदेवं, मयैतावत्प्रत्यूषे शय्यां विहाय महाननर्थोऽकारि । किमधुना कुर्याम् । (शय्यां सतृष्णं निरीक्ष्य) नहि नहि, साम्प्रतं तु प्रभातमेव संजातम् ।

---

1. निर्वाप्य-शान्तं कृत्वा ।
2. प्रतारणा-वञ्चनम् ।
3. पुष्पेषुं-कामदेवम् ।

दाईं ओर सो जाओ मैं बाएं सो जाता हूं" ऐसा कह कर खड्ग को शय्या के मध्य भाग में रख दिया।

प्रतिभा उसके वचन को सुनकर सुन्न जैसी हो गई और कुछ भी न बोली। प्रकाश को शान्त कर चन्द्रकेतु बामभाग में और उसके बाद प्रतिभा दाएं में सो गई। चन्द्रकेतु की जितेन्द्रियता पर मोहित हुई जैसे नींद ने शीघ्र ही चन्द्रकेतु का आलिङ्गन कर लिया। परन्तु प्रतिभा समागम होने पर भी विरह का अनुभव करती हुई विचारों के समुद्र में डूबी घबराई दाएं बाएं पलटती हुई प्रयत्न करने पर भी नींद न पा सकी। वह सोचने लगी—"क्या सचमुच ही यह मेरा पति है या कोई ठगी है। सिर से पैर तक कोई भी अन्तर न देखती हूं। श्वास-प्रश्वास की भी एक ही गति है। परन्तु इतना संयम कहां से आ गया। क्या कलियुग में कामदेव को जीतने के लिए यह कोई महादेव ही उतर आया है? मुझे अनिद्रा की गोद में फैंक कर इस अन्याय की परवाह न करता हुआ यह स्वयं गाढ़ी नींद में सो गया है। क्या मैं इसको छूकर देखूं? (हाथ को आगे बढ़ाती हुई पर दूसरे क्षण में ही मानों जैसे अङ्गार के स्पर्श से हटाती हुई) सोचने लगेगी—"मैं इसके व्रत में विघ्न न करूंगी। यह अच्छे कुल की स्त्रियों का धर्म न है।" इस प्रकार तर्क वितर्क में पड़ी हुई ने बिना नींद के ही सारी रात को बिता दिया। मानों चन्द्रकेतु की स्पर्धा से ही जैसे नींद ने भी उसको न छुआ। व्याकुल मनवाली एक पहर रात बाकी होते हुए ही उठ खड़ी हुई। नित्य चर्या से निपटकर स्नान करके देवताओं की उपासना करके पुष्प, चन्दन, अक्षत मिले पानी से सूर्य को अर्घ देकर "संशय में पड़ा मन सच्ची बात पर भी विश्वास न करता है" इस लिए प्रतिभा दूसरी बार विश्वास करने के लिए सोने के कमरे में चली गयी। गाढ़ी नींद में सोया चन्द्रकेतु, कमरे में उसके प्रवेश करते ही 'आ रहा हूं-आ रहा हूं, ऐसा बोला! प्रतिभा मन में सोचने लगी—"अरे, इसे स्वप्न आ रहा है। "आता हूं—आता हूं।" इसका क्या अभिप्राय है। इसे कौन बुला रहा है। क्या मुझे बोल रहा है। यदि ऐसा है तो मैंने इतने प्रभात में उठकर बहुत भूल की। अब क्या करूं। (सेज को तृष्णा के साथ देख कर) नहीं-नहीं, अब तो प्रभात हो गया है।

कुक्कुटा वागुन्मुखाः । चटकाः शाखासु 'चिं-चिं' परायणाः । गोपालगोदोहनोत्थित-पयोधारामधुरध्वनिः सुखयति कर्णौ । मंथनदण्डाहतं दध्युपदिशति लोकानपव्यव-हारेऽपि नवनीतमिव मधुरं व्यवहर्तुम् । श्वासरोगिणां प्रभातकालोद्वेलितका-सशब्दो वाधते परमेश्वरं निध्यायतां मनः । पीयूषकूपे गर्गरीजलभरणघोषः स्पष्टं श्रूयते । मालतीकुटीरगवाक्षादन्तर् रोधमिवानुभवन् बहिरायाति लघुदीप-प्रकाशो निर्धनस्य मनोरथ इव । उतो मे बृद्धपरिचारिका गोदावरी शिरसः [1]कटितटकृतनीशारा जागरणजृम्भामाददाति । अयं मे वीरः पतिः सूर्यकेतुः । किमहमेनं जागरयेयम् ? नहि नहि, भर्तसुखं [2]नान्तरायान्तरितं स्यात् । चेत्स्व-प्नो न मे सम्बद्धस्तदा जागारणे महत्पातकं स्यात् । स्वप्नानां विचित्रा गतिः । अपूर्णे स्वप्ने तत्सकलफलमेव विनष्टं स्यात् । अथ च निशावसानावलोकितस्वप्ना-अमोधफलाः श्रूयन्ते । न जाने-एतत्स्वप्नेन कीदृशी संपदाप्ता स्यात् । दिवा-करोदयनकालरक्तिमोदेतुमारब्धा नभस्तले । कलाभ्यन्तरे स्वयमेव विनिद्रितो भविष्यति । न मयात्र स्थातव्यमिति विचिन्त्य शयनकक्षान्निर्गता 'उद्यानवा-टिकातः पुष्पाण्यवचित्य मत्रें मालां रचयिष्यामी' ति मनसा सुमनसोऽवचेतु-मुद्यानं प्रविवेश ।

चन्द्रकेतुः स्वप्नेऽपश्यत्—"आखेटकार्थी सूर्यकेतुः वने पिपासाकुलः क्वचित्तडागे जलाभिलाषी केनचिद् यक्षेण तत्प्रश्नोत्तरात्पूर्वं सलिलपानाद् वारितोऽपि तदर्थं प्रयतमानो मूर्छितो धरणीपतितश्चन्द्रकेतुमाह्वयति—'आप-न्निमग्नोऽहम्, आयाहि द्रुतं मामुद्धर्तुम् ।" ततश्चन्द्रकेतुर् 'आयामि—आयामि' इति वदति । एतच्छब्दोच्चारणसमकालमेव विनिद्रितः सोऽग्रजं गवेषयितुं मनसि प्रतिजज्ञौ ।

ततश्चन्द्रकेतुरुत्थाय स्नात्वा सध्यामुपास्य भ्रातुरध्ययनकक्षं प्रविष्टो राजनीति-सम्बद्ध पुस्तकानि विहंगम-दृष्ट्यावालो-

---

1. कटितटेति – कटितटे कृतः नीशारः प्रावरणो यथा सा ।
"निशारः स्यात्प्रावरणे हिमानिलनिवारणे" इत्यमरः'
2. नान्तरायान्तरितं —विघ्नवाधितम् । अमोघफला—सफलाः ।

मुर्गे बांग देने लग गये। चिड़ियां शाखाओं पर 'चींचीं' करने लग पड़ी। ग्वालों द्वारा गौओं के दुहने से उठी दूध की धारा की मीठी आवाज कानों को सुख दे रही है। मथानी से लताड़ा हुआ दही लोगों को बुरा व्यवहार होने पर भी मक्खन के समान मीठा वर्ताव करने का उपदेश दे रहा है। श्वासरोगियों का प्रभातकाल में बढ़ी हुई खांसी का शब्द ईश्वर के ध्यान में बैठे लोगों के मन को बाधा पहुंचा रहा है। पीयूष कुएं पर गागर में पानी भरने का शब्द स्पष्ट सुनाई दे रहा है। मालती की कुटिया के झरोखे से छोटे दीपक का प्रकाश मानों अन्दर की घुटन को अनुभव करता हुआ निर्धन के मनोरथ के समान बाहर आ रहा है। उधर मेरी बूढ़ी परिचारिका गोदावरी सिर से कमर तक लाई हुई रजाई वाली जागने के समय की जंभाई ले रही है। यह मेरा बहादुर पति सूर्यकेतु है। क्या मैं इस को जगाऊं? नहीं, पति के सुख में विघ्न न करना चाहिये। यदि स्वप्न मेरे से सम्बन्धित न हो तो जगाने में बड़ा पाप होगा। स्वप्नों की विचित्र गति होती है। स्वप्न के अधूरा रहने पर उस का सारा फल ही नष्ट हो सकता है। और फिर रात्रि के अन्त में देखे गये स्वप्न निष्फल न जाते हैं। पता नहीं इस स्वप्न से कैसे सम्पत्ति प्राप्त हो जाये। आकाश में सूर्य चढ़ने की लाली आने लग पड़ी है। घड़ी भर में अपने आप ही जाग जायगा। मुझे यहां नहीं ठहरना चाहिये" ऐसा सोच कर कमरे से बाहर निकली हुई 'बाग से फूल तोड़कर पति के लिये माला बनाऊंगी' ऐसे मन से फूल चुनने के लिये वाटिका में दाखिल हो गई।

चन्द्रकेतु स्वप्न में देखने लगा—"सूर्यकेतु शिकार करने की इच्छा से वन में प्यास से व्याकुल किसी तालाब पर पानी पीने के लिये किसी यक्ष के द्वारा उसके प्रश्नों का उत्तर देने से पहले जलपान से हटाया हुआ जबरदस्ती जल पीने के प्रयत्न में लगा हुआ मूर्छा खाकर धरती पर गिरा हुआ चन्द्रकेतु को बुलाता है—"मैं संकट में हूं। मेरा उद्धार करने के लिये जल्दी आ जाओ।" तब चन्द्रकेतु 'आता हूं-आता हूं' ऐसा बोलता है। इन शब्दों के साथ ही उस की नींद खुल जाती है और वह भाई को ढूंढने की मन में प्रतिज्ञा कर लेता है। फिर चन्द्रकेतु उठ कर स्नान संध्या कर के भाई के अध्ययन कक्ष में जाकर राजनीति से संबंधित पुस्तकों को बीच बीच में से देखने लगा।

कत । स्थूलस्कन्धं बहुफलपादपं[1] बाहुपाशेनारोदुमक्षमा शाखाक्षिप्तदुकूलेन प्रयतमाना यथा प्रतिभाऽचिन्तयत्—"कथं न स्रग्गुम्फनकलया रहस्यं जानीयामिति विचिन्त्य करधृतसूत्रप्रसूनसूची-अध्ययनकक्षं प्रविष्टा चन्द्रकेतुं प्राह—"अद्याहं भवत्करगुम्फितमालालंकृता बुभूषामि । अयं तन्तुः, इयं सूचिका, एतानि कुसुमानि । गुम्फन्तु भवन्तः ।" मेधावी चन्द्रकेतुर् मनसि "दंपत्योरस्त्ययं कश्चिदन्तरंगविषयः" इति विज्ञाय स्वप्रस्तावानुकूलक्षणानुपलभ्य प्रत्यक्षमवदत्—"देवि ! न मे सन्तोषोऽजायताखेटकेन । कापालिकैर्युध्यमानस्यैव समयः प्रायात् । मिलितेऽपि मृगेन्द्रे न तं वेद्धुमपारयम् । एषाऽक्षमता तुदति मे मानसं नयनं रेणुवत् । अनुजानीहि मां पुनर्गन्तुम् । प्रत्यास्यामि द्रुतं सविपुलसम्पत् । प्रतिभा स्वाभ्यर्थनामाम्ररसं प्रार्थयमानाया मुखे क्षिप्तं कारवेल्लरसमिव मत्वा प्रत्यवदत्—"भवन्तः प्रथममेव चिरादागताः । साम्प्रतं मां पुनरपि तदवस्थायां निपातयितुं कामयन्ते । न जाने कदा प्रत्यागमनं स्यात् । भवच्छून्यं हर्म्यमिदं प्रतिभाति मे शूलमिव । मम संकटं बाधते मे पितरावपि । एवं भाषमाणां प्रतिभां चन्द्रकेतुः पुनरुवाच—"अधुनेयल्लघु[2] समायास्यामि, भवती मे पूर्वापराधमपि विस्मरिष्यति ।" प्रतिभा "यथा रोचते भवद्भ्यः" इत्यनिच्छन्त्यप्यन्वज्ञापयत् । वेत्रवतीप्रासादेऽज्ञातदेवपरिक्रमामिव घटनामिमां कोऽपि नाजानात् ।

भोजनमनु कृतमंगलश्चन्द्रकेतुर् विश्रमार्जितबलं चंचरीकमारुह्य गन्तुं प्रारेभे । "अहो ! व्यस्मरं मे चिरसहचरशुकम् । आनयतु भवती तमभ्यन्तरा" दिति प्रतिभां समादिशत् । सापि 'पथि प्रवृत्तानां विलम्बो न शोभनः । चेच्छिक्काद्यपशकुनं स्यात्तदा गृहवर्तिनां शंकाकुलं मनस्तुदति चिरम्" इति मत्वा सहसोत्थाय शुकमानीयाश्वपृष्ठस्थस्यैव करेऽधारयत् । शुकश्च

---

1. बाहुपाशेन—बाह्वोरादाय ।
2. लघु-शीघ्रम् ।

मोटे तने वाले फलों से भरे हुए पेड़ पर बाहुपाश से (जपफा डाल कर) चढ़ने में असमर्थ होती हुई मानों टहनी पर दुपट्टा फैंक कर ऊपर जाने का प्रयत्न करती हुई प्रतिभा सोचने लगी— 'माला गूंथने की कला से इस रहस्य को क्यों न जान लूं" ऐसा सोच कर हाथ में सूई, धागा और फूल लेकर अध्ययन के कमरे में चली गई और चन्द्रकेतु को बोली—"आज में आप के हाथ से गुंथी हुई माला से सजना चाहती हूं। (दिखाकर) यह धागा है, यह सूई है और यह फूल हैं। आप पिरोइये।" बुद्धिमान चन्द्रकेतु अपने मन में 'यह पति-पत्नी की कोई अन्दरूनी बात है' ऐसा जान कर अपने प्रस्ताव के अनुकूल समय पाकर प्रत्यक्ष बोला—"देवी, शिकार से मेरा सन्तोष न हुआ था। कापालिकों से युद्ध करते ही सारा समय बीत गया। शेर के मिलने पर भी मैं उसको बींध न पाया। यह असमर्थता धूलिकण नेत्र को जैसे मेरे मन को कष्ट पहुंचा रही है। मुझे फिर जाने की आज्ञा दो। मैं बड़ी सम्पत्ति के साथ शीघ्र ही लौट आऊंगा। प्रतिभा ने अपनी प्रार्थना को आम के रस को मांगतीं हुई के मुंह में जैसे करेले का रस डाल दिया हो ऐसा मान कर उत्तर दिया—"आप पहले ही देर से आये हैं। अब मुझे फिर उसी अवस्था में धकेल रहे हैं। पता नहीं कब तक लौट सकोगे। आप के बिना यह महल मुझे कांटे के समान अखरता है। मेरा संकट माता-पिता को भी पीड़ा पहुंचाता है।" इस प्रकार बोलती हुई प्रतिभा को चन्द्रकेतु फिर बोला—"इस बार इतनी जल्दी आऊंगा, आप मेरे पहले अपराध को भी भूल जाओगी। प्रतिभा "जैसे आप को अच्छा लगता है" इस प्रकार न चाहती हुई ने भी आज्ञा दे दी। वेत्रवती के महल में किसी अज्ञात देवता की परिक्रमा के समान इस घटना को कोई भी न जान सका।

भोजन के अनन्तर यात्रा का मंगल मना कर चन्द्रकेतु विश्राम से फिर शक्ति प्राप्त किये चंचरीक पर चढ़कर चल पड़ा। "अरे, मैं अपने साथी तोते को तो भूल गया। आप उसे अन्दर से ले आओ" इस प्रकार प्रतिभा को आदेश दिया। वह भी "रास्ते पर चलने को तैयार यात्री को देर होना ठीक न होती है। यदि कहीं छींक आदि का अपशकुन हो जाय तो घर रहने वालों का शंका में पड़ा मन देर तक तंग करता रहता है" ऐसा समझ कर जल्दी उठी और तोते को लाकर घोड़े की पीठ पर ही चन्द्रकेतु के हाथ में थमा दिया।

न्द्रकेतुहस्तस्पर्शसमपलमेवापठत्—

प्रतिभे ते न भर्तायं देवरो देवतोपमः ।
प्रतीक्षस्व दिनानि त्वं स्वामिनं समवाप्स्यसि ।।

एवमुक्त्वा चन्द्रकेतुहस्तादप्युन्मुक्तो यथाभिलषितं जगाम । रहस्यविवृति-विकलश्चन्द्रकेतुः सहसा लघुपादाघातेन चंचरीकमताडयत् । सोऽपि तद्भावं विजानन्निवाक्षिनिमेषेण प्रतिभानयनादृश्यतामगमत् । चन्द्रकेतुर्मनस्यचिन्तयत्— "तिरश्चामपि विचित्रा गतिः । निर्निमित्तमेव रहस्यं[1] विवृतम् । न जाने भ्रातृजाया मानसे किं चिन्तयिष्यति । अस्तु, देवरूपोऽयं शुकः । अत्रापि किञ्चिन्मंगलमेव विभावयामि ।"

शुकवचनं निशम्य स्तब्धेव प्रतिभा मनस्यचिन्तयत्-"प्रचलन्-शुकः किमेतदवादीत् । दिवसद्वयं विविधभोज्यैः [2]सभाज्यमानोऽयं कथं मूकोऽवातिष्ठत । किं मां द्विविधासागरे क्षेप्तुमेव वचोबाणममुञ्चत् ? एतत्कीदृशं छलं मया सह । चेदेतदेवं तदा महदाश्चर्यम् ।[3] आकृतौ-एवंविधेदन्ता किं क्वचिद् भवितुमर्हति ? न कुसुमेषु, न तारकेषु । युगलयोरपि दुर्लभा । न सौमित्रि-शत्रुघ्नयोर्, न नकुल-सहदेवयोर्, न लव-कुशयोर् न चाश्विनीकुमारयोरवालोकि । कुंभकार-घटितघटेष्वपि नैवंविधसाम्यम् । आचरणशीर्षं, न क्वापि वैषम्यम् । भाले तदेव गुप्ततिलकं, पादयोस्ते एव पद्मचक्रचिन्हे । करांगुल्यः, पादौ, अक्षिणी, अधरे, नासिका, कर्णौ-सर्वांगेषु शतं प्रयतित्वापि नान्तरं कर्तुं पार्यते । एक एव पदन्यासः । एकैव लम्बता । एक एव भाषणविधिः । विधे ! विचित्रा ते गतिः । एतत्कथं निष्पन्नम् । चेत्सत्यमेवायं देवरस्तदा कृतयुगेन[4] कलौ कृतं पदम् । अनलतापेन घृतं तरलतां न प्रयातीति न श्रुतम् । विकचकोरकं निरी-

1. विवृतं प्रकटितम् ।
2. सभाज्यमानः—सत्क्रियमाणः ।
3. एवंविधेति – एवंविधा इदंता समानता । (इदमो भाव इदंता)
4. कृतयुगेन—सत्ययुगेन ।
5. तरलतां—द्रवताम् ।

तोते ने चन्द्रकेतु के हाथ में आते ही यह श्लोक पढ़ा :—

हे प्रतिभा, यह तेरा पति न है। देवता के समान देवर है। कुछ देर तक प्रतीक्षा करो। तुम अपने पति को प्राप्त कर लोगी।

इस प्रकार कह कर चन्द्रकेतु के हाथ से भी छूट कर अपनी इच्छानुसार चला गया। रहस्य खुलने से विकल हुए चन्द्रकेतु ने शीघ्र ही घोड़े को हल्की एड़ी लगाई। वह भी उसके भाव को जानता हुआ जैसे पलक मारने के समय में ही प्रतिभा की आंखों से ओझल हो गया। चन्द्रकेतु मन में सोचने लगा—"पक्षियों की भी विचित्र ही गति होती है। विना कारण के ही रहस्य खोल दिया। पता नहीं भावज मन में क्या सोचेगी। अच्छा, यह तोता कोई देवता ही है। इस में भी कोई न कोई भलाई ही होगी।"

तोते के बचन को सुनकर स्तब्ध जैसी प्रतिभा मन में सोचने लगी—"अरे, यह चलता हुआ तोता क्या कह गया। दो दिन अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों से सत्कार किया हुआ यह चुपचाप कैसे रहा। क्या मुझे दुविधा के समुद्र में फैंकने के लिये ही यह वचन का तीर छोड़ दिया? यह मेरे साथ कैसा छल है। अगर यह ऐसा ही है तो बड़ा आश्चर्य है। क्या इस प्रकार की रूप में समानता कहीं हो सकती है? न फूलों में न तारों में। इकट्ठा जन्म लेने वालों में भी दुर्लभ। न लक्ष्मण-शत्रुघ्न में, न नकुल-सहदेव में, न लव-कुश में और न ही अश्विनीकुमारों में देखी गई। घुमार से बनाये घड़ों में भी इस प्रकार की समानता न पाई जाती है। सिर से पैर तक कहीं भी विषमता न है। मस्तक में वही गुप्त तिलक है। पैरों में वही कमल और चक्र के चिह्न हैं। हाथ की उंगलियां, पैर, आंखें, होंठ, नाक, कान सभी अंगों में सौ प्रयत्न करने पर भी अन्तर करना सम्भव नहीं है। एक ही चलने का ढंग, एक ही लम्बाई, एक ही बोलने का तरीका है। हे विधाता, तेरी गति विचित्र है। यह कैसे हो गया। यदि यह सत्य ही मेरा देवर है तो कलियुग में सत्ययुग ने पैर रख दिया। आग के ताप से घी न पिघलता हो यह कभी नहीं सुना। खिली हुई कली को देखकर

क्ष्य [1]तद्गन्धलुब्धद्विरेफस्तद्रसं पातुं न प्रक्रमते-एतदपि न कर्णगोचरतां गतम्। भास्करकिरणस्पृष्टं कमलं कथं [2]विकचतां न प्रयायात्। वीणावादनं निशम्य सर्पः कथं न नृत्येत्। मृगयुगीताकृष्टहरिणः कथं जाले नापतेत्। विविधभोज्य-पूरितस्थालीं पुरतो निरीक्ष्य को न सिष्वदिषते। अथ चाहमपि रूपे क्व न्यूना, अतुलनीयलावण्याहम्। पितृराज्ये न कापि युवती सौन्दर्ये मे समकक्षतां गता श्रूयते। ममानवद्यरूपलोलुपा एव राज्यलब्धजन्मानो युवानःसुगन्धलुब्धषट्पदाः कोरकमिव मामाप्तुं धावन्तः समागच्छन्। मम सूक्ष्मकरांगुलिस्पृष्टोऽचेतनोऽपि वीणादण्डश्चेतन इव रोमांचमुपयाति। कुरंगा ग्रासं प्रददानाया मे नयने निरीक्ष्य घासं चिरं मुखे धारयन्तस्तच्चर्वणं विस्मरन्ति। हंसा मे सविलासमन्दगतिं विलोक्य लज्जिता इव नन्दनोद्यानमायातुं नोत्सहन्ते। पुष्पावचये भ्रमरा-[3]अनादृतसुमनोगन्धाः पुनः पुनर् मे कपोलयोरायान्ति। अनुष्टुपं भाषमाणः स्वयमेषः शुकः पयः पाययन्त्या मे नासिकां सेर्ष्यमिवापश्यत्।

एतावान् संयमो देवेष्वपि दुर्लभः। चतुर्दशहायनानि मैथिलीं सेवमानं सौमित्रिमप्यतिक्रान्तोऽयं युवा चरिते। मन्ये नेयं काचित्साधारणा-कृतिः। भाग्यवत्पितृभ्यां कठिनतपश्चर्यया लब्धोऽयं कश्चिन्निधिरिति मन्यते मे हृदयम्। धन्योऽयं भारतीयसंस्कृतिविशालवृक्षो-यच्छायातल एवंविधशीलालंकृततरुणा विश्राम्यन्ति। चरितस्य मूर्तिरिव कन्दर्पद-र्पदलनो मे देवरश्चेत्प्रत्यावर्तते तदाहं पितरौ प्रबोध्य ममानुजसुषमा-मेतेनोद्वाहयित्वा प्रासादागतमेनं मुहुर्मुहुर्निरीक्ष्य-आत्मसंतोषं करिष्यामि।

---

1. द्विरेफः-भ्रमरः।
2. विकचतां-विकासताम्।
3. अनादृतेति-अनादृतः तिरस्कृतः सुमनसां गन्धः यैस्ते।

उसके गन्ध का लोभी भौंरा उस का रस पीने के लिये न आए यह भी सुनने में न आया है। सूर्य की किरण के छूने से कमल कैसे न खिले। वीणावादन को सुन कर सांप कैसे न नाचे। शिकारी के गीत पर मुग्ध हुआ हिरण जाल में कैसे न फंसे। अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों से भरी हुई थाली को सामने देख कर कौन न चखना चाहता है। और फिर मैं भी रूप में कहां कम हूँ। मेरे सौंदर्य की कोई तुलना न है। पिता के राज्य में कोई भी युवती सुन्दरता में मेरी बराबरी की न सुनी गई है। मेरे प्रशंसनीय रूप के लोभ में ही राज्य में जन्म पाने वाले युवा, गन्ध के लोभी भौंरे कली को जैसे मुझे पाने के लिये दौड़ते हुए चले आये। मेरे कोमल हाथ की उंगलियों से छुआ हुआ अचेतन भी वीणादण्ड चेतन के समान रोमांचित हो जाता है। हिरण ग्रास को देती हुई मेरे नेत्रों को देख कर घास को चिर तक मुख में धारण करते हुए उसे चबाना भूल जाते हैं। हंस मेरी विलास भरी मन्द गति को देख कर मानों जैसे लज्जित हुए नन्दनोद्यान में आने का साहस न करते हैं। फूल चुनते समय भौरे फूलों की गन्ध को छोड़ कर मेरी गालों पर आ कर बैठते हैं। अनुष्टुप् छन्द बोलने वाला यह तोता दूध पिलाते समय मेरी नाक को ईर्ष्या से देखता था।

इतना संयम तो देवताओं में भी न मिल सकता है। चौदह वर्ष सीता की सेवा करने वाले लक्ष्मण को भी यह युवक मात दे गया। मेरे विचार में यह कोई साधारण आकृति न है। भाग्यवान माता-पिता ने कोई कठिन तपस्या करके इस कोष को पाया है, ऐसा मेरा मन मानता है। धन्य यह भारतीय संस्कृति का विशाल वृक्ष है जिस की छाया में इस प्रकार के चरित्र से सजे युवक विश्राम पाते हैं। चरित्र की साक्षात मूर्ति जैसा कामदेव के घमण्ड को तोड़ने वाला मेरा देवर यदि लौटेगा तो मैं माता-पिता को समझा कर छोटी बहन सुषमा का इस के साथ विवाह करवा कर महल में आए हुए इस को बार बार देख कर अपना संतोष किया करूँगी।

अथ भर्तुरचिन्तयत्—चेत्सत्यमेवायं मे देवरस्तदा क्व मे भर्ता। मासोऽयं विगतस्तस्य प्रासादं परित्यजतः। क्वचिच्छत्रुभिराक्रान्तः ? नैतत्संभवम्। नारयस्तच्छरप्रहारं [1]सोढुमर्हन्ति। कच्चिद्विद्रस्रकैः क्षततां नीतः? तदपि न विश्वस्यम्। तत्तेजसः पुरस्तात्तेऽनलतापादिव दूरं पलायन्ते। परं चेत्क्वचिद्दैव-मायाविपन्नस्तदा किं करिष्यामि। एतज्जालपतिता भीमार्जुनसमा वीरास्त-डागतटे चिरं मूर्छिता न्ययतन्। एतत्समक्षं सबला अपि निर्बलाः। तेजोवन्तोऽपि निस्तेजसः। भाग्यवन्तोऽपि[3] दैवहतकाः। अस्तु तावत्, नाहं साम्प्रतमेकाकिनी। देवसमो देवरोऽपि मे सहायकः। (मस्तके हस्तं निधाय) "सविपुलसम्पद् द्रुतं प्रत्यायास्यामी" त्यस्य कोऽर्थः। मम देवरो मदर्थं कां विपुलसम्पदमाहरिष्यति। हे भवानि, सर्वेषां मंगलं कुरु। एवं ध्यायन्ती शिवाभिषेकेप्सया ताम्रजलहरीसमलङ्कृतं समास्तृतबिल्वपत्रविभूषितं शिवमंदिरं प्रविवेश।

चन्द्रकेतुर् बुद्धिपाटवेन वनाद् वनं परिभ्रमन्नपहृतवायुयानस्थपितृसमा-चारमाप्तुं तनय इवाऽग्रजं द्रष्टुमधीरान्तरात्मा तुरंगमपृष्ठासीन एव तस्या-चिन्तयत्—"वाजिनो मानवजातेर्मित्राणि। एतेषामितिहासोऽप्यद्भुतः। वैदिककालादेवैते परार्थं जीवन्तो म्रियमाणाश्च ज्ञायन्ते। स्वपीडामगणयन्तः परव्यथामपहरन्ति। कुरुक्षेत्रे मोहापन्नपार्थमुद्बोधयितुं भगवता कृष्णेन श्रावितो-मानवविस्मृतोऽपि गीतोपदेशोऽद्याप्येतेषां हृदये तदवस्थो वर्तते। कर्मण्येवैतेषां विश्वासो न फले। प्राणांस्त्यक्त्वापि स्वामिनं रक्षन्ति। स्वस्थमिव रुग्णमपि वहन्ति। भूपमिव रङ्कमपि सुखयन्ति। संपदीव विपद्यपि सहायकाः।

---

1. सोढुं -मर्षितुम्। षह् मर्षणे। "सहिवहोरोदवर्णस्य" अनेन ओत्।
2. क्षततां—क्षतावस्थाम्
3. दैवहतकाः - भाग्यहीनाः।

इस के बाद पति के बारे में सोचने लगी—"यदि सचमुच ही यह देवर है तो मेरा पति कहां है। उस के महल छोड़े हुए एक महीना हो चुका है। क्या कहीं शत्रुओं ने उस पर आक्रमण कर दिया है? यह संभव नहीं। शत्रु उस के तीरों की मार को सहन न कर सकते हैं। क्या कहीं हिंसक जीवों ने घायल कर दिया है? यह भी विश्वास करने के योग्य नहीं। उस के तेज के समाने वह आग के ताप से जैसे दूर भाग जाते हैं। परन्तु यदि कहीं देवमाया से ही विपत्ति में फंस गया है तो मैं क्या करूंगी। इस के जाल में फंसे हुए भीम, अर्जुन के समान बहादुर तालाब के किनारे चिरकाल तक मूर्छित पड़े रहे थे। इस के सामने बलवान भी निर्बल, तेज वाले भी बिना तेज के और भाग्यवान भी भाग्यहीन बन जाते हैं। अच्छा, कोई बात नहीं। अब मैं अकेली न हूं। देवता के समान चरित्र वाला देवर भी मेरा सहायक है। (माथे पर हाथ रख कर) "बड़ी सम्पत्ति के साथ शीघ्र ही वापस आऊंगा' इसका क्या अर्थ है। मेरा देवर मेरे लिये कौन-सी बड़ी सम्पत्ति लाएगा। हे पार्वती, सब का भला करो।" इस प्रकार ध्यान करती हुई शिव के अभिषेक की इच्छा से ताम्बे की जलहरी से सजे हुए, बिखरे हुए बिल के पत्तों वाले शिवमंदिर में चली गई।

चन्द्रकेतु अपने बुद्धिबल से जंगल से जंगल में घूमता हुआ अपहरण किये हुए वायुयान में बैठे पिता का समाचार पाने के लिये पुत्र के समान भाई को देखने के लिये अधीर मन वाला घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ ही उस के बारे में सोचने लगा—"घोड़े मनुष्यजाति के मित्र होते हैं। इन का इतिहास भी बड़ा अनोखा है। वैदिककाल से लेकर ही यह दूसरों के लिये जीते और मरते आए हैं। अपनी पीड़ा को न गिनते हुए दूसरों के कष्ट को दूर करते है। कुरुक्षेत्र में मोह में फंसे हुए अर्जुन को समझाने के लिये भगवान कृष्ण के द्वारा सुनाया हुआ गीता का उपदेश, जिसे मानव भुला चुका है, इनके हृदय में वैसे का वैसा ही बैठा हुआ है। इन का कर्म में ही विश्वास है, फल में नहीं। प्राणों का बलिदान करके भी स्वामी की रक्षा करते हैं। स्वस्थ के समान रोगी को भी उठाते हैं। राजा के समान रंक को भी सुख देते हैं। सुख के समान दुख में भी सहायता करते हैं।

अद्य पंचदिवसा एतत्पृष्ठस्थस्य मे । न समये जलं न घासः । यदाहं पिपासुरेषोऽपि पिबति । यदाहं जिघत्सुरेषोऽपि किञ्चित् खादति । यदाहं विश्रमेच्छुरेषोऽपि विश्रमति । एतत्कृतोपकाराणां कथमानृण्यं प्रयास्यामीति न बोद्धुं क्षमः ।" एवं तस्य विचिन्तयतो मनोभावं विजानन्निव चंचरीकः पुच्छं चालयन्नुत्तरदिशं प्रति ग्रीवामुन्नमयन् ह्रेषमाणः [1]स्तम्भितपाद इवावतिष्ठत । चन्द्रकेतुर्मुहुर्मुहुः कविकामाकर्षन् "एतत्किम् ? कथमवरुद्धोऽयम् । कच्चित् खुरे शंकुः प्रविष्टः ? एतद्दिशि ग्रीवोन्नमनस्य कोऽर्थः । किमहं लक्ष्यं प्राप्तः? कथं नावतीर्य पश्येयम्" एवं पृष्ठाध आगतः शफान्निरापदो विज्ञाय (अदक्षिणकर्णं वामहस्तेन छादयन् दक्षिणञ्चोत्तरदिशि सावधानं विनियोजयन्) अहो ! एतद्दिश्यस्पष्टो ध्वनिः श्रूयते । अनुमिनोमि, कश्चिद् यक्षो मधुरं गायति । पश्यामि तावत् । चञ्चरीक, धन्यस्त्वम् । एवमश्वाय धन्यवादान् वितरन्नग्रतो गतो विपुलतडागतटे मूर्छितं मृतमिव शयानं सूर्यकेतुं समैक्षत । अग्रजं तदवस्थं निरीक्ष्य स्फुरद्बाहुः कोपाविष्टो-ज्यां स्पृशन् - "मम वीरः सहोदरः केन निहितः । अहमेकेनैव शरेण तं धरातल-गतं करिष्य" इति कृतसंकल्पः प्रथमं तृषाशमनायैवोद्यतोऽभवत् । परं जलाभिलाषिणं तं तडागेशयक्षः—"भोः कस्त्वम् ? मा स्पृश जलम् । नात्र पयःपानाधिकारो मे प्रश्नोत्तरं विना । ममादेशमपालयन्नग्रजवदेवासमये यमलोकं प्रवेक्ष्यसि" इत्य-वारयत् । चन्द्रकेतुः परोक्षवचो निशम्य विस्मितोऽचिन्तयत्—"कस्येयं वाक् । न कोऽपि प्रत्यक्षं दृश्यते । एषः कथं जानाति यन्मूर्छितेनास्ति मे सहोदरसम्ब-

1. स्तंभितपादः-अवरुद्धपादः ।

आज इसकी पीठ पर बैठे मुझे पांच दिन बीत चुके हैं। न समय पर पानी मिल रहा है न घास। जब मैं जल पीता हूं यह भी पी लेता है। जब मैं कुछ खाना चाहता हूं यह भी खा लेता है। जब मैं विश्राम करना चाहता हूं यह भी विश्राम कर लेता है। इसके उपकारों से कैसे उऋण हो पाऊंगा, इसका कुछ पता नहीं। इस प्रकार उसके सोचते ही सोचते मानों उसके मन के भाव को जानता हुआ जैसे चंचरीक पूंछ को हिलाता हुआ उत्तर दिशा की ओर गर्दन को उठाकर हिनकता हुआ रुके हुए पैरों वाला जैसे खड़ा हो गया। चन्द्रकेतु बार-बार लगाम को खींचता हुआ "यह क्या, यह कैसे रुक गया। क्या खुर में कोई कांटा घुस गया है? इस दिशा की ओर गर्दन उठाने का क्या अभिप्राय है। क्या मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच गया हूं? उतर करके देख ही क्या न लूं।" इस प्रकार पीठ से नीचे उतर कर खुरों को संकटहीन जानकर (बाएं कान को बाएं हाथ से ढांपता हुआ दाएं को उत्तर दिशा में सावधानता से लगाता हुआ) "अरे इस दिशा में कोई अस्पष्ट आवाज आ रही है। शायद कोई यक्ष मीठा गा रहा है। अच्छा देखता हूं। "चंचरीक, तू धन्य है।" इस प्रकार घोड़े को धन्यवाद देता हुआ आगे जाकर एक बड़े तालाब के किनारे मूर्छित मृत के समान सोये हुए सूर्यकेतु को देखा। बड़े भाई को इस अवस्था में देख कर गुस्से में आया हुआ फड़कती भुजाओं वाला चिल्ले को खींचता हुआ "मेरे बहादुर भाई को किसने मारा है। मैं एक ही बाण से उसे धरती पर सुला दूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके पहले अपनी प्यास बुझाने के लिए ही तैयार हो गया। परन्तु जल पीने की इच्छा वाले उस को तालाब का मालिक यक्ष— "अरे तुम्हारा क्या नाम है। पानी को मत छूना। मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना यहां किसी को भी पानी पीने का अधिकार न है। मेरी आज्ञा का उलंघन करने पर बड़े भाई के समान ही समय से प्रथम ही यमलोक को चले जाओगे" इस प्रकार उसे पानी पीने से रोक दिया। चन्द्रकेतु परोक्ष की बात को सुन कर विस्मित हुआ सोचने लगा—"यह किस की बाणी है, सामने तो कोई दिखाई न दे रहा है। इसे कैसे पता है कि मूर्छित से मेरा भाई का सम्बन्ध है।

न्धः । नेयं मायाविभाषा । वक्ता कश्चिद्देव एव प्रतीयते । एतस्य वचसः पाल नाच्चेन्मे सहोदरो जीवति तदा महतीयं सिद्धिराप्ता स्यात् । नादेशभंगे कश्चिल्लाभः" । एवं विचिन्त्य यतिरिन्द्रियाणीव जलपानेच्छां [1]नियम्य धरणी-धृतधनुरवादीत्—"को भवान् ! प्रत्यक्षमायातु । प्रस्तुतोऽहं भवतो जिज्ञासां परिहर्तुम्" । एवं तमुद्यतं विज्ञाय यक्षः परोक्षमेव प्रश्नानकरोत् –

यक्ष :— जननी कीदृशी श्रेष्ठा तातः श्रेष्ठश्च को मतः ।
तनयः कीदृशः श्रेष्ठः श्रेष्ठः कश्च सहोदरः ॥ १ ॥

चन्द्रकेतु : माता शीलवती श्रेष्ठा तातो विद्याप्रदायकः ।
आज्ञाकारी सुतः श्रेष्ठ स्त्यागी श्रेष्ठः सहोदरः ॥ २ ॥

यक्ष :— भार्या च कीदृशी श्रेष्ठा भर्ता श्रेष्ठश्च को मतः ।
भ्रातृजाया च का श्रेष्ठा देवरः कोऽस्ति शोभनः ॥ ३ ॥

चन्द्रकेतु :—आदेशकारिणी भर्तुर् वसन्ती निर्मले गृहे ।
भार्या भवति सा श्रेष्ठा गृहस्थभूषणं परम् ॥ ४ ॥
एकपत्नीव्रतं यस्य [2]मद्यद्यूतविवर्जितः ।
ईदृशोऽस्ति पतिः श्रेष्ठः सदाचारेण भूषितः ॥ ५ ॥
स्नेहेन भ्रातृतुल्येन स्निह्यति देवरे च या ।
श्रेष्ठा च भ्रातृजाया सा सर्वदा कुलनन्दिनी ॥ ६ ॥
देवरो भवति श्रेष्ठः सौमित्रिवृत्तमुद्वहन् ।
नेत्रपूरं न योऽपश्यन्मैथिलीं निवसन् वने ॥ ७ ॥

यक्ष :— श्वशुरौ कीदृशौ श्रेष्ठौ ननान्दा कीदृशी शुभा ।
वधूर्भवति का श्रेष्ठा देहि संगतमुत्तरम् ॥ ८ ॥

चन्द्रकेतु :—यौतुकार्थं न लोभोऽस्ति वधूवंशं न निन्दतः ।
श्वशुरावीदृशौ श्रेष्ठौ जानीतस्तां [3]तथात्मवत् ॥ ९ ॥

---

1. नियम्य—निरुध्य
2. मद्येति—मद्यद्यूताभ्यां विवर्जितः—रहितः ।
3. आत्मवत्—स्वतनयासमामिति भावः ।

यह किसी मायावी की भाषा न है। बोलने वाला कोई देवता प्रतीत होता है। इसके वचन का पालन करने से यदि मेरा भाई जीवित हो जाता है तो यह बड़ी सम्पत्ति मिल जायगी। इस के आदेश को न मानने का कोई लाभ न होगा।" (इस प्रकार सोच कर यति जैसे इन्द्रियों को, जलपान की इच्छा को रोक कर धनुष को धरती पर रख कर) बोला—"आप कौन हैं। सामने आ जाइये। मैं आप के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये तैयार हूं। इस प्रकार उस को तैयार हुआ जान कर यक्ष परोक्ष में ही प्रश्न करने लगा –

यक्ष — माता कौन अच्छी होती है। पिता कौन अच्छा होता है।
पुत्र कैसा अच्छा होता है और भाई कौन अच्छा होता है॥१॥

चन्द्रकेतु —चरित्र वाली माता अच्छी होती है।
विद्या देने वाला पिता अच्छा होता है।
आज्ञाकारी पुत्र अच्छा होता है।
भाई त्याग वाला अच्छा होता है॥२॥

यक्ष — पत्नी कौन अच्छी होती है। पति कौन अच्छा होता है।
भावज कैसी अच्छी होती है और देवर कौन अच्छा होता है ॥३।

चन्द्रकेतु —पति की आज्ञा का पालन करने वाली और घर को साफ सुथरा रखने वाली पत्नी अच्छी होती है जो घर का भूषण मानी जाती है॥४॥
जो एक पत्नी का व्रत रखने वाला हो,
जो मांस न खाता हो,
जूआ न खेलता हो, जो सदाचारी हो,
ऐसा ही पति अच्छा माना जाता है॥५॥
जो भाई जैसे प्यार से देवर को देखती हो,
वही कुल को आनन्दित करने वाली भावज अच्छी मानी जाती है॥६।
देवर वही अच्छा है जिस का चरित्र लक्ष्मण के समान हो
जिस ने चौदह वर्ष वन में रहते हुए सीता को आंख भर न देखा था।७।

यक्ष — सास-ससुर कौन अच्छे होते हैं। ननद कौन अच्छी होती है।
बहू कौन अच्छी होती है इन प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दो॥८॥
जिन में दहेज का लोभ न हो,
जो बहू के पितृकुल की निन्दा न करते हों।
जो उसे अपने ही बच्चों के समान
समझते हों वही सास-ससुर अच्छे होते हैं॥९॥

ननान्दा सा मता श्रेष्ठा चिन्तयति स्वमानसे ।
"अहञ्चापि[1] वधूर्भूत्वा यास्यामि परमन्दिरम्" ॥१०॥
न चेषद्विषये कोपो यस्या बलिर्न मस्तके ।
एवंविधा वधूः श्रेष्ठा श्वशुरकुलनन्दिनी ॥११॥

यक्ष :— कन्या भवति का श्रेष्ठा कुलस्य मानवर्धिनी ।
तातालये निवासस्य को विधिरुत्तमो मतः ॥१२॥

चन्द्रकेतु : - कन्या भवति सा श्रेष्ठा यावत्तातनिकेतने ।
दधाना सरलं वेषं वहते चाचलं मनः ॥१३॥

यक्ष : - कुलञ्च कीदृशं श्रेष्ठं ग्रामश्च कीदृशः शुभः ।
विद्या भवति का श्रेष्ठा कीदृशं धनमुत्तमम् ॥१४॥

चन्द्रकेतु :—निष्कलङ्कं कुलं श्रेष्ठं कुलनारीविभूषितम् ।
एवमेव मतः श्रेष्ठो ग्रामो विद्वत्समन्वितः ॥१५॥
विद्या त्वर्थकरी श्रेष्ठा यामधीत्य न सीदति ।
धनं भवति तच्छ्रेष्ठं भ्रष्टाचारविवर्जितम् ॥१६॥

यक्ष : - विद्यार्थी चास्ति कः श्रेष्ठो विद्या कस्य करस्थिता ।
सत्यं ब्रवीति को लोके किमाश्चर्यं कलौ युगे ॥१७॥

चन्द्रकेतु : विद्यार्थी ब्रह्मचारी यो राजनीतिविवर्जितः ।
अधीतेऽहर्निशं पाठान् विद्या तस्य करस्थिता ॥१८॥
दर्पणं भाषते सत्यं पक्षपातं करोति न ।
धनाढ्या निर्धना वापि समानास्तस्य सम्मुखे ॥१९॥
प्रमादानां फलं लोका लभन्तेऽत्र दिनं दिनम् ।
पुनस्तथा चिकीर्षन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥२०॥

यक्ष : - कीदृशञ्चौषधं श्रेष्ठं रोगिणां रोगवारणम् ।
वैद्यो भवति कः श्रेष्ठो रुग्णानां प्राणरक्षकः ॥२१॥

चन्द्रकेतु : औषधञ्चापि तच्छ्रेष्ठं स्वस्थद्रव्यविनिर्मितम् ।
नाडीज्ञानं भवेद्यस्य स वैद्यो रोगिणां प्रियः ॥२२॥

यक्ष : — वर्षा भवति का श्रेष्ठा कीदृशं बीजमुत्तमम् ।
बलीवर्दश्च[2] कः श्रेष्ठः कीदृशो हलचालकः ॥२३॥

चन्द्रकेतु :—वर्षा [3]सामयिकी श्रेष्ठा सर्वदा सस्यवर्धिनी ।
बीजं भवति तच्छ्रेष्ठं दत्तेऽङ्कुरं दिनत्रये ॥२४॥

---

1. अहञ्चापीति—अहं भ्रातृजायया सह यादृशं व्यवहारं करिष्यामि, श्वशुरालये मे ननान्दरो मया सहापि तथैव व्यवहरिष्यन्तीति भावः ।
2. बलीवर्दः—वृषभः ।
3. सामयिकी —समयानुसारिणी ।

ननद वह अच्छी होती जिस के मन में यह विश्वास हो कि "एक दिन मैं भी वहू बन कर पराये घर जाऊंगी" ॥१०॥

जो जरा-जरा बात पर गुस्सा न करती हो, जिस के मस्तक पर तेवर न पड़ते हों, ऐसी ही बहू अच्छी होती है जो श्वशुर कुल को सदा आनन्दित रखती हो ॥११॥

यक्ष — कन्या कौन अच्छी होती है, जो कुल के मान को बढ़ाती हो और कन्या का पिता के घर में रहने का अच्छा तरीका क्या है ॥१२॥

चन्द्रकेतु —कन्या वही श्रेष्ठ होती है जो जब तक पिता के घर में हो सादा भेष में रहे और अपने मन को चंचल न बनाए ॥१३॥

यक्ष — कुल कौन अच्छा होता है, ग्राम कौन अच्छा होता है, विद्या कौन अच्छी है, धन कौन अच्छा होता है ॥१४॥

चन्द्रकेतु - अच्छी कुलनारियों से सजा हुआ कलंकहीन कुल ही अच्छा होता है। ग्राम वह अच्छा माना जाता है जिस में विद्वान लोग रहते हों ॥१५॥

विद्या धन देने वाली अच्छी होती है
जिसे पाकर मनुष्य कष्ट में न रहता हो।

धन वह अच्छा होता है जो भ्रष्टाचार से न कमाया गया हो ॥१६॥

यक्ष — विद्यार्थी कौन अच्छा होता है, विद्या किस के हाथ में रहती है, यदि भाई के प्राण चाहते हो तो ठीक ठीक उत्तर दो ॥१७॥

चन्द्रकेतु — जो विद्यार्थी ब्रह्मचारी हो राजनीति से दूर रहता हो, जो दिन-रात पाठ को स्मरण करता हो, विद्या उसी के हाथ में रहती है ॥१८॥

शीशा सदा सत्य बोलता है, यह किसी का पक्षपात न करता है। इसके आगे धनी और निर्धन सभी समान होते हैं ॥१९॥

लोग यहां कलियुग में अपनी भूलों का फल दिन-दिन प्राप्त कर रहे हैं। फिर भी वैसे ही भूलें करना चाहते हैं। इस से बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है ॥२०॥

यक्ष — रोगियों के रोग का हरण करने वाली औषधी कौन अच्छी होती है, वैद्य कौन अच्छा होता है जो रोगियों के प्राणों की रक्षा कर सके ॥२१॥

चन्द्रकेतु — औषधि वह अच्छी होती है जो ताज़ी जड़ी-बूटियों से बनी हो। वैद्य वह रोगियों का प्यारा होता है जिसे नाडी का ज्ञान हो ॥२२॥

यक्ष — वर्षा कौन अच्छी होती है, बीज कौन अच्छा होता है, बैल कौन अच्छा होता है और हल चलाने वाला कौन अच्छा होता है ॥२३॥

चन्द्रकेतु —वर्षा वह अच्छी है जो ठीक समय पर हो और जो खेती को बढ़ाने वाली हो। बीज वह अच्छा होता है जिस का तीन दिन में अंकुर निकल आए ॥२४॥

कृष्यमाणं यदा क्षेत्रं ग्रीवायाञ्च युगो यदा।
[1]निषीदति न [2]वप्रे यो बलीवर्दः स उत्तमः ॥२५॥
यो न तुदति [3]तोत्रेण वृषभौ लोकपालकौ।
प्रेरयते सहुंकारं प्रशस्यो हलचालकः ॥२६॥

यक्ष :— गजो भवति कः श्रेष्ठः शत्रुदर्पविदारणः।
वाजी च शोभनः कोऽस्ति स्वामिनो मानवर्धनः ॥२७॥

चन्द्रकेतु :— भुवि गन्धगजः श्रेष्ठो नृपस्य विजयप्रदः।
दूरादेव पलायन्ते यस्य गन्धेन हस्तिनः ॥२८॥
धावति प्लुतगत्या यः पृष्ठस्थं धारयन् धिया।
संसारे सकलश्रेष्ठ [4]आजानेयस्तुरंगमः ॥२९॥

यक्ष :— कीदृक् प्रशासकः श्रेष्ठः प्रजा श्रेष्ठा च कीदृशी।
देशो भवति कः श्रेष्ठः पूज्यते यश्च भूतले ॥३०॥

चन्द्रकेतु :— चरित्रं स्वीयमुद्धृत्य चालयते शुभे पथि।
नागरिकान् स्वदेशस्य श्रेष्ठश्चासौ प्रशासकः ॥३१॥
प्रजा भवति सा श्रेष्ठा हितं देशस्य चिन्तयेत्।
जागरूका सदा तिष्ठेद् "रिपू राष्ट्रं न संस्पृशेत्" ॥३२॥
वेश्यावृत्तिर्न यत्रास्ति मद्यस्य नापणः क्वचित्।
भुवि पूज्योस्ति देशोऽसौ भ्रष्टाचारविवर्जितः ॥३३॥
[5]खाद्यशस्त्रात्मतंत्रो य श्चान्तःकलिविवर्जितः।
कलहो न यदेऽसायैं देशोऽसौ भुवि मानभाक् ॥३४॥

यक्ष :— अर्थं कश्च न गृह्णाति क्षीयते कस्य चायुषा।
निद्राया वैरिणी कास्ति देहि प्रश्नोत्तरं शुभम् ॥३५॥

चन्द्रकेतु :— मनो यस्य स्थिरं नास्ति बुद्धिः पृष्ठनिवासिनी।
अर्थमसौ न गृह्णीते [6]घटोऽम्बु छिद्रवान् यथा ॥३६॥
व्यसनानां सखा योऽस्ति जिह्वालौल्यवशस्थितः।
वकध्यानेन कामेप्सा वयसा तस्य क्षीयते ॥३७॥

---

1. निषीदति-उपविशति। 2. वप्रे-क्षेत्रे 3. तोत्रेण-तोदनदंडेन। "तोत्रं वैणुकमालानं बन्धस्तम्भेऽथश्रृंखला" (इत्यमरः) 4. आजानेयः-एतज्जातीयः। 5. आत्मतंत्रः-स्वाधीनः। 6. अम्बु-जलम्।

जब खेत में हल चलाया जा रहा हो, और गर्दन पर जुआ रखा हो ऐसी स्थिति में जो बैल खेत में बैठ न जाता हो, वही सब से अच्छा समझा जाता है ॥ २५ ॥

जो संसार का पालन करने वाले बैलों को छठी से न हांकता हो केवल हुंकार से ही चलाता हो वही हलचालक अच्छा समझा जाता है ॥ २६ ॥

यक्ष — शत्रु के घमंड को दूर करने वाला हाथी कौन अच्छा होता है। स्वामी के मान को बढ़ाने वाला कौन घोड़ा श्रेष्ठ होता है ॥ २७ ॥

चन्द्रकेतु —संसार में गन्धा हाथी सबसे श्रेष्ठ होता है वही राजाओं को विजय दिलाता है। जिस की गन्ध से ही दूसरे हाथी दूर भाग जाते हैं ॥ २८ ॥

जो पीठ पर बैठे सवार को सावधानी से धारण करता हुआ प्लुत गति (उछल कर चलना) से चलता हो ऐसा आजानेय जाति का घोड़ा संसार में सबसे अच्छा माना जाना है ॥ २९ ॥

यक्ष — प्रशासक कौन अच्छा होता है, प्रजा कौन श्रेष्ठ होती है। देश कौन श्रेष्ठ होता है जिसकी सारे संसार में मान्यता हो ॥ ३० ॥

चन्द्रकेतु —जो अपने चरित्र का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर अपने देशवासियों को अच्छे रास्ते पर चलता हो वही प्रशासक अच्छा होता है ॥ ३१ ॥

प्रजा वह अच्छी होती है जिसे देश के हित का ध्यान हो तथा इतनी जागरूक हो कि "कहीं शत्रु मेरे राष्ट्र का स्पर्श न करने पाए" ॥ ३२ ॥

जहां वेश्यावृत्ति न हो, जहां शराब के ठेके न हों, जिस में भ्रष्टाचार न हो ऐसा ही देश संसार में पूजा जाता है ॥ ३३ ॥

जो खाद्यसामग्री में और अस्त्र-शस्त्र में आत्मनिर्भर हो जिस के अन्दर कोई झगड़ा न हो और जहां पद के लिये खींचातानी न हो ऐसा देश संसार में मान पाता है ॥ ३४ ॥

यक्ष — अर्थ को कौन ग्रहण न करता है। आयु किस की घटती है। निद्रा की शत्रु कौन है, इन प्रश्नों का उत्तर दो ॥ ३५ ॥

चन्द्रकेतु —जिस का मन स्थिर न हो, जिस की बुद्धि पीठ में हो में ऐसा मनुष्य अर्थ को ग्रहण न कर सकता है जैसे छेद वाला घड़ा पानी को धारण करने में असमर्थ होता है ॥ ३६ ॥

जो व्यसनों का मित्र हो जो जीभ के वश में रहता हो, जो बगले के ध्यान से काम की इच्छा में रहता हो ऐसे ही मनुष्य की आयु घटती है ॥ ३७ ॥

निद्राया वैरिणी चिन्ता भेदं ग्रस्तो निबुध्यते ।
कोटिपतिर्गतोऽङ्केऽस्याः क्षणं स्वापाय रोदिति ॥ ३८ ॥

यक्ष :— धर्मानपेक्ष-राट्रस्य लक्षणं वद साम्प्रतम् ।
तत्र सन्ति च के दोषा राष्ट्रार्थं ये भयावहाः ॥ ३९ ॥

चन्द्रकेतु :—समाना संहिता यत्र समस्तदेशवासिभ्यः ।
धर्मानपेक्षराष्ट्रं तन्मुनिभिः समुदाहृतम् ॥ ४० ॥
समानसंहिताभावे जना दूषितवृत्तयः ।
धर्मान्धा एव जायन्ते राष्टं प्रदूषयन्ति च ॥ ४१ ॥
छिन्नं कर्तुं ततो राष्ट्रं यतन्ते प्रेरिताः परैः ।
संहितैका त्वतः [1]प्राज्ञैरनिवार्या मता सदा ॥ ४२ ॥

यक्ष :— कलियुगे समायाते दानं किमुत्तमं मतम् ।
दातारो येन स्वर्लोके नंदन्ति देवता यथा ॥४३॥

चन्द्रकेतुः— दानं नयनयोः पुण्यं वृक्कदानं तथोत्तमम् ।
रक्तदानं महापुण्यं श्रेष्ठा दानत्रयी कलौ ॥ ४४ ॥

यक्ष : — तवोत्तरैः प्रसन्नोऽहं भ्राता प्राणधरोऽस्तु ते ।
पानीयं सरसः पीत्वा मार्गमाश्रयतां स्वकम् ॥ ४५ ॥

एवमुक्त्वा यज्ञोपवीती आस्कन्धलम्बकेशस्त्रिपुंड्रालंकृतभालः पीतवासाः सरसो जलनीलिकां हर्तुमिव धवल-[2]दन्तदीधितिं प्रसारयन् यक्षः प्रत्यक्षीभूय दक्षिणकरगृहीततडागपयोबिन्दुभिः सूर्यकेतुमभ्युक्ष्य सायंतनमार्तण्ड इव तिरोहितो बभूव । असावपि भास्करकिरणैः कमलमिव सुषेणवैद्याभ्यर्थित-[3]पवनसुताहृतसंजीवनीगन्धेन रामानुज इव सलिलकणैः पुनरागतप्राणः पुरस्ताच्चन्द्रकेतुं निरीक्ष्य मोहाविष्टो विस्मितः स्वप्नमिवानुभवन् वनवासविनिवृत्तो रामो भरतमिव तं गाढमालिलिङ्ग । एतं समागमं समीक्ष्य दिवाकरो नभसि कतिचित्क्षणेभ्यो निरुद्धरथोऽवातिष्ठत । यक्षाः

1. प्राज्ञैः—बुद्धिमद्भिः ।
2. दन्तेति—दन्तानां दीधितिं प्रभाम् ।
3. पवनसुतः - हनुमान् ।

नींद की शत्रु चिन्ता है इसके भेद को वही जानता है जो इससे पकड़ा गया हो। इसकी पकड़ में गया हुआ करोड़पति भी पल भर सोने के लिये तड़पता है ॥३८॥

यक्ष— अब धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र का लक्षण बताओ। इसमें वह कौन से दोष हैं जो राष्ट्र के लिये भयानक सिद्ध होते हैं ॥३९॥

चन्द्रकेतु—जहां सब देशवासियों के लिये एक जैसी संहिता हो मुनियों ने उसी राष्ट्र को धर्मनिरपेक्ष कहा है ॥४०॥
समान नागरिक संहिता के न होने पर लोग दूषित वृत्ति वाले बन कर धर्मान्ध हो जाते हैं और फिर राष्ट्र को दूषित करते हैं ॥४१॥
फिर वह दूसरों से प्रेरणा पा कर राष्ट्र के टुकड़े करना चाहते हैं। इसी लिये बुद्धिमान लोगों ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में समान नागरिक संहिता को अनिवार्य बताया है ॥४२॥

यक्ष— कलियुग में सब से अच्छा दान क्या होगा जिस के करने से लोग स्वर्ग में देवताओं के समान प्रसन्न रह सकें ॥४३॥

चन्द्रकेतु—नेत्रों का दान पुण्यदायक होता है। गुर्दे का दान श्रेष्ठ होता है। रक्तदान भारी फलदायक है। कलियुग में यह तीन दान सबसे अच्छे माने जाएंगे ॥४४॥

यक्ष— आपके उत्तरों से मैं प्रसन्न हूं। आपका भाई जीवित हो जाए। तालाब का पानी पी कर दोनों अपने रास्ते पर चले जाओ ॥४५॥

ऐसा कह कर यज्ञोपवीत वाला, कन्धे तक लम्बे केशों वाला, त्रिपुंड्र से सजे मस्तक वाला, पीले वस्त्र धारण किये हुए, मानों जैसे तालाब के नीलेपन को दूर करने के लिये ही दान्तों की चमक को फैला रहा हो, ऐसा यक्ष प्रत्यक्ष हो कर दाएं हाथ में ली हुई तालाब के पानी की बून्दों से सूर्यकेतु को छींटे दे कर सायंकाल के सूर्य के समान छिप गया। वह भी सूरज की किरणों से कमल के समान, सुषेण वैद्य से मंगवाई हुई हनुमान से लाई संजीवनी की सुगन्ध से लक्ष्मण के समान पानी के कणों से फिर प्राप्त हुए प्राणों वाला सामने चन्द्रकेतु को देखकर कर विस्मित, मानों जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो, वनवास से लौटे राम ने जैसे भरत को उसी प्रकार उसने भाई को छाती से लगा लिया। इस समागम को देख कर सूरज ने आकाश में कुछ क्षणों के लिये अपना रथ रोक लिया।

पुष्पवृष्टिमकुर्वन् । उभौ सहोदरौ विस्मृतात्मानाविव पृष्ठाभ्यां भुजौ वारयितुं न प्राभवताम् । तयोर्नेत्रनिःसृताश्रुधारया तत्स्थलं सततमेघवर्षणेनेव पंकिलताम-यात् ।

हर्षातिरेकपुलकितकायः सूर्यकेतुरनुजं प्राह—"चन्द्रकेतो ! त्वमत्र कथं प्राप्तः । केन मार्गः प्रदर्शितः। कानि कष्टानि सोढान्यध्वनि[1] । पित्रोश्च किं वृत्तम् ।" चन्द्रकेतुरुवाच "भ्रातः! भवदारोपितधान्यवाटिका षड्वर्षपुरातना-ऽनावृष्टौ शस्यमिवाशुष्यत् । ततो भवन्तं विपद्ग्रस्तं विज्ञाय भवद्वियोगाकुल-मातृपितृलब्धानुज्ञः परित्यक्तराजप्रासादस्तुरंगममिममारुह्य भास्करप्रकाश-मण्डितां प्राग्दिशं प्राचलम् । वनाद् वनं परिभ्रमन्नगस्त्याश्रमे गौतममुनिं प्राप्तो भवतो वृत्तमपृच्छम् । मुनिर्निमीलितनयनो भालन्यस्ततर्जनीकः कतिचित् क्षणान् ध्यात्वा प्राह—"भवदग्रजः षण्मासान्पूर्वं कापालिकमेकमनुधावन्नितो-निर्गतो न प्रतिनिवृत्तः । पश्चिमोत्तरराज्ञो भद्रसेनस्य दुहित्रा स्वयंवरवृत-एतस्मिन् समये उत्तरस्यां निर्जनवनतडागतटे मूर्छितस्तिष्ठति" । तद्वचन-श्रवणविकलोऽहं घटिकाद्वयं[2] विश्रमार्जितबलं हयमेनमारुह्य भयदकाननानि विगाहमान एकस्यां गुहायां शुकमेकमपश्यम् । भ्रातृसमः सः शुको मां भद्रसेनस्य राज्ञो नन्दनोद्यानमनैषीत् । तत्राहं रात्रिमेकामुषित्वा चंचरीकसहायोऽत्र प्राप्तः"। सूर्यकेतुर् मनस्यचिन्तयत्—"एनं तमेव शुकमवबुध्ये, कापालिकात् कृतजीवनरक्षणं यमहं कृतघ्न इव सहादातुं व्यस्मरम् । कदाचित्स्खलनान्यपि [3]दैवमिव शुभं फलन्ति । चेदहं [4]कीरं समानेष्यं, चन्द्रकेतुर्मामाप्तुं क्षमो नाभविष्यत् ।"

एतदनन्तरं प्रस्थातुकामस्वामिनोर्मनोभावं विज्ञाय समीरण-चंचरीकौ विशालं शाद्वलक्षेत्रं विहाय तौ वाहयितुं ह्लेषमाणौ

1. अध्वनि मार्गे ।
2. विश्रमेति—विश्रमेण अर्जितं पुनः प्राप्तं बलं येन तम् । स्खलनं--प्रमादः ।
3. दैवं—भाग्यम् ।
4. कीरं –शुकम् ।

यक्ष फूल बरसाने लगे। दोनों भाई मानों जैसे अपने आप को भूल ही गये हों, एक दूसरे की पीठ से अपनी भुजाओं को हटाने में समर्थ न हो रहे थे। उन के नेत्रों से निकली अश्रुधारा से वह स्थान लगातार बादल के बरसने से जैसे कीचड़ वाला हो गया।

परम प्रसन्नता से रोमांचित शरीर वाला सूर्यकेतु छोटे भाई को बोला —"चन्द्रकेतु, आप यहां कैसे आए। किस ने रास्ता दिखाया। रास्ते में कौन-कौन से कष्ट झेले। माता-पिता कैसे हैं। चन्द्रकेतु बोला—"भाई जी, आप से लगाई धान्यवाटिका छः वर्ष के बाद वर्षा न होने पर खेती के समान सूख गई। तब आप को संकट में पड़ा जान कर आप के वियोग से व्याकुल माता-पिता की आज्ञा पा कर राजमहल को छोड़कर इस घोड़े पर चढ़ कर सूर्य के प्रकाश से सजी पूर्व दिशा को चल पड़ा। वन-वन में घूमता हुआ मैं गौतम मुनि के आश्रम में पहुंच गया और उस से आप का समाचार पूछा। मुनि आंखें बन्द करके मस्तक पर तर्जनी रख कर कुछ क्षण ध्यान करके बोला— "आप का बड़ा भाई छः महीने पहले एक कापालिक का पीछा करता हुआ यहां से चला गया था। अब तक लौटा न है। पश्चिमोत्तर के राजा भद्रसेन की राजकुमारी ने स्वयंवर में उसके गले में जयमाला पहनाई थी। इस समय वह उत्तर दिशा में सुनसान वन में तालाब के किनारे मूर्छित पड़ा है"। उस का वचन सुन कर व्याकुल हुआ मैं दो घड़ी विश्राम से फिर प्राप्त की हुई शक्ति वाले घोड़े पर चढ़ कर जंगल से जंगल में घूमता हुआ एक गुफा में जा पहुंचा और उस में एक तोते को देखा। भाई जैसा वह तोता मुझे भद्रसेन राजा के नन्दनोद्यान में ले गया। वहां एक रात बिता कर मैं चंचरीक की सहायता से यहां पहुंच गया"। सूर्यकेतु मन में सोचने लगा—"यह वही तोता होगा जिसने कापालिक से मेरे जीवन की रक्षा की थी और मैं एक कृतघ्न के समान उसे साथ लाना भूल गया था। कभी-कभी भूलें भी भाग्य के समान अच्छा फल देती हैं। यदि मैं तोते को ले आता तो चन्द्रकेतु मुझे प्राप्त न कर सकता था।"

इसके बाद चलने की इच्छा वाले मालिकों के मन के भाव को जान कर समीरण और चंचरीक हरे-भरे घास वाले विशाल क्षेत्र को छोड़ कर उन्हें सवारी देने के लिये हिनकते हुए वहां आ गए।

तत्रोपतस्थतुः । चिरवियोग[1]संचितविपुलस्नेहासिक्तमानसौ स्वीयं स्वीयं तुरंगममारुह्य प्रतिमां द्रष्टुं नन्दनोद्यानं प्रति प्रचेलतुः । मार्गपादपास्तयोः सत्काराय पुष्पाण्यवाकिरन् । पुण्यो वातस्तौ स्प्रष्टुमिव[2] मन्थरं प्राचलत् । पूरितपंचाशत् क्रोशाध्वानौ श्रान्तवाजिनौ विश्रामयितुं[3], गृध्नुभूमिपतेरिव समधिकतमधरातले स्वीयाधिकारज्ञापनायेव वृहद्विस्तारमावहतः, पातालरहस्यं ज्ञातुमिव भूतलप्रवेशितशिफाशतस्य,[4] श्वशुरकुलप्रयाणाभिमुखप्रसारितभुजकन्याभिः मातुरिव विविधलताभिरालिङ्गितस्कन्धस्य,[5] पार्थाय विराटरूपप्रदर्शनपरायणकृष्णस्येव शाखासहस्रबाहुवतः, दिवाकररथवाजिनां सुखगमनायेव नभसि दूरं प्रसारितपत्रस्य श्रेष्ठगृहस्थस्येव दिग्दिगन्तागतविहगसाधुजनाश्रयस्य, गुर्वर्जुनपाकशालाया इवाभेदं सर्वसुलभफलाहारस्य, दिग्विजयेप्सुराज्ञ इव सर्वतोदिशं प्रसारितस्कन्धवाहोः,[6] शरणागतानां वृष्ट्यातपवारणाय छत्रमातन्वतः, सिद्धार्थं बोधयितुं प्ररूढापरबोधिवृक्षस्येव वटवृक्षस्य सुमधुरछायायामासनं भेजतुः ।

अवतारितपृष्ठास्तरणौ-उन्मुक्तकविकौ समीरणचंचरीकौ श्रमवारणाय यौगिकविधिमिवाश्रित्योर्ध्वीकृतपादौ पृष्ठभारेण मुहुर् मुहुर् भुवि लुंठन्तावपगतक्लमौ शाद्वलं चरितुमारभेताम् । लूनसस्यः क्षेत्रतरुछायाश्रितकृषक इव, विश्वविद्यालयान्तिमपरीक्षोत्तीर्णछात्र इव, वर्षतौं-उत्तालतरंगसरित्पारंगतनाविक इव, शत्रुशिविरे बमवर्षणमनु स्वसीमां प्रत्यागतनभःसैनिक इव, अन्तिमश्वासमावहतो रोगिणः कृतसफलचिकित्सः कुशलवैद्य इव समाश्वसितमानसो भ्रातृप्रेमाविष्टः स्वस्मिन्ननुजभावमावहंश्चन्द्रकेतुः काकतालीयन्यायेन वायसाधिष्ठितशाखातलगतं सूर्यकेतुमुवाच—"ममाग्रज, नः

---

1. चिरवियोगेन संचितो विपुलः स्नेहस्तेनासिक्तं मानसं ययोस्तौ ।
2. मन्थरं—मन्दगत्या ।
3. गृध्नुभूमिपतेः —लोभवतः भूमिपतेः ।
4. शिफाशतस्य-जटाशतस्य ।
5. स्कन्धः—अंसः प्रकाण्डश्च । "स्कन्धः स्यान्नृपतावंसे संपरायसमूहयोः । काये तरुप्रकाण्डे च भ्रात्रादौ छन्दसो भिदि" (इत्यमरः) ।
6. स्कन्धाः शाखा एव बाहवो यस्य तस्य ।

चिरकाल के वियोग से इकट्ठे हुए प्यार से भीगे मन वाले अपने-अपने घोड़े पर चढ़ कर प्रभा को देखने के लिये नन्दनोद्यान को चल पड़े। रास्ते के पेड़ उन के सत्कार के लिये फूल गिराने लगे। पवित्र वायु मानों उन को छूने के लिये धीरे-धीरे चलने लगा। पचास कोस चलने के बाद थके हुए घोड़ों को विश्राम देने के लिये, लालची भूमिपति के समान ज्यादा से ज्यादा धरती पर मानों अपना अधिकार जताने के लिये ही बड़े विस्तार को धारण करने वाले, मानों पाताल का रहस्य जानने के लिये ही भूतल में प्रवेश की हुई सैंकड़ों शाखाओं वाले, ससुरकुल को जाने के लिये तैयार फैलाई हुई भुजाओं वाली कन्याएं जैसे अपनी माता के कंधों से मिलती हैं उसी प्रकार अनेक लताओं से आलिंगित तने वाले, अर्जुन को विराट रूप दिखाने वाले कृष्ण के समान शाखा रूपी हज़ारों बाहुओं वाले, सूरज के घोड़ों के लिये मानों सुख से चलने के लिये दूर तक फैलाए पत्रों वाले, अच्छे गृहस्थी के समान दिग्दिगन्त से आने वाले पक्षी रूपी साधुजन को आश्रय देने वाले, गुरु अर्जुनदेव के लंगर के समान बिना भेद-भाव के सब के लिये सुलभ फलाहार वाले, दिग्विजय की इच्छा वाले राजा के समान सब ओर फैलाई हुई शाखा रूपी बाहुओं वाले, शरण में आए हुए लोगों के बर्षा और धूप के निवारण के लिये छतरी का काम देने वाले, सिद्धार्थ को ज्ञान देने के लिये उगे हुए मानों दूसरे बोधिवृक्ष के समान बड़ के पेड़ की छाया में बैठ गये।

उतारी हुई काठी वाले, खोली लगाम वाले समीरण और चंचरीक थकावट दूर करने के लिये मानों यौगिक विधि का सहारा लेकर ही ऊंचे पैर कर के पीठ के भार से बार बार धरती पर लोटते हुए दूर हुई थकावट वाले हरा घास चरने लग गये। खेती काटने के बाद खेत के पेड़ की छाया में बैठा हुआ किसान जैसे, यूनीवर्सिटी की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र के समान, वर्षा ऋतु में ऊँची लहरों वाली नदी के पार पहुंचे हुए मल्लाह के समान, शत्रु के कटक पर बम वर्षा कर के अपनी सीमा में लौटे हुए नभ सैनिक के समान, अन्तिम श्वास ले रहे रोगी की सफल चिकित्सा करने वाले कुशल वैद्य के समान आश्वस्त मन वाला, भाई के प्रेम से भरा हुआ, अपने में छोटे भाई के भाव को धारण करने वाला चन्द्रकेतु, काकताली न्याय से ऊपर बैठे कौए वाली शाखा के नीचे बैठे हुए सूर्यकेतु को बोला—"बड़े भाई, हमारी संस्कृति में

संस्कृतौ पत्न्या सहैकपात्रे भोजनं न प्रशस्तम् ।" एतन्निशम्य सूर्यकेतुर् मनस्य-चिन्तयत्—"अयमेतद्रहस्यं कथं बुध्यते । किमेषः प्रतिभां दृष्ट्वात्र समायातः ? किमावयोः समरूपतयैनं पतिमेव विजानती प्रतिभानेन सहैकपात्रे भुक्तभोजना ? नायं विश्वस्यः ।" एवं काकछायाप्रभावेणेव मानवस्वभावदौर्बल्यं तद्धृदयं[1] कृकलासः पतंगमिव, सर्पो मण्डूकमिव, वकुलो मत्स्यमिव जग्राह । ततोऽभाषत—'अहमेकस्याल्यां भार्यया सह विहितभुक्तिस्तवैतज्ज्ञानं कुतः । किमेकरूपता-भ्रान्तया तया सह त्वमपि तथाचरः ? कथं त्वयि विश्वासमावहेयम् । देहि स्व-चरितपरीक्षाम् ।" अनास्वादितेऽप्यधरयोरुच्छिष्टसंगमिवानुभवँश्चन्द्रकेतुर् मायामृगं मारीचमनु रामे गते[2] मैथिलीवचोबाणविद्धलक्ष्मण इव खिन्नो मनस्य-चिन्तयत्—"अग्रजः परीक्षितुकामो माम् । अनिवारितसंशयो नाहमेतेन सार्धं प्रतिभाप्रासादं प्रयास्यामि । अनलतापतप्तकांचनवदमलचरितप्रस्तुतिं विना नेतो मया पदमपि प्रस्थातव्यम् । बाल्यकालशिक्षितो योगः क्षुधितस्य भोजनमिव, मलावृतदेहस्य जलस्नानमिव, तमोवारणाय दीपज्योतिरिवाद्य मे सहायकः स्थास्यति । योगबलेनाहं प्राणाँस्त्यक्ष्यामि ।" एवं विचिन्त्य सोऽसून्नि-यम्य समाधिलीनो मृत इवाजायत । एतदवस्थावर्तमानचन्द्रकेतुसमलंकृतधरातल-वटवृक्षः पद्मासनस्थं बुद्धं धारयतो गयाबोधिवृक्षस्य दृश्यमुपास्थापयत् । वनदेवताः "चन्द्रकेतु र्धन्यो धन्य" इत्यवदन् । अध्ययनप्रेरणायै कपोलचपेटध्वस्तदन्तं सरुधि-रमुखं सुतं निरीक्ष्य पितेव पश्चात्तापानलसंतप्तः सूर्यकेतुर् वनदेवताकृतैश्चन्द्रकेतु-धन्यवादैर् विगतार्धभ्रान्तिरसत्यसंशये भार्यायै विषं प्रदाय तद्विरहाकुलपति-

1. कृकलास इति—कृकं शिरो ग्रीवां च लासयतीति कृकलासः गिरगिटाख्यः । "सरटः कृकलासः स्यान्मुशली गृहगोधिका ॥ (इत्यमरः) ।
2. मैथिली-सीता ।

पत्नी के साथ एक पात्र में भोजन करना ठीक न होता है"। यह सुनकर सूर्यकेतु मन में सोचने लगा—"यह इस रहस्य को कैसे जानता है। क्या यह प्रतिभा को देखकर यहां आया है? क्या हमारी समरूपता के कारण इस को पति समझ कर प्रतिभा ने इस के साथ एक ही पात्र में भोजन किया है? यह विश्वास के योग्य न है"। इस प्रकार कौए की छाया के प्रभाव से ही मानव-स्वभाव की दुर्बलता ने उस के हृदय को, किरला जैसे पतंगे को, सांप जैसे मेंडक को, बगुला जैसे मछली को पकड़ता है उसी प्रकार दबोच लिया। फिर बोला—"मैंने अपनी भार्या के साथ एक थाली में भोजन किया है, आप को यह ज्ञान कैसे हुआ। क्या एकरूपता की भ्रान्ति में तुम ने भी उसके साथ वैसा किया है? मैं तुझ पर विश्वास कैसे कर सकता हूँ। तुम्हें अपने चरित्र की परीक्षा देनी होगी"। बिना खाये ही होठों को जूठन लगने के समान अनुभव करता हुआ चन्द्रकेतु मायामृग मारीच के पीछे राम के चले जाने पर सीता के वचन-बाणों से बिधे हुए लक्ष्मण के समान खिन्न हुआ मन में सोचने लगा—"बड़ा भाई मेरी परीक्षा लेना चाहता है। इस का संशय निवारण किये बिना मैं इस के साथ प्रतिभा के महल को न जाऊंगा। आग की आंच में तपे सोने के समान निर्मल चरित्र दिखाये बिना मुझे यहां से एक पैर भी आगे न जाना चाहिये। बाल्यकाल में सीखा हुआ योग भूखे को भोजन के समान, मैले शरीर को जलस्नान के समान, अन्धेरे को दूर करने के लिये दीपक की ज्योति के समान आज मेरा सहायक सिद्ध होगा। मैं योगबल से प्राणों का त्याग कर दूंगा"। इस प्रकार सोच कर वह प्राणों का नियमन करके समाधि में लीन मृत जैसा हो गया। इस अवस्था में वर्तमान चन्द्रकेतु से सजे धरातल का वटवृक्ष पद्मासन में बैठे बुद्ध को धारण करने वाले गया के बोधिवृक्ष के समान दृश्य को दिखाने लगा। वनदेवता "चन्द्रकेतु धन्य-धन्य है" ऐसा बोलने लगे। पढ़ने की प्रेरणा के लिये गाल पर लगाई चपत से टूटे दान्त वाले, रुधिर बहते पुत्र के मुखड़े को देख कर पिता के समान पश्चात्ताप की आग से संतप्त सूर्यकेतु वनदेवताओं द्वारा किये गये चन्द्रकेतु के धन्यवाद से दूर हुई आधी भ्रान्ति वाला, झूठे सन्देह में पत्नी को विष देकर उसके वियोग से व्याकुल पति के समान

रिव दुःखितोऽचिन्तयत्-"अहो! एतन्मया किं कृतम्। मां गवेषितुं येन वनस्थलीषु भ्रान्तं, विविधकष्टानि सोढानि येन च [1]विगतासुरहं पुनर्जीवनं प्रापितः स एवानुजो मया निष्प्राणोऽकारि। साम्प्रतमेनं कथं जीवयिष्यामि। ततोऽसौ मेघनादशक्त्या लक्ष्मणे मूर्छिते राम इव विललाप। तं विलपन्तमालोक्य स एव शुकः कुतश्चिदागत्यापठत्—

व्यर्थमेव हतो भ्राता चरिते यस्य नोपमा।
प्रतिभां साम्प्रतं पश्य सर्वं ज्ञातं भविष्यति॥

रुग्ण औषधेनेव शुकवचनेनाश्वस्तमनाः सूर्यकेतुर् नन्दनोद्यानं प्राचलत्।

प्रासादोपरि पदक्रमं विदधाना प्रतिभा दूरतः समायान्तं सूर्यकेतु-मालोक्यान्तःप्रेरणयेव तं भर्तारं विज्ञाय हर्षविस्फारितलोचना सहसाऽधोऽवातरत्। तस्या मनश्चन्द्रोदये सागरतरंगवदुत्प्लवितुमारेभे। सा नग्नपादैवाग्रतो गता तस्य कण्ठे सुगन्धितप्रसूनगुम्फितमालामधारयत्। परमपरस्मिन्नेव क्षणे तमेकलं समीक्ष्य रोदितुमारेभे। रामे वनं गते कौशल्यामिव विलपन्तीं तां विलोक्य सूर्यकेतुरवादीत्—"प्रिये! चिराद्वियुक्तोऽहं भाग्ययोगात्प्रासादे पदमधारयम्। त्वमेवं दीनेव विलपसि। किमेतत्कारणम्"। "अतुल्यचरितो जितेन्द्रियो मे देवरो-न नयनगोचरः" एवं भाषमाणप्रतिभायाः कण्ठोऽवरुद्धः सा च मूर्छिता भूमौ न्यपतत्। प्रमादात्तक्रं निपीय पश्चात्तापान्वितसन्निपातरोगीव सूर्यकेतुः कतिचित् क्षणेभ्यः कार्याकार्यनिर्धारणाक्षमोऽजायत। ततः प्रतिभामुखे जलबिन्दून् निपात्य चैतन्यमाप्तां तामवदत्—"प्रिये! किमर्थं [2]विजहासि धैर्यम्। स्वमनोगतं ब्रूहि। अहं त्वदर्थं सकलधरणीं विजित्य दातुमुत्सहे। मयि स्थिते न किमपि [3]तेऽप्राप्यम्"। ततः प्रतिभा रुदती विलपन्ती पतिं

1. विगतासुः-गतप्राणः।
2. विजहासि-त्यजसि।
3. अप्राप्यम्-अलभ्यम्।

दुखित हुआ सोचने लगा—"अरे, यह मैंने क्या कर दिया। मुझे ढूंढने के लिये जो बनों में भटका, अनेक प्रकार के संकट झेले और जिसने निष्प्राण हुए मुझ को फिर जीवन दिलाया उसी छोटे भाई को मैंने प्राणहीन कर दिया। अब इस को मैं कैसे जीवित करूंगा।" फिर वह मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम के समान विलाप करने लगा। उस को बिलाप करता हुआ देखकर वही तोता कहीं से आकर बोला :—

चरित्र में जिस की उपमा न है ऐसे भाई को आप ने व्यर्थ ही मार दिया। अब जा कर प्रतिभा से मिलिये। आप को सब कुछ प्रतीत हो जाएगा" रोगी औषध से जैसे तोते के वचन से आश्वस्त मन वाला सूर्यकेतु नन्दनोद्यान को चल पड़ा।

महल के ऊपर आराम से घूमती हुई प्रतिभा दूर से आते हुए सूर्यकेतु को देखकर अन्दर की प्रेरणा से ही उसे पति जान कर प्रसन्नता से फैले नेत्रों वाली जल्दी नीचे उतर आई। उस का मन चांद के निकलने पर समुद्र की लहरों के समान उछलने लगा। वह नंगे पैर ही आगे दौड़ गई और उसके गले में सुगन्ध वाले फूलों से बनाई माला को पहना दिया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अकेला देख कर रोने लग पड़ी। राम के वन जाने पर कौशल्या के समान विलाप करती हुई उस को देख कर सूर्यकेतु बोला—"प्रिये, चिरकाल से बिछुड़ा हुआ मैं भाग्ययोग से महल में पहुंचा हूं। तुम इस प्रकार दीन हुई विलाप कर रही हो, इस का क्या कारण है" "अनुपम चरित वाला जितेन्द्रिय मेरा देवर न दिखाई दे रहा है" इस प्रकार बोलती हुई उसका गला रुक गया और वह मूर्छा खा कर धरती पर गिर गई। भूल से छांछ पी कर पश्चात्ताप में पड़े सन्निपातरोगी के समान सूर्यकेतु कुछ क्षणों के लिये अपना कर्तव्य न सोच सका। फिर प्रतिभा के मुख में पानी की बूंदे गिरा कर चेतना में आई उस को बोला—"प्रिये, धीरज क्यों छोड़ रही हो। अपने मन की बात बताओ। मैं तेरे लिये सारी धरती जीत कर दे सकता हूं। मेरे होते हुए कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जो तुम्हें न मिल सके।" तब रोती और विलाप करती हुई प्रतिभा ने पति को

चन्द्रकेतोश्चन्द्रधवलं सकलचरितमवागमयत् । अशान्तवृश्चिकदंशव्यथ:[1] सर्पदष्ट इव द्विगुणपीडाकुल: सूर्यकेतुरवादीत्—"प्रिये ! ममैव प्रमादाद्विवाह-मंगले प्रियजनस्य मरणादिव ते सुखे विघ्नोऽयमुपस्थित: । साम्प्रतं मे कर्तव्यं भण । अहं तवादेशं पालयिष्यामि ।" प्रतिभा प्राह—"यावन्मे देवरो न प्रत्यागतप्राणो नाहमन्नोदकं ग्रहीष्यामि । मां भवाँस्तत्रैव प्रापयतु यत्र मे देवरो-निष्प्राणो भूतलमलङ्कुरुते ।"

प्रतिभाप्रतिज्ञाभीत: सूर्यकेतुस्तां तस्यैव वटवृक्षस्याधस्तादनयत् । देवरं गतासुमालोक्य सा विलपितुमारेभे । तस्याश्चीत्कारैर्न केवलं चैतन्य-प्राणिनोऽपि त्वचेतना अपि धैर्यं तत्यजु: । भास्करायार्घ्यं प्रददानवनदेवताहस्ता-दर्घ्यपात्राणि भूमावपतन् । धेनुभ्यो घासाहरणपरायणावलामनसोऽस्थिरतया कंटकाविद्धकरांगुलिरुधिरबिन्दवो विलपन्त्या अश्रुभि: सहयोगमिवाकुर्वन् । मृग्योऽर्धभक्षितग्रासं मुखे धारयन्त्यो निगलितुं नाशक्नुवन् । गजा: सिंहाश्च विस्मृतवैरा इव स्तंभितपादा अभूवन् । स्तन्यपानविरता गजकलभा[2] दुग्धफेनमुद्गिरन्त ऊर्ध्वकर्णा: क्रन्दनध्वनिमाकर्णयन् । वटवृक्ष: पत्रप्रच्युततुषार-बिन्दुमिषेण प्रतिभासहानुभूतिमिवादर्शयत् ।

अथ कैलाशशिखरस्था संसृतौ पातिव्रत्यप्रचारिणी[3] त्रिपुरारिमाप्तुमनावृ-तेऽपर्णव्रतै: शरीरशोषणप्रस्तुतादर्शा[4] कुमारीमनोरथकल्पद्रुमा, सुभगसौभाग्य-वर्धिनी-अबलाबलदायिनी दीनार्तिहारिणी पतिव्रतानां देवता पार्वती महादेव-मुवाच – "भगवन् । मर्त्यलोकभ्रमणायाधीरं मे मनो न सहते कालातिक्रमम् । अनुकूलोऽयं समय: प्रस्थानस्य । महादेव: प्रत्यवदत्-"प्रिये । अनपराधं संकटपतित-विबुधविपदोहरणप्रसङ्गेऽद्य ब्रह्मप्रमुखा इन्द्रादयो देवा मंत्रयितुमत्रागमिष्यन्ति । स्वयं

1. वृश्चिकेति—वृश्चतीति वृश्चिक: "बिच्छू" इत्याख्य: ।
"वृश्चिक: शूककीट: स्यादलिद्रुणौ तु वृश्चिके" (इत्यमर:)
2. कलभा इति—कलं भाषते इति कलभ: । "कलभ: करिशावक:" इत्यमर: ।
3. त्रिपुरारि-महादेवम् ।
4. कुमारीणां मनोरथस्य कल्पद्रुमा पूरयित्री ।

चन्द्रकेतु के चन्द्रमा के समान सफेद सारे चरित्र को बता दिया। अभी बिच्छू के डंग की पीड़ा दूर ही न हुई ही और जिसे ऊपर से सांप भी डंस दे ऐसे मनुष्य के समान दुगुनी पीड़ा से व्याकुल सूर्यकेतु बोला—"प्यारी मेरी ही भूल से विवाह मंगल में किसी प्रियजन के मर जाने से जैसे तुम्हारे सुख में यह विघ्न पैदा हुआ है। अब मुझे जो कुछ करना है वह बताओ। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा"। प्रतिभा बोली—"जब तक मेरा देवर जीवित न हो जाता है, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगी, आप मुझे वहीं पर ले चलिये जहां मेरा मृत देवर धरती को विभूषित कर रहा है"।

प्रतिभा की प्रतिज्ञा से डरा हुआ सूर्यकेतु उसे उसी वट वृक्ष के नीचे ले गया। देवर को मरा हुआ देख कर वह विलाप करने लगी। उस की चीखों से केवल चेतन प्राणी ही नहीं बल्कि अचेतन भी धीरज छोड़ने लग पड़े। सूर्य को अर्घ दे रही वन देवताओं के हाथों से अर्घ्य-पात्र धरती पर गिरने लगे। गौओं के लिये घास काटने में लगी महिलाओं के मन के अस्थिर हो जाने से कांटों से बिंधी हाथ की उँगलियों से निकलने वाले खून के बिन्दु मानों विलाप करती हुई के आंसुओं से सहयोग जैसा करने लग पड़े। हिरणियां आधे खाये ग्रास को मुंह में धारण करती हुई निगलने में असमर्थ हो गईं। हाथी और शेर मानों अपने वैर को भूल कर निश्चल पैरों वाले हो गये। दुग्धपान से हटे हुए हाथी के बच्चे झाग को गिराते हुए ऊँचे कान कर के चीखने की आवाज़ को सुनने लगे। बड़ का पेड़ पत्तों से गिर रहे ओस के बिन्दुओं के बहाने प्रतिभा से सहानुभूति दिखाने लगा।

इस के बाद कैलास के शिखर पर बैठी, संसार में पतिव्रत धर्म का प्रचार करने वाली, महादेव को पाने के लिये खुले आकाश में पत्रभक्षण से भी रहित व्रतों से शरीर को शोषित करने के आदर्श को प्रस्तुत करने वाली, कुमारियों के मनोरथ को पूरा करने में समर्थ, सौभाग्यवती स्त्रियों के सौभाग्य को बढ़ाने वाली, अबलाओं को बल देने वाली, दीन लोगों की पीड़ा को दूर करने वाली, पतिव्रताओं की देवता पार्वती महादेव को बोली—"भगवन, मर्त्यलोक के भ्रमण के लिये अधीर मेरा मन अब समय के उलंघन को सहन न करता है। चलने के लिये यह अच्छा समय है। महादेव ने उत्तर दिया—"प्रिये, निरपराध देवताओं के द्वारा भोगे जा रहे संकट के बारे में आज ब्रह्मा सहित इन्द्र आदि देवता सम्मति करने के लिये यहां आएँगे।

भगवद्विष्णुनाऽभ्यर्थितोऽहं तान् सभाजयितुम् । अतः श्वः परश्वो वा यास्यावः"। पार्वती पुनरवादीत्—"नहि स्वामिन् । अद्यत्वे मर्त्यलोके लुप्तचरितमलिनात्मजनाः कामेप्सापूर्तिमेव जीवनलक्ष्यं मन्यन्ते । विरला एव केचिदाचरणपरायणाः । चेत्तेषामपि रक्षणं न स्यात्तदा तत्र महत्यव्यवस्थोदेष्यति । एवं च नाकलोकवासिनां[1] जीवनमपि दुर्भरं स्थास्यति । अनुपमाचरणालंकृतदेवरं पुनरुज्जीवयितुं वटवृक्षाधः क्रन्दन्त्याः पतिव्रतायाः कर्णकुहरपतितो विलापो मन्थनीप्रक्षिप्तं दधि मन्थानं यथा मथ्नाति मे हृदयम् । दक्षयज्ञे भवदपमानप्रताडिताया इव दूयते मे चेतस्तस्या : क्रन्दनेन । नाहं क्षणमपि प्रतीक्षितुमुत्सहे । तस्या देवरोऽवश्यं जीवनं प्रापणीयः । देवापन्निराकरणसमित्यायोजनं दिवसमात्राय स्थगितीकृत्य प्रथमं ममाग्रहं पूरयन्तु भवन्तः सानुग्रहम् ।" महादेवोऽभाषत—"प्रिये ! मर्त्यलोके जनाः कूपयंत्रघटिकान्यायेन केचिद्रिक्तहस्ता अपरे च समृद्धाः स्वकर्मवशाद् दुःखानि सुखानि वा भुञ्जाना रुदन्ति हसन्ति च । ततश्च पूर्वजन्मार्जितपुण्यैः सुनिश्चितं वयः प्रभुज्य यमपुरं प्रयान्ति । जन्ममरणे मानवसंचितकर्माश्रिते । एतयोः परिवर्तनं न सुकरम् । कुसुमादपि कोमलं ते चेतो विचलति मुधा सामान्यविषयेषु" । पार्वती पुनरवदत्—"नहि नाथ, नाहं[2] प्राकृतजनवद् देवेभ्यो बाधामुपस्थापयामि । भवतां शक्तिस्त्रिलोकविदिता, देवपादानां पुरतो न किमपि दुष्करं, नागम्यं न चागोचरम् । ममेप्साऽपूरणे नाहमन्नं ग्रहीष्यामि ।"।

ततो देवानां प्रवरो भुवनत्रयसृष्टिस्थितिप्रलयनिमित्तं प्रसादे मनोऽभीष्टवरप्रदः कोपे सर्वानिष्टकरो लोकमंगलनिपीतविषो नीलकण्ठः पार्वत्या हठयोगं स्मरँस्तृतीयनेत्रेण चन्द्रकेतोर्लोकानुकरणीयचरितमवबुध्य डमरुनादेन गणानाह्वयत् । ते क्षणेष्वेवा[3]नूरुर्भास्करमिव शिवदम्पती घटनास्थलं प्रापयामासुः । प्रतिभा पार्वतीनयनयोः करुणासूचकसलिलं समीक्ष्य 'एषैव संकटादुद्धरिष्यती' ति विचिन्त्य शाखासंस्रस्तलता पादपमूल-

1. नाकेति – न अकं दुःखं यत्रासौ नाकः स्वर्गः ।
2. प्राकृतेति—प्राकृतजनवत्—सामान्यलोकवत् ।
3. अनूरुः—अविद्यमानौ ऊरू यस्यासौ अनूरुः सूर्यसारथिः । "सूर्यसूतोऽरुणोऽनूरुः" (इत्यमरः) ।

स्वयं भगवान विष्णु ने उनका सत्कार करने के लिये मुझ से प्रार्थना की है। इस लिये कल या परसों चलेंगे।" पार्वती फिर बोली—"नहीं पतिदेव, आजकल मर्त्यलोक में चरित्रहीन मलिन आत्मा वाले लोग कामवासना को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। कुछ बिरले ही आचरण वाले हैं। यदि उन की भी रक्षा न हो तो वहां बड़ी भारी अव्यवस्था हो जायेगी और इस प्रकार स्वर्गलोक में रहने वालों का जीना भी कठिन हो जायेगा। अनुपम चरित्र वाले देवर को पुनः जीवित करने के लिये बड़ के पेड़ के नीचे चीखती हुई पतिव्रता का कानों में पड़ा विलाप चाटी में डाले दही को मथानी के समान मेरे हृदय को मथ रहा है। उसकी चीखों से दक्षयज्ञ में आपके अपमान से प्रताडित हुई का जैसे मेरा मन दुखी हो रहा है। मैं एक पल भर भी प्रतीक्षा न कर सकती हूं। उस के देवर को अवश्य जीवित करना है। देवताओं की आपत्ति के निराकरण के लिये बुलायी गई सभा के आयोजन को एक दिन के लिये स्थगित करके पहले कृपा करके आप मेरे ही आग्रह को पूरा करें।" महादेव बोला—"प्रिये, मर्त्यलोक में लोग कूपयंत्रघटिका के न्याय से कई खाली हाथ और कई समृद्ध होते हुए अपने कर्मवश से दुख और सुखों को भोगते हुए रोते हैं और हंसते हैं। फिर पूर्वजन्म के पुण्यों से निश्चित आयु को भोग कर यमलोक को चले जाते हैं। जन्म और मरण मनुष्य के कमाए कर्म पर आश्रित हैं। इन में परिवर्तन करना संभव नहीं। फूल से भी कोमल तुम्हारा मन व्यर्थ ही सामान्य बातों पर विचलित हो जाता है" पार्वती फिर बोली—"नहीं 'पतिदेव, मैं साधारण मनुष्य के समान आप को बाधा न पहुंचाती हूं। आपकी शक्ति को तीनों लोक जानते हैं। आप के लिये न कुछ करना कठिन है, न अगम्य है और न ही आप से कुछ छिपा हुआ है। यदि आप मेरी इच्छा को पूरा न करेंगे तो मैं अन्न न खाऊंगी।"

फिर देवताओं में श्रेष्ठ तीनी लोकों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के निमित्त, प्रसन्नता में मनचाहा वर देने वाले, क्रोध में सब का अनिष्ट करने वाले लोगों की भलाई के लिये विषपान करने वाले नीलकंठ महादेव ने पार्वती के हठयोग को याद करते हुए, तीसरे नेत्र से चन्द्रकेतु के लोगों से अनुकरणयोग्य आचरण को देखकर डमरुनाद से गणों को बुलाया। उन्होंने कुछ ही क्षणों में अनूरु सूर्य को जैसे शिव-पार्वती को घटनास्थान तक पहुंचा दिया। प्रतिभा पार्वती के नेत्रों में करुणासूचक जल को देखकर 'यही संकट से उद्धार करेगी।" ऐसा सोच कर शाखा से छूटी बेल पेड़ के मूल में

इव तस्याः पादयोरपतत् । महादेवः पार्वतीङ्गितं विज्ञाय जटाजूटस्थजाह्नवीसलिलबिन्दुभिश्चन्द्रकेतुमभ्युक्ष्य प्रत्यागतप्राणं विधायाक्षिनिमेषेणैव क्षितिजे प्रभया सह प्रभाकरो यथा [1]सोमोऽन्तर्दधे । चन्द्रकेतुः शय्याया इवोत्थाय प्रथमं प्रतिभां ततश्चाग्रजं सचरणस्पर्शं प्रणनाम । सूर्यकेतुरेतादृशचरितवति भ्रातरि संशयापन्नताग्लानिभारेण पवनेन तृणवन्नतः संजीवन्या लक्ष्मणे जीविते दाशरथिरिव प्रसन्नचेताश्चन्द्रकेतुं वक्षसाऽऽलिङ्गत् । कौतुकार्थं समायातवनकिन्नराएतत्सर्वं निरीक्ष्य हर्षपूरितमानसा गायन्तो नृत्यन्तश्च तेषां जयघोषमकुर्वन् । प्रतिभाविलापसन्तप्तवनं पार्वतीपादपूतं शम्भुजटाविराजमानजह्नुतनयास्यन्दमानजलकणैरहर्निशं वर्षन्मेघधाराभिरिव शान्ततामयात् ।

ततो लङ्कायाः सरामलक्ष्मणसीताऽयोध्यामिव गौरवान्वितप्रतिभा वनस्थल्या भर्तृदेवराभ्यां समं नन्दनोद्यानं प्रतस्थे । उद्यानवासिनोऽधिगतहर्षसमाचारा नन्दिग्रामवासिनो सभरता रामं यथा सोत्कण्ठं प्रतीक्षमाणा मालालंकृतकराः स्वागताय पुरतः प्राव्रजन् । उपवनमाप्तास्ते प्रथमं मालतीं सभाजयित्वा ततो हर्म्यं प्रविविशुः । अधिगतसमाचारौ प्रतिभापितरौ भास्करोदये कमलवद् विकसितमानसौ विविधमंगलानि मानयन्तौ तनयां सभर्तृदेवरां प्रासादमामंत्रयामासतुः ।

अपरेद्युर् द्वारपालः प्रासादान्तः समागत्य प्रतिभामुवाच—"देवि ! महाराजप्रेषिता कौमुदी नाम प्रतीहारिणी भवत्या दर्शनानि कामयते ।" प्रतिभा "प्रवेश्यतामभ्यन्तर" मित्यादिदेश । तस्या बाल्यकालसहचारिणी कौमुदी सख्या भाग्योदयप्रमुदितमानसा प्रेमाश्रुभिः पत्रं सिञ्चतीव प्रतिभाहस्तेऽधारयत् । सापि पत्रमधीत्य भर्त्रा विहितपरामर्शा राजगृहगमनायाग्रिमदि-

1. सोम इति-उमया पार्वत्या सह सोमः ।

जैसे उसके पैरों पर गिर पड़ी। महादेव पार्वती के संकेत को जान कर जटाओं की गंगा के पानी के बिन्दुओं से चन्द्रकेतु को छींटे दे कर पुनर्जीवित करके पलमात्र में ही क्षितिज में कान्ति के साथ सूर्य जैसे पार्वती के साथ छिप गये। चन्द्रकेतु ने जैसे सेज से उठकर पहले प्रतिभा को और फिर बड़े भाई के पैर छू कर प्रणाम किया। सूर्यकेतु ऐसे आचरण वाले बड़े भाई पर संदेह करने की ग्लानि के भार से वायु से तिनके के समान झुक गया और संजीवनी के द्वारा लक्ष्मण के जीवित होने पर राम के समान प्रसन्न मन वाले ने चन्द्रकेतु को छाती से लगा लिया। कौतुक के लिये आये हुए वनकिन्नर यह सब देखकर प्रसन्नता से भरे हुए मन वाले गाते नाचते हुए उन का जयकार करने लगे। प्रतिभा के विलाप से सन्तप्त वन पार्वती के चरणों से पवित्र हुआ, महादेव की जटाओं में विराजमान गंगा से झरते हुए जलकणों से दिनरात बरसती हुई बादल की धारा से जैसे शान्त हो गया।

फिर राम-लक्ष्मण के साथ सीता लंका से अयोध्या को जैसे गौरव का अनुभव करती हुई प्रतिभा वनस्थली से पति और देवर के साथ नन्दनोद्यान को चल पड़ी। इस प्रसन्नता के समाचार को पाकर उद्यान में रहने वाले, नन्दिग्राम के निवासी भरत के साथ, राम की जैसे उत्कंठा से प्रतीक्षा करते हुए, मालाओं से सजे हाथों वाले स्वागत के लिये आगे गये। बाग में पहुंच कर उन्होंने पहले मालती का सत्कार किया और फिर महल में प्रविष्ट हो गये। यह समाचार पा कर प्रतिभा के माता-पिता सूर्य के चढ़ने पर कमल के समान प्रफुल्लित हो गये और पति तथा देवर के साथ पुत्री को महल में बुलाया।

दूसरे दिन द्वारपाल महल के अन्दर आ कर प्रतिभा को बोला—"देवी, महाराज से भेजी हुई कौमुदी नाम की द्वारपालिन आप के दर्शन करना चाहती है।" प्रतिभा ने "उसे अन्दर ले आओ" ऐसी आज्ञा दे दी। उस की बाल्यकाल की सहेली, अपनी सखी के भाग्योदय से प्रसन्न मन वाली पत्र को प्रेम के आंसुओं से भिगोती हुई जैसे कौमुदी ने पाती को उसके हाथ पर रख दिया। उस ने पत्र को पढ़कर पति से सलाह करके राजमहल में जाने के लिये अगले दिन को निश्चित कर के

वसं विनिश्चित्य सन्देशवाहिनीं सस्मितं ससम्मानं च प्रेषयामास ।

[1]अन्येद्युः प्रतिभा महाराजप्रेषितं रथमारुह्य समलंकृताश्वारूढभर्तृदेवरानुगम्यमाना[2] संगरलब्धविजया वीरांगनेव स्वप्रभया रथा[3]लङ्कृतिं वर्धयन्तीव राजप्रासादं प्रययौ । राजमार्गमुभयतः समवेतजनाः कुसुमानि विकिरन्तो राजकुमारयो रूपसाम्यताविस्मयाविष्टा अभाषन्त—"अहो ! रूपे एतादृशी [4]इदंता । प्रतीयते यदेकमेव शरीरं वाजिद्वयारूढम् । सार्थकतां गतोऽयं राजमार्गः । युवतयो निर्निमेषनयनाभ्यां तौ पश्यन्त्यः प्रतिभाभाग्यप्रशंसापरा मुग्धा इवाभवन् । महिषी मुख्यद्वारं समागत्यातिक्रयमकरोत् ।

प्रतिभानुजा सुषमा पुष्पवाटिकायां सीता राममिव वातायनाच्चन्द्रकेतुं समीक्ष्य मनस्यचिन्तयत्—"अहो ! अयमपरः सूर्यकेतुः । किं स्वसा मामेतज्जीवनसङ्गिनीं कर्तुं पितृसमक्षं प्रस्तोष्यति ? किमुदेष्यति मे भाग्यमेतच्चरणारविन्दभ्रमरीं विधातुम् ? द्वादशसमा गौरीमाराधयन्त्या यन्मया क्लिष्टं तपस्तप्तं तत्फलं सन्निहितमेवेति संभाव्यते । महाराजेन चन्द्रकेतुरपि जामातृनिर्विशेषमाद्रियत । भोजनमनु कुमारयोर् विश्रमाय निश्चितकक्षप्रविष्टयोर् भद्रसेनो महिषीं प्रोवाच—"प्रिये, प्रतिभाया भाग्ययोगात्प्रतिनिवृत्तः सूर्यकेतुः । रत्नान्यन्वेष्टुं सागरकूर्दिततनयप्रत्यागमने पितराविवावामपि प्रमोदक्षणेषु विचरावः । तनया सुखिनी साम्प्रतम् । जानात्येव भवती तृतीयाश्रमवयःप्रवेशं मे । परं सुषमामनूढां परित्यज्य न सुकरो गृहस्थत्यागः । कन्यापितृत्वं कष्टकरं वदन्ति सुधियः । यतो हि यावद् वराय करग्राहं नोन्मुक्ततामधिगच्छन्ति पितरः कुमारीभाराणाम् । अत एतस्याः परिणयेन विनिवृत्तचिन्तो जामातरि सूर्यकेतौ विन्यस्तराज्यप्रबन्धः पुण्ये वानप्रस्थाश्रमे प्रविविक्षुर्भवामि । प्रतिभाया देव-

---

1. अन्येद्यु :—अपरस्मिन् दिने ।
2. संगरेति-संगरे-युद्धे लब्धो विजयो यया सा संगरलब्धविजया वीरनारीव ।
3 अलंकृति-शोभाम् ।
4. इदंता-—समानता । इदमोभाव इदंता)

सन्देश लाने वाली को मुस्कराहट और आदर के साथ भेज दिया ।

दूसरे दिन प्रतिभा महाराज से भेजे हुए रथ पर चढ़ कर सजे हुए घोड़ों पर सवार पति और देवर के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने वाली वीर नारी के समान अपनी कांति से रथ की शोभा को बढ़ाती हुई जैसे राजमहल को चल पड़ी। राजमार्ग के दोनों ओर इकट्ठे हुए लोग फूल बरसाते हुए राजकुमारों की समरूपता से विस्मित बोलने लगे—"अरे, शकल में इतनी समानता । ऐसा प्रतीत हो रहा है कि एक ही शरीर दो घोड़ों पर सवार है । यह घोड़े धन्य हैं जिन की पीठ को यह अलंकृत कर रहे हैं । इनकी कान्ति से सुशोभित यह राजमार्ग सार्थक हो गया । नारियां अपलक नयनों से उन को देखती हुई प्रतिभा के भाग्य की प्रशंसा करती हुई मोहित जैसी हो गईं । फिर वह उनको देखने के लिये मानों जैसे पलों को गिन रहे राजमहल में पहुंच गये । रानी ने मुख्य द्वार पर आकर उन की आरती उतारी ।

प्रतिभा की छोटी बहन सुषमा पुष्पवाटिका में सीता राम को जैसे खिड़की से चन्द्रकेतु को देख कर मन में सोचने लगी—"अरे, यह तो दूसरा सूर्यकेतु है। क्या मेरी बहन मुझे इस की जीवनसंगिनी बनाने के लिये पिता के आगे प्रस्ताव रखेगी ? क्या इसके चरण-कमलों की भ्रमरी बनाने के लिये मेरा भाग्य उदय होगा ? बारह वर्ष पार्वती की आराधना करते हुए जो मैंने क्लिष्ट तप किया है, शायद उसका फल अब मिलने ही वाला है । महाराजा ने चन्द्रकेतु का भी जामाता के समान ही आदर किया । भोजन के पश्चात् जब राजकुमार विश्रामकक्ष में चले गये तो भद्रसेन ने रानी को कहा—"प्रिये, प्रतिभा के भाग्य से सूर्यकेतु लौट आया है । रत्न पाने के लिये समुद्र में कूदे हुए पुत्र के लौटने पर माता-पिता के समान आज हम भी प्रसन्नता में हैं । हमारी पुत्री अब सुख में है । आप जानती ही हो कि मैं अब तीसरे आश्रम की आयु में प्रवेश कर चुका हूं । पर सुषमा के अविवाहित होते हुए गृहस्थ का छोड़ना संभव नहीं । बुद्धिमान लोग कन्या का पिता होना कष्टदायक बताते हैं । क्योंकि जब तक वर को हाथ न पकड़ा दिया जाए माता-पिता कन्या के भार से स्वतंत्र न होते हैं । इस के विवाह की चिन्ता से निवृत्त होकर जामाता सूर्यकेतु पर राज्य का प्रबन्ध छोड़कर वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहता हूं । प्रतिभा का यह देवर

रोऽयमग्रजवदेव रमणीयरूपः एतेन सुषमाकरग्रहणं[1] रोहिण्या विधुसंयोग एव ज्ञास्यते ।" महिषी प्रत्यवदत्–'देव, अधिगतवंशेतिहासा वयं सूर्यकेतोः साम्प्रतम् । न जाने तदानीं किमर्थं गोपायितानेन राजकुलसम्बद्धता परीक्षाभवनप्रवेशात्पूर्वं परीक्षार्थिनः प्रश्नपत्रमिव । भवद्भिर्मम हृदयेनैव मंत्रितम् । परमेतत्प्रतिभा-परामर्शेणैव सेत्स्यति" । ततो राजा प्रतिभामाहूयावदत्—"तनये ! दिष्ट्या शोभसे त्वं भर्तृसंगमेन । सुषमाकरं चन्द्रकेतुं ग्राहयितुं तेऽनुमोदनं कामयामहे" । प्रतिभा मनस्यचिन्तयत् - "कश्चिच्छतप्रस्तरघातश्रान्तबाहुरेकमाम्रफलं लभते परमपरो [2]रसालतरुतलगः [3]काकतालीयन्यायेन प्रचलितपवनप्रकम्पितशाखा-पतितशताम्रफलान्यनायासमेव प्राप्नोति । यन्मया महत्प्रयत्नैराप्तं, सुषमा तदनायासमाप्तुं गच्छति" । ततः प्रत्यक्षं प्राह—"तात ! श्रेयांसि विघ्नबाहुल्यानि । अद्यैव दूतं गमयन्तु कुमुद्वतीं मंगलसूचनायै" । एवं तातप्रस्तावं हर्षेणान्वमोदत ।

कुमुद्वत्यामेकदा विनिवर्तितराज्यकार्यकलापो महीपो भूयो भूयः परीक्षानुत्तीर्णछात्रवद्भग्नमना महिषीमुवाच—"प्रिये ! सप्तसमाभ्यो नादर्शि सूर्यकेतुः । वर्षोऽयं विगतश्चन्द्रकेतुप्रवासस्यापि । न जाने विधात्रा मे ललाटपटले कैषु क्षणेषु कान्यश्वेताक्षराणि लिखितानि । प्राक्तनजन्माचरितस्य कस्य दुष्कर्मणः फलमिदं मया भुज्यते, नाहं ज्ञातुं क्षमः । अचिकित्स्य-रोगाक्रान्तमानवस्येव विरक्तं मे मनो न लगति राज्यकार्येषु । केशपलितत्वं संसूचयति तृतीयाश्रमवयःप्रवेशम् । साधने सत्यपि व्याहतेच्छोऽहमन्याननुभूतव्यथामुद्वहंश्चिन्तयामि मंत्रिष्वेव राज्यभारं निक्षिप्य वान-प्रस्थमाश्रयितुम्" । राज्ञो मर्मभेदि वचो निशम्य भ्रश्यद्गृहधारणाय काष्ठस्तम्भ-

---

1. रोहिण्या-दक्षपुत्र्या । विधुसंयोगः चन्द्रसंयोगः । (रोहिणी चन्द्रस्य प्रियतमासीत्) ।
2. रसालतरुः-आम्रवृक्षः ।
3. काकतालीयन्यायः-कादाचित्कघटना ।

बड़ें भाई के समान ही सुन्दर है। इसके साथ सुषमा का विवाह रोहिणी के साथ चांद के संयोग जैसा समझा जाएगा" रानी बोली - "महाराज, अब हमें सूर्यकेतु के वंश का परिचय मिल गया है। परीक्षाभवन में प्रवेश करने से पहले परीक्षार्थी से प्रश्नपत्र के समान, प्रतीत नहीं इस ने उस समय राजकुल से अपने सम्बन्ध को क्यों छिपा लिया था। आप ने मेरे दिल की ही बात की है। परन्तु यह प्रतिभा की सम्मति से ही होगा। तब राजा ने प्रतिभा को बुला कर कहा—"पुत्री, यह भाग्य की बात है कि तुम्हारा पति आ गया है। सुषमा का हाथ चन्द्रकेतु को पकड़ाने के लिये मैं तुम्हारी अनुमति चाहता हूं। प्रतिभा मन में सोचने लगी—"कोई सौ पत्थर मार कर थके बाहु वाला एक आम के फल को पाता है परन्तु दूसरा आम के पेड़ के नीचे गया हुआ काकतालीन्याय से हवा से झूल रही शाखाओं से गिरे सैंकड़ों आम के फलों को बिना कष्ट के ही पा लेता है। जो कुछ मैंने बड़े प्रयत्न से पाया है, सुषमा बिना किसी कष्ट के ही पाने जा रही है।" फिर सामने बोली—"पिता जी, भले काम में विघ्न बहुत होते है। आज ही कुमुद्वती में इस मंगल-सूचना के लिये दूत को भेज दो।" इस प्रकार पिता के प्रस्ताव का प्रसन्नता से अनुमोदन कर दिया।

कुमुद्वती में एक बार राज्य कार्य से निपटा हुआ राजा बार बार परीक्षा में फेल हुए छात्र के समान टूटे मन वाला रानी को बोला—"प्रिये, सूर्यकेतु के देखे साढ़े छः वर्ष बीत चुके हैं। चन्द्रकेतु को घर से निकले हुए भी लगभग एक वर्ष हो रहा है। पता नहीं विधाता ने किन क्षणों में मेरे मस्तक में कौन से काले अक्षर लिख दिये हैं। पिछले जन्म में कमाये किन खोटे कर्म का फल मैं भोग रहा हूं, मुझे कुछ पता नहीं। असाध्य रोग से ग्रस्त मनुष्य की तरह विरक्त हुआ मेरा मन राज्य के काम-काज में न लगता है। सफेद होते हुए केश तीसरे आश्रम की आयु में प्रवेश की सूचना दे रहे हैं। साधन होते हुए भी अपनी इच्छा के पूरा न होने से दूसरों से न भोगी हुई पीडा में फंसा हुआ मैं मंत्रियों पर ही राज्यभार को छोड़ कर वानप्रस्थ में प्रविष्ट हो जाना चाहता हूं।" राजा के कोमलांग का भेदन करने वाले वचन को सुन कर ढह रहे घर को थामने के लिये लकड़ी का खम्भा लगाती हुई

मिवार्पयन्ती महिषी प्राह—"स्वामिन् ! नौका साम्प्रतं विविधबाधामकराकीर्णविस्तृतदुःखसागरमुत्तीर्य तटवर्तिनी । मा जहातु धैर्यमत्रभवान् । अद्य निशि मया पङ्कोर्यष्ट्याश्रय इव शुभस्वप्नोऽवालोकि । चन्द्रकेतुर्विपदमनु विपदमुत्तीर्य सफलोऽग्रजगवेषणे" एवं राज्ञा अर्धोक्त एव पारिजातशुकः समागत्यापठत्—

वियोगवल्लरी लुप्ता कुमारयोर्मध्यवर्तिनी ।
वर्धतां राजवंशोऽयं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
दुःखस्य घटिका याताः सुखबेला समागता ।
संदेशं च शुभं श्रोतुं सज्जो राजावतिष्ठताम् ॥

इत्यभिधाय सहसोड्डिड्ये । राज्ञी तं ग्रहीतुमपादुकैव शतकिष्कुमितं[1] दधाव परं स इन्द्रधनुरिव क्षणेष्वेवादृश्यतां जगाम । राज्ञी प्राह—"स्वामिन् ! सरिति निमज्जतस्तृणावलम्बनमिव सहायकोऽयं शुको म्रियमाणस्य मुखेऽमृबिन्दुमिव निपातयन् समये समये समाश्वासयति नश्चेतः । एक एव मे पश्चात्तापोनायमायाति मे करयोः । पुनः पुनरागत्यास्माकमदृष्टं वदतो नास्य विषयेऽद्यावधि किमपि ज्ञातुं क्षमा वयम् । एतस्य तिर्यक्योनिपातो विस्मापयति मामविरतम्' । अधिकतरं विहंगमा भीत्याहारसंभोगमात्रज्ञानपरायणाः श्रूयन्ते । एषः कथं तेषामपवादभूत इति बोद्धुं नापारयम् । एतेन शुभं श्रावयता मे हृदयेऽनलतापत्वचि नारिकेलतैलानुलेपनमिवाकारीति कृतज्ञाहमेतस्य ।" राजावदत्—"प्रिये ! विहगेषु वैदिककालादेव शुकजातिर्विशिष्टतामावहति । एते पुरा पुराणेतिहासकथाः स्फुटवाचि न्यगदन् । परं व्याजरूपप्रच्छन्नानलसंवादं परसमक्षं यथावद् विवृण्वन् शुकस्तेन शप्तो ऽस्पष्टवाक्तामगमत् ।

1. किष्क्वति—कायतेऽनेनेति 'कै शब्दे' भौवादिकस्तस्मात् 'मृगय्वादयश्च' इति करणे धातोरित्वे सुकि कुकि च निपातिते षत्वे च किष्कुः । "किष्कुर्द्वयोर्वितस्तौ च सप्रकोष्ठकरेऽपि च" (इति मेदिनी) ।

रानी बोली—"पतिदेव, किश्ती अब अनेक प्रकार के बाधारुपी मगरमच्छों से भरे हुए विशाल दुख के समुद्र को पार करके तट तक पहुंच चुकी है। आप धीरज मत छोड़िये। आज रात को मैंने लंगड़े को लाठी के सहारे के समान शुभ स्वप्न देखा है। चन्द्रकेतु कई संकटों को पार करके बड़े भाई के ढूंढने में सफल हो गया है।" इस प्रकार रानी ने अभी बात को समाप्त भी न किया था तो वही पारिजात तोता आ कर बोलने लगा :—

राज कुमारों के बीच उपजी हुई वियोग की बेल अब सूख गई है। इस राजवंश की तब तक उन्नति होती रहे जब तक चान्द और सूरज हैं॥

दुख की घड़ियां बीत गईं और सुख का समय आ गया। शुभ संदेश को सुनने के लिये राजा तैयार रहे॥

इतना कह कर वह शीघ्र ही उड़ गया। रानी उसे पकड़ने के लिए नंगे पांव ही सौ हाथ तक दौड़ी पर वह इन्द्र धनुष के समान कुछ ही क्षणों में छिप गया। रानी बोली–''पतिदेव' नदी में डूबते हुए को तिनके के आश्रय के समान सहायक यह तोता मरते हुए के मुख में मानों जैसे अमृत की बूंद गिरा रहा हो, समय समय पर हमारे मन को आश्वस्त करता आया है। एक ही पश्चाताप है कि यह हाथ में न आता है। बार बार हमारे भाग्य बताने वाले इस के बारे में हम कुछ भी न जान पाये हैं। इस का पक्षी की योनि में आना मुझे बहुत विस्मित कर रहा है। पक्षी प्रायः भय, भोजन, संभोग मात्र का ज्ञान रखने वाले ही सुने जाते हैं। यह उन का अपवाद कैसे है यह मैं न समझ पाई हूं। इस शुभ समाचार को सुना कर इसने मेरे हृदय में आग से जली चमड़ी पर मानों नारियल के तेल का लेप जैसा ही कर दिया है। मैं इस की बहुत ही कृतज्ञ हूं। राजा बोला —"प्रिये ! पक्षियों में तोते की जाति की वैदिक काल से ही विशेष मान्यता रही है। यह तोते पहले समय में पुराणों की इतिहास कथाओं को स्पष्ट वाणी में बोलते थे परन्तु छल का रूप धारण करने वाले अग्नि के संवाद को ज्यों का त्यों दूसरों के सामने प्रकट करने के कारण अग्नि ने तोते को अस्पष्ट वाणी का शाप दे दिया था।

पूर्वजन्मार्जितसंस्कारवशादपि विशिष्टज्ञानं भवितुमर्हति । अहमप्यातुर एतज्जन्मवृत्तश्रवणाय । परमेतत्कदा कर्णगोचरं भविष्यतीति नावबुध्यते ।

अत्रान्तरे प्रतीहारः प्रविश्य बद्धाञ्जलिरबदत्—"राजन्! पश्चिमोत्तराद् वेत्रवत्या राजवंशप्रहितो दूतो देवचरणदर्शनानि कामयमानो द्वारेऽवतिष्ठते ।" सिद्धेः फलं द्रष्टुं साधको यथा वैज्ञानिकः स्वाविष्कारफलं चेक्षितुमिवोत्सुकताविष्टो महीपतिः "द्रुतं प्रवेश्यता" मित्यादिदेश । ततो द्वारपालानुगम्यमान-आस्कन्धलम्बमानशिखालंकृतो यज्ञोपवीतावेष्टितस्कन्धोदरो भाले त्रिकालज्ञान-चिह्नमिव त्रिपुण्ड्रं धारयन् दूतः प्रविश्य रक्तचन्दनेन भूर्जपत्रलिखितं राज्ञो-मूर्तिमन्तं मनोरथमिव पत्रं तस्य करयोः सादरं समार्पयत् । ततः शुभकर्मपादपस्य काल[1]क्रमपक्वफलानीव पत्राक्षराणि नयनाभिमुखानि विधाय हर्षविस्फारित-लोचनो महीपतिः प्रतीहारं "संदेशवाहकोऽयं कदलीकक्षे विश्राम्यताम् । एतस्यातिथ्ये न काप्य[2]नवधानता स्या" दित्याज्ञापयत् । प्रतीहारः "यथादिशन्ति श्रीमन्त" इत्यभिधाय नतशिरसा नमस्कृत्य दूतं वातानुकूलितकदलीकक्षे प्रवेश्य तन्मनो-ऽनुकूलं सर्वमाचरत् ।

ततो राजा महिषीमभाषत—"प्रिये ! फलदायिनि तरौ पुष्पनिर्गम इव क्षपान्तानुभूतः शुकवाक्यानुप्राणितः सफलस्ते स्वप्नः । भरतीयनार्या[3] उदात्तचरितं वहन्त्या त्वया महद्दुःखमनुभूतं मे गृहस्थाश्रमे । त्वं विषमप्यमृतं मत्वाऽपिवः । विविधबाधाहता त्वं वेत्रलतेव नता परं न भग्ना । छाययेव त्वयानुगतोऽहं सर्वदा । चन्दनपादपे दुर्गन्धेनेव न कदाप्युदितं कोपांकितत्रिवल्या ते ललाटपटले । नालोपि ते स्वभावसुलभमन्दस्मितेन[4] दिनकरविपरीतं विपद्वारि-

1. हर्षेति—हर्षेण विस्फारिते नयने यस्य सः ।
2. अनवधानता—प्रमादः ।
3. उदात्तचरितम्—उत्तमचरितम् ।
4. दिनकरो दिवाकरो वारिदेषु मेघेषु लुप्तो भवति परं ते मन्दस्मितं विपद्रूपपयोदेषु कदापि न लुप्तमतस्त्वं सूर्यादप्यधिकं धैर्यं धारयसीति भावः ।

पूर्वजन्म के संस्कारों से भी विशेष ज्ञान हो सकता है। मैं भी इस के जन्म का वृत्तान्त सुनने के लिसे अधीर हूं परन्तु यह सौभाग्य कब मिलेगा, इसका कुछ पता नहीं।

इतने में द्वारपाल प्रवेश कर हाथ जोड़े बोला—"महाराज, पश्चिमोत्तर से वेत्रवती के राजवंश से भेजा हुआ दूत आप के चरणों के दर्शन की इच्छा से द्वार पर खड़ा है"। सिद्धि का फल देखने के लिये जैसे साधक और अपने आविष्कार का फल देखने के लिये जैसे वैज्ञानिक, उत्कण्ठा से भरे हुए राजा ने—"उसे जल्दी अन्दर ले जाओ" ऐसा आदेश दे दिया। फिर द्वारपाल के साथ कन्धे तक लम्बी चोटी से शोभायमान, यज्ञोपवीत से लिपटे कन्धे और पेट वाला, मस्तक में तीन काल के ज्ञान के मानों चिह्न-स्वरूप त्रिपुंड्र को धारण करता हुआ दूत अन्दर आया और लालचन्दन से भूर्जपत्र पर लिखे हुए, राजा के साक्षात् मनोरथ के समान पत्र को उसके हाथों में दे दिया। फिर अपने शुभकर्म रूपी पेड़ के मानों जैसे कालक्रम से पके हुए फल हों ऐसे पत्र के अक्षरों को पढ़कर प्रसन्नता से फैले नेत्रों बाले राजा ने "इस सन्देहवाहक को कदलीकक्ष में विश्राम करवाइये तथा इस के अतिथिसत्कार में किसी प्रकार की लापरवाही न हो।" इस प्रकार द्वारपाल को आज्ञा दे दी। द्वारपाल—"जैसे महाराज की आज्ञा" ऐसा कह कर झुके सिर से प्रणाम कर के दूत को वातानुकूलित कदलीकक्ष में ले गया और उस के मन के अनुसार सब कुछ पूरा कर दिया।

फिर राजा रानी को बोला—"प्रिये, फल न देने वाले पेड़ में फूल निकलने के समान रात्रि के अन्त में देखा हुआ और तोते के बचन से अनुमोदित तेरा स्वप्न सफल हो गया है। भारतीय नारी के उच्च चरित्र को धारण करती हुई आप ने मेरे गृहस्थ में बहुत दुख भोगा है। तुमने विष को भी अमृत समझकर पी लिया। अनेक प्रकार की बाधाओं से प्रताडित हुई आप बेंत की लता के समान झुकती रही पर टूटी नहीं। आप छाया की तरह सदा मेरे पीछे चलती रही हो। चन्दन के पेड़ में जैसे दुर्गन्ध कभी न आता है इसी प्रकार तुम्हारे मस्तक पर कोपसूचक त्रिवली कभी न दिखाई दी है। तेरी स्वाभाविक मुस्कराहट विपत्ति के बादलों में भी सूर्य के विपरीत कभी लुप्त

देऽवपि । भवादृशमहिलोत्कृष्टचरितजलधाराभिषिक्तोऽयं भारतीयसंस्कृतिवटपादप ऊर्ध्वशाखाभिः स्वर्गं धरातलगतशिफाभिश्च पातालं शुभं संदिशन्नेतद्देशीयसंस्कृतिं त्रिलोकव्यापिनीमिव विदधाति । गतमन्धं तमः । संप्रति सर्वत्र प्रकाश एव प्रकाशः । राजकुमारौ पश्चिमोत्तरभद्रसेनराज्ये सकुशलिनौ । राज्ञा प्रेषितोऽयं दूतः कनिष्ठराजदुहित्रा सह चन्द्रकेतुपरिणयप्रस्तावालङ्कृतः । ज्येष्ठया सूर्यकेतुः प्रथममेव स्वयंवरे वृत एतदपि पत्रं संदिशति । शोभिष्यसे त्वमचिराद् युगपद् [1]वधूद्वयालंकृता विश्वविद्यालयप्रथमस्थानस्थछात्रा सोपाधिपुरस्कारविभूषिता यथा ।" भूपतेर् हृदयाह्लादकरं वचो निशम्य राज्ञ्याः प्रेमाश्रुधारा भूतलमसिञ्चत् ।

ततो महीपतिः पत्रवाहकं सहस्रदीनारैर् वस्त्रालंकरणैश्च सत्कृत्य सपत्रोत्तरं गमयामास । कुमारोद्वाहसमाचारः सकलराज्ये चन्दनवने सुखकरगन्धवत्प्रासरत् । गेहे-गेहे मंगलाचारः । लोकाः स्ववेशमसज्जासंलग्ना अदृश्यन्त । स्थाने स्थाने तोरणानि निरमीयन्त । तत्संलग्नपवनप्रकम्पितविविधतरुहरितपत्राणि नृत्यपरायणानां तालकार्यमिवाकुर्वन् । वीथ्यां वीथ्यां तोरणस्थपुष्पगन्धसमाकृष्टभ्रमरनिनदः कर्णावसुखयत् । ललनाः स्वभवनेषु सुमधुरं गायन्त्यो मंगलसूचकविविधालेख्यानि लिलिखुः । राजप्रासादस्य तु कथा । प्रत्येककक्षकोणेषु समस्तसरित्सागरसमानीतपावनसलिलपूरितरजतघटा अस्थाप्यन्त । पाटलवसनालङ्कृतस्वर्णपत्रजटितनारिकेलान् रत्नानुस्यूताम्रपत्राणि च धारयन्तः समुन्नतकुम्भाः शिरसि हाटकचूडामणिं कर्णयोश्च मण्यलंकृतहरितकुण्डलानि धारयन्तीनां गौरवर्णयुवतीनां भ्रान्ति-

1. वधूद्वयेति-यथा प्रथमस्थानस्थछात्रा-उपाधिपुरस्काराभ्यां (लाभद्वयेन) भूषिता भवति तथा त्वमपि वधूद्वयलाभेनालंकृता भविष्यसीति भावः ।

न हुई है। आप जैसा नारियों के उत्तम चरित्र रूपी जल धारा से सींचा हुआ यह भारतीय संस्कृति का वट वृक्ष ऊपर की शाखाओं से स्वर्ग को और धरातल में धंसने वाली जटाओं से पाताल को शुभ सन्देश देता हुआ इस देश की संस्कृति को मानों जैसे तीनों लोकों में पहुंचा रहा है। घना अन्धेरा चला गया। अब सब जगह उजाला ही उजाला है। दोनों राजकुमार पश्चिमोत्तर के भद्रसेन राजा के राज्य में कुशलपूर्वक हैं। राजा ने इस दूत को अपनी छोटी लड़की के साथ चन्द्रकेतु के विवाह का प्रस्ताव देकर भेजा है। बड़ी पहले ही सूर्यकेतु को स्वयंवर में वर चुकी है यह भी पत्र में लिखा हुआ है। जैसे विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाने वाली कोई छात्रा उपाधि और पुरस्कार दोहरे लाभ से विभूषित होती है उसी प्रकार तुम भी एक ही समय में दो बहुओं को प्राप्त कर शोभा पाओ गी।'' राजा के हृदय को प्रसन्न करने वाले वचन को सुनकर रानी के प्यार की आंसुओं की धारा धरती को सींचने लगी।

इसके बाद राजा ने पत्र लाने वाले को एक हजार मोहर और वस्त्र-भूषणों से सत्कृत कर के पत्रोत्तर के साथ भेज दिया। राजकुमारों के विवाह का समाचार सारे राज्य में चन्दन वन में सुखदायक गन्ध के समान सब जगह फैल गया। घर घर में मंगलाचार होने लगा। लोग अपने घरों की सजावट करने लगे। जगह जगह तोरण बनाये गये। उन तोरणों में लगे हुए वायु से कांपते हुए, अनेक प्रकार के पेड़ों के हरे पत्ते नाचने वालों का मानों ताल का काम कर रहे थे। गली गली में तोरणों में लगाये फूलों के गन्ध से खिचे भौरों का शब्द कानों को सुख देने लगा। महिलाएं अपने घरों में मीठा गाती हुई मंगल सूचक अनेक प्रकार के आलेख्य लिखने लगीं। राजमहल की तो क्या बात की जाय। प्रत्येक कमरे के कोणों में सभी नदियों और समुद्र से लाये हुए पवित्र जल से भरे चांदी के घड़े रखे गये। लाल वस्त्र से ढके हुए, सोने के पत्तों से जड़े नारियलों को और रत्नों से जड़े आम के पत्तों को धारण करते हुए ऊंचे कुंभ सिर पर सोने का चूडामणि और कानों में मणियों से सजे हरित वर्ण के कुण्डलों को धारण करने वाली नारियों की भ्रान्ति जैसी करने लगे।

मिवाजनयन् । समस्तमन्तःपुरं[1] मोदाब्धिमग्नमिवालक्ष्यत । काचजटितसदन-भित्तिषु स्वलावण्यं निरीक्षमाणानां युवतीनां चित्तचांचल्येन मृदुभूतले पादाः स्खलितुमारेभिरे । एवमन्योन्यं भावभंगीभिर्हसन्तीनां व्यङ्ग्यं क्षिपतीनां तासां दन्तप्रभाभिः प्रासादश्चन्द्रिकाधवलित इवालक्ष्यत । ललनानां पादालक्तकरागबिन्दु-समलङ्कृतभूतलं वर्षर्तौ[2]—इन्द्रगोपसमावृतमिवालोक्यत । कामधेनुपयोधारा कमण्डलाविव राजदम्पत्योर्मुदो मनसि मातुं नापारयन् । पद्मावती दीनेभ्यो-दीनारान् वितरन्तो कौशल्येव शुशुभे । वरयात्राप्रत्याशिनः प्रस्थानक्षणान्ज्ञातुं प्रसूतिगृहप्रविष्टभार्याप्रसवसमाचारं श्रोतुं भर्तार इवाधीरा अतिष्ठन् । अपरेद्युः सगुरौ पुष्यर्क्षे राजगुरोर्जमदग्नेराज्ञया प्रस्थाननिर्णयो व्यधीयत । आमंत्रितजनाः साक्षात्कारे सफलप्रत्याशिन इव स्वभाग्योत्कृष्टतां प्रशंसन्तो गन्धवत्तैलसुवासित-वसनानि परिधाय मुखे ताम्बूलं चर्वयन्तः "तत्रास्माभिः शिष्टताप्रदर्शनाय कथं व्यवहर्तव्य" मित्यन्योन्यमालपन् ।

अथ सैन्याधिकारितर्जनीसंकेतेनेतरसैनिकेषु पथप्रचलनप्रवृत्तेष्विव मार्तण्डमयूखप्रेरणया सकलजगति व्यापारपरायणे सति भूपतिर्विविध-मंगलाचरणपूर्वकं प्रस्थानोद्घोषमकारयत् । ढक्कानिनदो गगनतले सुदूरं निर्जगाम । दुन्दुभिध्वनिर्मेघगर्जनमप्यत्यशेत । मृदंगवादककरांगुल्यो वाद्येषु नर्तितुमिवारेभिरे । चारणाः स्पर्धयेव राजवंशस्तुतिं कीर्तितुमारभन्त । षट्-तुरंगमान्वितो राज्ञो रजतरथोऽन्यान् मार्गं दर्शयन्निवाग्रतः प्रययौ । अन्योन्यं मिलिताश्वेतग्रीववाजिनां मूर्धसु वायुवेगेनेषद् - विकम्पमानानि समानरेखां विरचयन्ति[3] चामीकरचामराणि घनेऽगर्जनं विद्युद्रेखाभ्रममिवा-जनयन् । प्रशिक्षिततुरंगमा वामदक्षिणक्रमेण युगपत्पादानुत्थापयन्तो भूतले

1. मोदेति—प्रसन्नतासागरमग्नम् ।
2. इन्द्रगोपाः—वर्षर्तौः प्रारंभे (आषाढे विशेषतः) भूमेः समुद्भूता रक्तवर्ण-ललितजीवाः । (वीरवधूटी इत्याख्याः)
3. चामीकरेति—स्वर्णचामराणि ।

सारा रनवास मानों प्रसन्नता के सागर में डूब गया। कांच से जड़ी दीवारों में अपने सौंदर्य को देख रही युवतियों के चित्त की चंचलता से कोमल धरती पर पैर फिसलने लग पड़े। इस प्रकार आपस में भावभंगियों के साथ हंसती हुई व्यंग्य-कसती हुई उनकी दान्तों की कान्ति से महल मानों चान्दनी से सफेद बनाया हुआ जैसे दिखाई देने लगा। युवतियों के पैरों में लगाई मेंहदी के रंग के बिन्दुओं से सजी हुई धरती वर्षा ऋतु में बीर बहुटियों से भरी हुई जैसे दिखाई देने लगी। कामधेनु की दूध की धारा जैसे कमण्डलु में, राजा और रानी की प्रसन्नता मन में समा न रही थी। पद्मावती गरीबों को मोहरें बांटती हुई कौशल्या के समान शोभा दे रही थी। वरयात्रा के प्रत्याशी प्रस्थान के समय को जानने के लिये प्रसूति घर में प्रविष्ट पत्नियों के प्रसव का समाचार जानने के लिये पतियों के समान अधीर हो गये। बुलाये हुए लोग साक्षात्कार में सफल प्रत्याशियों के समान अपने भाग्य की उच्चता को सराहते हुए गन्ध वाले तेल से सुवासित वस्त्रों को पहन कर मुंह में पान को चबाते हुए "वहां हमें अपनी सभ्यता दिखाने के लिये कैसा व्यवहार करना चाहिये" इस प्रकार आपस में बातें करने लगे।

इस के बाद सेना के अधिकारी के तर्जनी के इशारे से दूसरे सैनिक जैसे पथ-प्रचलन में लग जाते हैं उसी प्रकार सूर्य की किरणों की प्रेरणा से सारे संसार के अपने काम-धन्धे में लग जाने पर राजा ने अनेक प्रकार के मंगल मना कर गुरु जमदग्नि की आज्ञा से प्रस्थान की घोषणा करवा दी। तुरही का शब्द आकाश में दूर तक चला गया। नगारे की आवाज़ बादल की गर्जना को भी मात कर गई। मृदंग बजाने वालों के हाथों की उंगलियां मानों वाद्य पर नाच करने लग पड़ीं। भाट स्पर्धा से राजवंश की स्तुति करने लगे। छः घोड़ों वाला राजा का चांदी का रथ मानों दूसरों को रास्ता दिखाता हुआ जैसे आगे चलने लगा। आपस में मिली हुई काली गर्दन वाले घोड़ों के मस्तक पर वायु के वेग से थोड़ा कांपते हुए बराबर लकीर खींचते हुए सोने के चामर बादल में बिना गर्जना के बिजली की रेखा की भ्रान्ति जैसी करने लगे। सिधाए हुए घोड़े बाएं-दाएं क्रम से एक ही समय में पैरों को उठाते हुए धरती पर

विशिष्टध्वनिं जनयन्तो नृत्यविशेषमिव प्रादर्शयन् । भूपते रथमनु गजारोहा अश्वारोहाश्चाचलन् । पथो रजःकणान् शमयितुमिव वियत्युदितवारिवाहा- लघुबिन्दून् वर्षन्तो राज्ञो भक्तिमिवादर्शयन् । वरयात्रिणः सत्कर्तुमिव धरणी शाद्वलमिषेण हरितास्तरणं विस्तारयामास । "राज्ञः कोमलं वपुर्न मे तापेन दूयेते, ति भियेव भास्करः [1]पयोदतिरस्करिणीतिरोहितस्तमवालोकत ।

प्रथमदिवसयात्रावसाने-उदुम्बरनामनगरेऽवस्थितिरुदघोष्यत । तत्पुर- वासिन. सूर्योदयात्पूर्वं भगवते भास्करायार्घ्यसामग्रीं समाहरन्तो भक्ता यथा भूपतिसत्कारार्थं संयोजितसंभाराः प्रागेव तत्र समाजग्मुः । राज्ञे गन्धवन्माल्यः ताम्बूलानां समर्पणमन्वितरेऽपि वरसंगिनस्तद्वदेव समाद्रियन्त । गजारोहा गजानश्वारोहाश्चाश्वान् यथास्थानं बबन्धुः । ततो देवालयेषु शंखनादमुखरितेषु महाराजो देवानर्चितुं पूजासनं जग्राह । अपरेऽपि सायंतनदेवोपासनासनानि भेजिरे । एकपंचाशच्चुल्हिकासु प्रज्वालितानलपाचकाः पाककर्मारभन्त । गृहीतभोजनेषु तेषु विश्रमार्थं शय्या आश्रयत्सु विहितातिथ्यसंतुष्टमानसाः पुरवासिनः स्वनिकेतनानि प्रत्यगच्छन् ।

तृतीयेऽह्नि वरानुयायिभिरनुगम्यमानो महाराजो महासेनोऽयोध्याधिपतिर् दशरथो मिथिलामिव पश्चिमोत्तरभूपालसीमां प्रविवेश। ढक्कानिनदालक्षितवरानु- गामिसमागमनाः स्वागतकर्तारो बद्धपरिकराः सुगंधितपेयान् विविधखाद्यपदा- र्थांश्च वहद्भिर् [2]वीवधवाहकैः सह गर्वमनुभवन्तः पुरतः प्रययुः । स्वागतिनो वरानुयायिनः समवलोक्य मुदितमानसा रोमांचितकाया- आपगाः समुद्रमिव तान् मिलितुमधीरा अभवन् । उभयपक्ष-

1. पयोदेति—पयोदा एव तिरस्करिणी व्यवधानपटी तदन्तर्हितः । "प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा" इत्यमरः ।
2. वीवधेति—स्कन्धेन भारवहनाय काष्ठविनिर्मितो वीवधः- 'विहंगिका' एतेन नरो द्विगुणं भारं वोढुं शक्नोति ।

विशेष ध्वनि बनाते हुए मानों विशेष नाच का प्रदर्शन कर रहे थे। राजा के रथ के पीछे रथवान और घुड़सवार चल रहे थे। मानों धरती के धूल कणों को शान्त करने के लिये ही आकाश में आये बादल छोटी-छोटी बूंदों को बरसाते हुए राजा की भक्ति जैसे दिखाने लगे। मानों वरयात्रियों का सत्कार करने के लिये ही धरती ने हरे घास के बहाने से हरे रंग की चादर बिछा दी। "राजा का कोमल शरीर मेरे ताप से दुखी न हो" मानों इस भय से ही सूर्य बादल के पर्दे में छिप कर उसे देखने लगा।

पहले दिन की यात्रा के अन्त में उदुम्बर नाम नगर में पड़ाव की घोषणा की गई। उस नगर के निवासी, भगवान सूर्य के लिये अर्घ की सामग्री को इकट्ठा करते हुए भक्तों के समान राजा के सत्कार के लिये एकत्रित किये सामान वाले पहले ही वहां पहुंच चुके थे। राजा को सुगन्धित माला व पान देने के बाद दूसरे वरयात्रियों का भी वैसे ही सम्मान किया गया। हथवानों ने हाथियों की और घुड़सवारों ने घोड़ों को ठीक स्थान पर बांध दिया। फिर मन्दिरों के शंखनाद से शब्दायमान होने पर महाराजा देवताओं की पूजा के लिये पूजा के आसन पर बैठ गया। दूसरे लोग भी सायंकालीन देवताओं की पूजा के लिये बैठ गये। इकावन चुल्हों में आग जला कर रसोइये रसोई के काम में लग पड़े। उन के भोजन कर लेने पर तथा विश्राम के लिये बिस्तरों का सहारा लेने पर किये हुए अतिथि सत्कार से प्रसन्न मन वाले नगरवासी अपने-अपने घरों को चले गये।

तीसरे दिन वरयात्रियों के साथ महाराजा महासेन ने अयोध्यापति दशरथ ने मिथिला में जैसे, पश्चिमोत्तर के राजा की सीमा में प्रवेश किया। तुरही के शब्द से बारात को आया जान कर स्वागत करने वाले कमर कस कर सुगंधित पेय पदार्थों को और अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों को उठाने वाले कहारों के साथ गर्व का अनुभव करते हुए आगे चले। स्वागत करने वाले वरयात्रियों को देख कर रोमांचित शरीर वाले नदियां जैसे समुद्र को उन्हें मिलने के लिये अधीर हो गये। दोनों ओर के

बाद्यनादो नभोऽपूरयत् । वरयात्रिस्वागतकर्तृसंयोगस्त्यक्तमर्यादानन्दसागरद्वयमिलनदृश्यमिवोपास्थापयत् । पुष्पविकीर्णभूतले जनानां पादा आगुल्फमदृश्या अभूवन् ।

एवं स्वागतकर्तारः सभाजनमनु वरपक्षं जनावासमलङ्कर्तुं प्रार्थयन्त । हरितवस्त्रावृतमार्गमुभयतो विविधं सुसज्जिततोरणेषु वायुप्रकम्पितमुक्तामणिविरचरितकृत्रिमशुकाः स्वागतमित्राभाषन्त । तोरणपुष्पाश्रितभ्रमरगुञ्जितं जनमनो मृगयुगीतं मृगमिवाकर्षत् । जनावाससुलभसुविधाः समीक्ष्यातिथयः सदन-सुखानामपि व्यस्मरन् । उत्तरांचलकलाकाराद्भुतकलां स्वराज्यशिल्पेन [1]तोलयन्तोऽतिथयः स्वीयन्यूनतामनुभवन्तोऽपि 'सम्बन्धिनां वरपक्षलाघवं विदितं न स्या' दिति भिया संकेतेनैवान्योन्यं तथ्यमब्रुवन्। मिथिलास्थरामलक्ष्मणौ दशरथमिव स्वतातेक्षणाधीरमानसौ कुमारौ परिवेषितपक्वान्नमास्वदितुं भोजयितुराज्ञामाप्तुमासनस्थभोक्तार इव भद्रसेनादेशपलानगणयताम् । कुमारयोर्मनोभावं विज्ञाय भद्रसेनस्तावाहूय सस्नेहमवदत्—"कुमारौ, रथालंकृतः समागतो महाराजो महासेनोऽस्मद् भाग्ययोगात् । यातुमर्हतो भवन्तौ जनावासे तच्चरणारविन्ददर्शनानन्दमाप्तुं येनात्रत्या विवाहपूर्वानुष्ठेयमंगलविधयोऽबाधमनुष्ठिताः स्युः । श्रुतिसुखकरं मनोऽनुकुलं तद्वचो निशम्य "यथाज्ञापयन्ति भवन्त" इत्यभिधाय राजकुमारौ गोधुगा दोहनमनु स्तन्यं पाययितुं कीलकोन्मुक्ततर्णको यथांगरक्षकैः सह द्रुतगत्या जनावासं प्रचेलतुः ।

महाराजो महासेनो मरुस्थले विचरन् पथिको जलस्रोत इव कुमारौ निरीक्ष्य मृतशरीरे प्राणार्पणमिवानुभवंस्तौ वक्षसालिङ्गन् कतिचित्क्षणेभ्यः स्वात्मनोऽपि विसस्मार । कुमारयोः

1. तोलयन्तः—मेलयन्तः ।

बाजों के शब्द से आसमान भर गया। वरयात्री और स्वागत करने वालों का संयोग ऐसा दृश्य दिखाने लगा मानों प्रसन्नता के दो समुद्र मर्यादा छोड़ कर आपस में मिल रहे हों। बिखरे फूल वाली धरती पर लोगों के पैर गिट्टों तक दिखाई न देते थे।

इस प्रकार स्वागत करने वालों ने सत्कार के अनन्तर वरयात्रियों से जनावास में चलने की प्रार्थना की। हरे वस्त्र से ढके हुए मार्ग के दोनों ओर अनेक प्रकार से सजे हुए तोरणों पर वायु से झुलाए जा रहे मोती-मणियों से बनाये गये बनावटी तोते मानों स्वागत का उच्चारण कर रहे थे। तोरण के फूलों पर बैठे भौरों की गुंजार लोगों के मन को व्याध का गीत जैसे मृग को, आकर्षित कर रही थी। जनावास में मिलने वाली सुविधाओं को देख कर अतिथि लोग घर के सुखों को भी भूल गये। उत्तरांचल के कलाकारों की अद्भुत कला को अपने राज्य की कला से तोलते हुए अतिथि अपनी कमी का अनुभव करते हुए भी "सम्बन्धियों को वर पक्ष की कमी का ज्ञान न हो" इस डर से आपस में संकेत से ही सचाई को बता रहे थे। मिथिला में ठहरे हुए राम, लक्ष्मण जैसे दशरथ को, अपने पिता को देखने के लिये अधीर मन वाले राजकुमार भद्रसेन की आज्ञा के क्षणों की उसी प्रकार प्रतीक्षा कर रहे थे जैसे आसन पर बैठे हुए भोक्ता सामने परोसे हुए अन्न को खाने के लिये खिलाने वाले की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं। कुमारों के मन के भाव को समझ कर भद्रसेन ने उन दोनों को बुला कर प्यार से कहा—"कुमारो, रथों से अलंकृत महाराजा महासेन हमारे भाग्य से यहाँ पहुंच गये हैं। आप जनावास में उन के चरणकमलों का दर्शन पाने के लिये जा सकते हैं जिस से विवाह से पूर्व की जाने वाली इधर की मंगल-विधियां बिना बाधा के पूरी की जा सकें। कानों के लिये सुखदायक, मन के अनुकूल राजा के वचन को सुनकर 'जैसे आप की आज्ञा' ऐसा कह कर राजकुमार ग्वाले से गौ दुहने के बाद दूध पिलाने के लिये कीले से खोले हुए बछड़े के समान तेज चाल से अंगरक्षकों के साथ जनावास को चल पड़े।

महाराजा महासेन रेगिस्तान में घूमता हुआ यात्री जल-स्रोत को जैसे राजकुमारों को देख कर मरे हुए शरीर में मानों जैसे प्राण आ गये हों ऐसा अनुभव करता हुआ उन को छाती से लगाये हुए कुछ क्षणों के लिये अपने आप को भूल गया।

कायादिव निष्क्रम्य विगतजीवनसकलसंकटानि महाराजस्मृतिपटले विद्युत्स्पर्शाच्छायाचित्रे साकारपात्राणीवोदीयुः। लोकसमक्षं शतं प्रयतमानोऽपि भूपतिर्बालुकाभित्तिः सलिलप्रवाहमिव प्रेमाश्रूणि रोद्धुं नापारयत्। तदनु पुरोहितकुलवृद्धकृताभिवादनौ कुमारौ मित्राणां चिरवृत्तमपृच्छताम्। राजगुरुर्जमदग्निर्वेदमंत्रपाठपूर्वकं पूरितकुलाचारः कुमारकरयोः कङ्कणेऽबध्नात्।

वसुमती राजानं प्राह—"महाराज ! स्वयंवरवृतभर्तृकायाः प्रतिभायानान्वष्ठीयत विवाहविधिरितः पूर्वम्। अतो वेदीद्वयं विनिर्मायोभयोरपि सकलमंगलानि यथा सविध्यनुष्ठितानि स्युस्तथा प्रयतन्ताम्। भूपतिः प्रत्यवदत् प्रिये ! विवाहो न केवलमात्मद्वयसंयोगः। एतेन कुलयोः परस्परमाचारविचारा, नीतयः संस्कृतयश्च सम्बद्धा जायन्ते। अत एव पूर्वजा गहनमनसा विचिन्त्य विवाहसम्बन्धं निरधारयन्। सुविचार्य विहित उद्वाहबन्धः कुलानां भूतये। अविचार्यं कृतस्तु तेषामपकर्षाय। प्राग्दक्षिणपश्चिमोत्तरोरयं सम्बन्धोऽयोध्यामिथिलयोः समागम इव न केवलं राज्यद्वयमपितु सकलं भारतं प्रभावयिष्यते। स्वयंवरे सीतया, शिवधनुर्भंगानुगं रामवरणं कोदण्डटङ्कारेणैव त्रिलोकविदितमासीत्। परं विवाहविधिस्तु जनकेन तत्राप्यनुष्ठितः। मिथिलायाःशतानन्द इव नः पुरोहितोऽङ्गिरा अपरविद्वद्भिः सहोभयोरपि कुमारिकयोरुपयामविधिं समानरूपेण पूरयितुं प्रयतमानो वर्तते। भवती प्रासादान्तःकार्याणि सुनिश्चितानि करोतु" इत्यभिधायापरकार्यव्यापृतो[1] बभूव। ततो राज्यकुशलकलाकारावेदीद्वयनिर्माणकार्यं प्रारेभिरे। षोडशहस्तपरिमितचतुष्कोणभूमौ हीरकजटिता-

1. व्यापृतः—संलग्नः

मानों राजकुमारों के शरीर से ही निकल कर जैसे बीते जीवन के सारे कष्ट राजा के स्मृतिपटल में इस प्रकार उदित हो गये जैसे छायाचित्र पर बिजली के स्पर्श से साकार पात्र प्रकट हो जाते हैं। लोगों के सामने सैंकड़ों प्रयत्न करने पर भी राजा रेत की दीवार पानी के प्रवाह को जैसे प्रेम के आंसुओं को रोक न सका। उस के अनन्तर पुरोहित और कुलवृद्धों को नमस्कार कर के राजकुमारों ने मित्रों का चिरकाल का समाचार पूछा। राजगुरु जमदग्नि ने वेदमंत्रों के पाठ के साथ कुलाचार पूरा करके राजकुमारों के हाथ में कंकण बांध दिये।

वसुमती राजा को बोली—"महाराज, स्वयंवर में पति का वरण करने वाली प्रतिभा की विवाहविधि इस से पहले पूरी न की गई है। इस लिये दो वेदी बना कर दोनों के सभी मंगल जिस प्रकार विधिपूर्वक पूरे हों ऐसा प्रयत्न कीजिये।" राजा ने उत्तर दिया—"प्रिये, विवाह केवल दो आत्माओं का संयोग-मात्र नहीं होता है। इस से कुलों के परस्पर आचार-विचार, नीति और संस्कृतियां सम्बन्धित होती हैं। इसीलिये बुजुर्ग लोग बड़ी गहराई से सोच कर विवाह के सम्बन्ध का निश्चय करते थे। सोच-विचार कर किया हुआ विवाह का बन्धन कुलों के कल्याण के लिये होता है। बिना विचार के किया हुआ उनकी अवनति का कारण बनता है। प्राग्दक्षिण और पश्चिमोत्तर का यह सम्बन्ध अयोध्या और मिथिला के समागम के समान केवल दो राज्यों को ही नहीं अपितु सारे भारत को प्रभावित करेगा। स्वयंवर में सीता के द्वारा, शिवधनुष भंग के अनन्तर राम का वरण धनुष की टंकार से ही तीनों लोकों में ज्ञात हो गया था परन्तु विवाह विधि को तो जनक ने वहां भी पूरा किया ही था। मिथिला के शतानन्द के समान हमारे पुरोहित अंगिरा दूसरे विद्वानों के साथ दोनों ही राजकुमारियों की विवाह विधि को समान रूप से पूरा करने के लिये प्रयास में लगा है। आप महल के अन्दर के कामों को सुनिश्चित बनाएं" ऐसा कह कर दूसरे काम में लग गया।

फिर राज्य के चतुर कलाकार दो वेदियों के निर्माण में लग गये। सोलह हाथ के बराबर चौकोण भूमि में हीरों

श्चतुरः सकदलीस्तम्भवेणुदण्डानारोप्य तदुपरि परितो रजतदण्डान् विस्तीर्य विपुलप्रकाशहेतवे तेषु देदीप्यमानमणीन् नियोज्य रम्भादलानि स्वर्णपत्रैरावेष्टयामासुः। रौप्यदण्डेषु हीरकजटितवेणुविनिर्मितप्रसारितपक्षकलापूर्णमयूरा निष्प्राणाअपि पवनसंगत्या प्राणवन्त इव लघुनृत्यमकुर्वन्।

अनुभूतस्वयंवररसा प्राप्तपूर्वपतिपरिचया प्रतिभा न सखीनां तथा लक्ष्यं यथा सुषमा। काचित्तस्याः करयोरलक्तकमकरोत्। अपरा रत्नैः केशानभूषयत्। तृतीयाक्षोटत्वचा तदोष्ठयो रक्तिमानमसाधयत्। चतुर्थी वस्त्रधारणकलाम् अशिक्षयत। ऊढसहचर्यः प्रतिभासुषमे वेदीव्यवहारमवदन्।

सकलमङ्गलप्रदगोधूलिलग्नोदये गुरुणांगिरसाज्ञप्तोभद्रसेनः सकुमारमहासेनं प्रासादमामंत्रयामास। महासेने भद्रासनलंकुर्वति प्रतिभाधर्मभ्राता धर्मसेनो[1]रक्तसूत्रबद्धकरांगुष्ठं सूर्यकेतुं मंडपं प्रवेशयामास। ततोऽपरसखीसमन्विता मनोरमा विविधभूषणालङ्कृतप्रतिभां वेदीं समानैषीत्। रतिकामापरपर्यायोभयच्छविः स्थलशोभामवर्धयत। मंडपस्थहोमकुण्डानलः सूर्यकेतुप्रक्षिप्ताहुतिं मूर्तिमानिव जग्राह। नभोविचरद्धोमगन्धमाघ्रातुं तारामण्डलं निकटतामिवाभजत्। भद्रसेनवामाङ्गस्थवसुमती शिवोमापरिणये हिमालयवामाङ्गभाजा मेनेव व्यराजत। लाजाहुतिपरिक्रमणमनु वधूवरौ विद्वत्प्रकीर्तितगृहस्थधर्मोपदेशानमलदर्पणं प्रतिविम्बमिव स्वमनसि सादरं जग्रहतुः।

एवं ज्येष्ठदुहितुः संपादितलग्नविधी राजदम्पती-ऋषिमण्डलमाश्रमादाश्रममिव सुषमावेदीमण्डपं प्रविविशतुः। वेदमंत्रध्वनिर्नभोऽपूरयत्। [2]वरवधूप्राकृतिकसुषमा रत्नालोकितमण्डप-

1. रक्तेति-रक्तसूत्रेण बद्धः दक्षिणकरस्य अंगुष्ठः यस्य तम्।
2. वरेति-वरवध्वोः स्वाभाविकशोभा।

से जड़े केले के खम्भों के साथ चार बाँस गाड कर उसके ऊपर चारों ओर चांदी के डंडे फैला कर तीव्र प्रकाश के लिये उन में प्रकाशमान मणियों को लगा कर केले के पत्तों को स्वर्ण पत्रों से लपेट दिया। चाँदी के डंडों पर हीरों से जड़े बाँस से बने फैलाए परों वाले मोर प्राणहीन होते हुए भी वायु की संगति से प्राणवान जैसे हल्का नाच कर रहे थे।

स्वयंवर का रस जिसे अनुभव हो चुका था और जो पति का पहले परिचय पा चुकी थी ऐसी प्रतिभा सखियों की बैसी लक्ष्य न थी जैसे सुषमा। कोई उसके हाथों में मैंहदी लगा रही थी। दूसरी रत्नों से केशों को सजाती थी। तीसरी अखरोट की छाल से उसके होठों में लालिमा बनाती थी। चौथी वस्त्र पहनने की कला सिखाती थी। विवाहित सखियां प्रतिभा और सुषमा को वेदी का व्यवहार बताने लगीं।

सब प्रकार के मंगल देने वाले गोधूलि लग्न के आने पर गुरु अङ्गिरा की आज्ञा से भद्रसेन ने राजकुमारों के साथ महासेन को महल में बुलाया। महासेन के भद्रासन पर बैठ जाने पर प्रतिभा का धर्मभाई धर्मसेन लालसूत्र से बंधे हाथ के अंगूठे वाले सूर्यकेतु को मंडप में ले आया। फिर दूसरी सखियों के साथ मनोरमा अनेक प्रकार के भूषणों से सजी हुई प्रतिभा को वेदी में ले आई। रति और काम ही जिन दोनों का दूसरा पर्याय था ऐसे प्रतिभा और सूर्यकेतु की कान्ति स्थल की शोभा को बढाने लगी। मंडप के होमकुंड की आग मानों जैसे शरीर धारण करके सूर्यकेतु के द्वारा दी गई आहुति को ग्रहण कर रही थी। आकाश में विचरण करते हुए होम की सुगन्ध को सूंघने के लिये मानों तारामण्डल समीप जैसे आने लगा। भद्रसेन के बाएं बैठी हुई वसुमती शिव-पार्वती के विवाह में हिमालय के वाम भाग में बैठने वाली मेना के समान शोभा दे रही थी। लाजा आहुति के फेरों के बाद वर-वधू विद्वानों से बताये गये गृहस्थ धर्म के उपदेशों को निर्मल दर्पण प्रतिबिम्ब को जैसे अपने मन में आदर के साथ ग्रहण कर रहे थे।

इस प्रकार बड़ी लड़की की लग्नविधि को निपटा कर राजा और रानी ऋषिमण्डल जैसे एक आश्रम से दूसरे आश्रम को, सुषमा की वेदी में प्रविष्ट हो गये। वेदमन्त्रों की ध्वनि से आकाश भर गया। वर-वधू की स्वाभाविक शोभा रत्नों से प्रकाशित मण्डप की कान्ति

द्युतिं दीपालोकितस्थलस्य विद्युद्दीप्तिरिव द्विगुणामदर्शयत्। बर्हिः परिक्रमतोश्चन्द्रकेतुसुषमयोर् मणिजटितस्तम्भसंलग्नप्रतिबिम्बे स्वलावण्यचौरगवेषणतत्परौ[1] रत्यनङ्गाविवालक्ष्येताम्। सुषमाकेशेवशे सिन्दूरं पूरयँश्चन्द्रकेतुरुदीयमानभास्करारुणतां[2] किरणकरैराहृत्य क्षितिजमण्डपस्थोषा[3]वधूमस्तके निवेशयन् सुधाकर इव शुशुभे। सप्तर्षिमण्डलं वरवधूभ्यामाशीर्वादं दातुमिव नभस्युदीय तुषारबिन्दुमिषेणामृतवर्षणमिवाकरोत्। ध्रुवस्तयोः सौभाग्यनिश्चलतामाशंसमान इवानिमेषं समैक्षत। मण्डपं परितः गीतपरायणयुवतिमकराकृतिकुण्डलानि नभसि खगा इव निराधारमनृत्यन्। एतन्मंगलवेलाजनितस्य राजदम्पतिप्रमोदस्य सागरतटस्येव पारो नालक्ष्यत।

एवं राजकुमारीविवाहविधिनिष्पादनमनु वरानुयायिनो भोजनायाऽऽमंत्र्यन्त। परिवेषितारो रजतपात्रेष्वेकशतं पक्वान्नानि परिवेष्य केतकीगन्धमिश्रितविविधपेयरसानुपाहृत्य नारंगदाडिमसहकारफलानि समार्पयन्। वरानुयायिनो लब्धादेशाः पूर्वमाचम्य युगपत्प्रारभमाणाः शिष्टतामदर्शयन्। भोजनमनु स्थलपद्मपुष्परसमिश्रितकवोष्णसलिलप्रक्षालितकरा उपहारीकृतताम्बूलानि चर्वयन्तो जनावासं प्रति निवर्तमाना अतिथय आतिथ्यं प्रशंसन्तआस्वदितपदार्थानां विविधतां, रसवत्तां पाचकानां च दाक्ष्यं वर्णयामासुः।

ततो महाराजमहासेनेन मंत्रणार्थी भद्रसेनः सचिवांस्तदायोजनार्थमादिदेश। राज्ञो मनोगतं विज्ञाय विज्ञसचिवाः क्षणेष्वेव समितिभवनं सुव्यस्थितं व्यदधुः। मंत्रिभिरनुगम्यमानौ महासेनभद्रसेनौ अवधेशमिथिलेशवद्व्रजतकपाटालङ्कृतमागन्तुकान्द्रष्टुमिव प्रसारितवातायननयनं मंत्रणाकक्षं प्रविविशतुः।

ततो भद्रसेनो महासेनमुवाच—"महाराज। दशरथमिव भवन्तं

---

1. रत्यनंगौ—रतिकामदेवौ।
2. किरणेति—किरणा एव करास्तैरादाय।
3. उषा—ओषति, उषेः कर्तरि वाहुलकात्काप्रत्यये कित्वाद्गुणाभावे च उषा। उषा एव वधूः उषावधूः तस्याः मस्तके।

को उसी प्रकार दुगुना बनाने लगे जैसे दीपक के प्रकाश वाले स्थल की शोभा को बिजली का प्रकाश बढ़ाता है। आग की प्रदक्षिणा करते हुए चन्द्रकेतु और सुषमा के मणियों से जड़े खंभों में पड़ने वाले प्रतिबिम्ब (परछाईयां) ऐसे प्रतीत होते थे मानों रति और कामदेव अपनी सुन्दरता को चुराने वाले चोरों की खोज में वहां आए हों। सुषमा के सीमन्त में सिन्दूर चढ़ाता हुआ चन्द्रकेतु इस प्रकार शोभा दे रहा था मानों चान्द, चढ़ते हुए सूर्य की लाली को अपनी किरणों के हाथों से ले कर क्षितिज के मण्डप में बैठी हुई उषा रूपी वधू के मस्तक पर चढ़ा रहा हो। सप्तर्षि-मण्डल मानों वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिये आसमान में आकर ओस के बिन्दुओं के बहाने से अमृतवर्षा जैसे करने लगा। ध्रुव उन के सौभाग्य की निश्चलता की कामना करता हुआ बिना पलक के देख रहा था। मण्डप के चारों ओर गीत गाती हुई युवतियों के मगरमच्छ की आकृति के कुण्डल आसमान में पक्षियों के समान बिना आधार के नाच रहे थे। इस मंगलबेला से पैदा हुए राजा-रानी के हर्ष का समुद्र के तट के समान कोई अन्त न था।

इस प्रकार राजकुमारियों की विवाह-विधि के पूरा होने के बाद बरातियों को भोजन के लिये बुलाया गया। परोसने वालों ने चांदी के पात्रों में एक सौ एक पक्वान्न परोस कर केबड़े के गन्ध वाले अनेक पीने योग्य रसों का उपहार देकर संगतरा, अनार और आम के फलों को दिया। बरातियों ने आज्ञा पा कर आचमन करके इकट्ठे ही आरंभ करते हुए अपनी सभ्यता का परिचय दिया। भोजन के बाद गुलाब जल मिले कोसे पानी से धुलाए हुए हाथों वाले, दिये हुए पान को चबाते हुए जनावास को लौटते हुए अतिथि, अतिथि-सत्कार की प्रशंसा करते हुए खाये हुए पदार्थों की अनेकता, रसपूर्णता और रसोइयों की चतुराई का वर्णन करने लगे।

फिर महाराज महासेन से मंत्रणा की इच्छा वाले भद्रसेन ने मंत्रियों को इस का प्रबन्ध करने के लिये कहा। राजा के मन की बात को जान कर बुद्धिमान मंत्रियों ने कुछ ही क्षणों में समिति भवन में इसकी व्यवस्था कर दी। दोनों राजा, दशरथ और जनक के समान मंत्रियों के साथ चांदी के किवाड़ों से सजे हुए मानों आने वालों को देखने के लिये ही फैलाई हुई खिड़की रूपी नेत्रों वाले मंत्रणाकक्ष में प्रविष्ट हो गये। तब भद्रसेन ने महासेन को कहा—"महाराज दशरथ के समान आप जैसे

सम्बन्धिनमधिगत्य महती मे प्रसन्नता । न जाने प्राक्तनजन्मनः कस्य शुभकर्मणः फलमिदं मयालभ्यत । धन्यो महाराजो येनैवंविधसकलगुणनिधी शस्त्रशास्त्रपारंगतकुमारौ किञ्चिज्जटिलं तपस्तप्त्वाऽवाप्येताम् । विदितमेव भवतां यन्मे न कोऽपि सुतः । अतो भवदनुमत्या सूर्यकेतोः स्कन्धयोर् विन्यस्तराज्यभारो वानप्रस्थं प्रविविक्षामि । भद्रसेनार्थवद् वचः श्रुत्वा महासेनोऽब्रवीत्-"राजन् ! महतां निखिलपुण्यलक्षणानि भवत्सु वर्तन्ते ये स्वयं प्रशंसनीयचरितं धारयन्तोऽप्यपरान् प्रशंसन्ति । भवन्तो मत्तोऽधिकतरं भाग्यशालिनो येषां द्वारमहं भिक्षुकवत्समायातः । उदितं मे भाग्यं भवद्राज्यपावनरजःस्पर्शमाप्तुम् । सफलं मे जन्म वः पावनदर्शनैः । कन्यापितॄणामृणाद्वरपक्षीयाः कदाप्यानृण्यं लब्धुं न पारयन्ति येषां पुण्याशीर्वादैरपरकुलानि वर्धन्ते । श्रीमतां कन्याद्वयमिषेणाष्टौ सिद्धयो मे द्वारं प्रवेक्ष्यन्तीति भवन्तः स्वामिनोऽहञ्च सेवकः । आवयोः संगठनामिका नीतिः, समाना शासनपद्धतिस्त्यागभावश्च लोहवद्दृढं धारयते राष्ट्रमिदम् । साम्प्रतमुभयकुलसम्बन्ध आयसश्रृंखला सेतुमिव भारतैकतां पूर्वतोऽपि दृढतरां व्यदधात् । न कापि शक्तिर्देशमिमं विघटितुं शक्ष्यते । उभावपि राजकुमारौ भवदीयौ । नाहं भवतां मनोरथेऽन्तरायो भवितुमीहे । ज्येष्ठः पश्चिमोत्तरं कनिष्ठश्च प्राग्दक्षिणं प्रशासिष्यति । चिरपरित्यक्तजन्मस्थलः सूर्यकेतुः कतिपयमासान् प्रासादे नीत्वाऽत्र प्रत्यावर्तिष्यते ।" महासेनस्य विनीतवचनानि निशम्य भद्रसेनो दुहित्रोर्भाविसुखमाकलयन् स्वीयामोदमश्रुभिरभिव्यंजयामास । एवं मंत्रणां विधाय भद्रसेनः सदनं महासेनश्च जनावासं प्रययौ ।

अथापतत्प्रस्थानवेला प्रतिभा - सुषमयोः । कुमारीवियोगविकलामश्रुक्लिन्नकपोलां वसुमतीमपरनार्यः 'कन्या परकीयं धन' मिति

सम्बन्धी को पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। प्रतीत नहीं पूर्वजन्म के किस शुभकर्म का फल मुझे मिला है। महाराज धन्य हैं जिन्होंने इस प्रकार सब गुणों से युक्त शस्त्र-शास्त्र विद्या के पार पहुंचे हुए कुमारों को कोई कठिन तपस्या करके पाया है। आप को प्रतीत ही है कि मेरा कोई पुत्र न है। इस लिये आप की अनुमति से सूर्यकेतु के कन्धों पर राज्यभार देकर वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहता हूं।

भद्रसेन के साभिप्राय वचन को सुनकर महासेन बोला—'राजन, बड़े लोगों के सब पुण्य लक्षण आप में पाये जाते हैं जो स्वयं प्रशंसनीय चरित्र को धारण करते हुए भी दूसरों की प्रशंसा करते हैं। आप मुझ से भी अधिक भाग्यशाली हैं जिनके द्वार पर मैं भिखारी के समान आया हूं। आप के राज्य की पवित्र धूलि का स्पर्श करने के लिये मेरे भाग्य का उदय हुआ है। आप के पुण्य दर्शनों से मेरा जन्म सफल हो गया है। वर पक्ष के लोग कन्या के माता-पिता के ऋण से कभी मुक्त न हो सकते हैं जिनके पुण्य आशीर्वाद से दूसरों के कुल की वृद्धि होती है। आप की दो कन्याओं के बहाने से आज आठ सिद्धियां मेरे द्वार में प्रवेश करेंगी। इस लिये आप स्वामी है और मैं सेवक हूं। हमारी संगठनपूर्ण नीति, एक समान शासनपद्धति और त्यागभाव इस राष्ट्र को लोहे के समान दृढ़ता से धारण कर रहा है। अब दोनों कुलों के सम्बन्ध ने भारत की एकता को लोहे के संगल पुल को जैसे पहले से भी पक्का बना दिया है। अब कोई भी शक्ति इस देश का विघटन न कर सकती है। दोनों ही राजकुमार आप के ही हैं। मैं आपके मनोरथ में बाधा न डालना चाहता हूं। बड़ा पश्चिमोत्तर पर और छोटा प्राग्दक्षिण पर शासन करेगा। चिरकाल से छोड़े हुए जन्म-स्थान वाला सूर्यकेतु कुछ महीने महल में बिता कर यहां लौट आएगा।" महासेन के नम्रता भरे वचनों को सुन कर भद्रसेन कन्याओं के भावी सुख को समझता हुआ अपने महल को और महासेन जनावास को चला गया।

अब प्रतिभा और सुषमा का जाने का समय आ गया। कुमारियों के वियोग से व्याकुल आंसुओं से भीगे कपोल वाली वसुमती को दूसरी स्त्रियां "कन्या पराया ही धन होता है"

प्रबोध्याश्वासयामासुः । वृद्धमहिलाः श्वशुरसदनप्रियतामाप्तुं प्रतिभा-सुषमे एवंविधशिक्षां व्याजह्रुः :—"कोपो विषवत्त्याज्यः । मधुरता निदाघे[1] आतपापनयनाय छायावदाश्रयणीया । सहनशीलता वर्षाम्बुवारणाय छत्रमिव धारणीया । धैर्यं शरदि शीतलाघवायोर्णावस्त्रमिवालम्बनीयम् । आलस्यं विडालोच्छिष्टदुग्धमिव परिहेयम् । पिशुनता पङ्कवत्परिवर्जनीया । गुणाः स्वादुफलानीवाहरणीयाः । अवगुणाः [2]पूतिगन्धिभोजनमिव परित्याज्याः । चरितं चर्यया कदल्या, बीजं त्वचा यथा सर्वतो रक्षणीयम् । श्वशुरौ देववद् वन्दनीयौ । पतिः सीतया राम इवाराध्यः ।" उभे कुमार्यावुपदेशानिमान् मानसेऽलङ्करणमिवाधारयताम् । सख्यः प्रथमं प्रतिभां ततश्च सुषमामालिलिङ्गुः । भद्रसेनः शकुन्तलावियोगे कण्व इव विकलमता अवर्षन् पयोदः सलिलं यथान्तरेवाश्रूणि पिबन् लोकसमक्षं महाराजपदमर्यादामपालयत् ।

ततो महासेनः सपुत्रवधूकः स्वराज्यं प्रचचाल । महाराजरथमनु तनयवधूस्यन्दनद्वयं शुशुभे । रथत्रयीनियुक्ता एकवर्णा अष्टादशाश्वा सारथींगितं विज्ञाय पवनवेगेन दधावुः । उभे अपि राजकुमार्यौ हंसी मृणालसूत्रमिव पितृहृदयं कर्षन्त्यौ नयनागोचरतां प्रययतुः । वरयात्रिणः पश्चिमोत्तरराज्यस्याविस्मरणीयस्मृतिभिःसह स्वराज्यं निववृतिरे ।

पद्मावतीप्रमोदस्य नासीत्कश्चित्पारावारः । एकापि चन्द्रवदनी वधूः श्वशुरकुलप्रमोदहेतुर्यत्र [3]युगपत्सुमुखीद्वयसंयोगस्तस्य किं वर्णनम् । महिषी चिरवियुक्तपुत्रद्वयसंयोगान्वितवधूयुगलावाप्तौ संगरलब्धविजयः पदवृद्धिसभाजितोऽशोकचक्रपुरस्कारालंकृतश्च सैनिको यथाऽमन्दानन्दसन्दोहमभजत् । सकलापि कुमुद्वती वधूद्वयं सत्कतुं स्वयमपि नवोढेवालङ्कृतातिष्ठत् । विविधरागरञ्जितासु सदनभित्तिषु-[4]अमुकुरमाननानि निरीक्षमाणा हर्षपूरितमानसा जनाः पदद्वयान्तरालमेकपदेनैव प्रपूरयन्तः

---

1. आतपेति-आतपदूरीकरणाय ।
2. पूतिगन्धीति-पूय्यते इति पूतिः दुष्टः गन्धोऽस्येति पूतिगन्धिः ।
   "पूतिगन्धिस्तु दुर्गन्धो विस्रं स्यादामगन्धि यत्" (इत्यमरः)
3. युगपत्-एकस्मिन्नेव समये ।
4. अमुकुरं-दर्पणं विना ।

ऐसा समझा कर उसे सांत्वना देने लगी। बूढ़ी महिलाएं ससुराल के घर में प्यार पाने के लिए प्रतिभा और सुषमा को इस प्रकार की शिक्षा बताने लगीं—"क्रोध को विष के समान छोड़ देना। मिठास को गर्मी की ऋतु में धूप से बचने के लिये छाया के समान धारण कर लेना। सहनशीलता को वर्षा के पानी से बचने के लिए छाता के समान धारण कर लेना। धीरज का सरदी में शीत हटाने के लिये ऊन के वस्त्र के समान आश्रय ले लेना। आलस्य को बिल्ले के जूठे दूध के समान त्याग देना। चुगली की आदत से कीचड़ से जैसे दूर ही रहना। गुणों को मीठे फलों के समान प्राप्त कर लेना। अवगुणों को सड़े हुए भोजन के समान त्याग देना। चरित्र की अपनी चर्या से उसी प्रकार रक्षा करना जैसे केला, बीज की छिलके से सब ओर से रक्षा करता है। सास-ससुर को देवता के समान समझना। पति की सीता द्वारा राम की जैसे आराधना करना"। दोनों राजकुमारियों ने इन उपदेशों को अपने मन में भूषण के समान धारण कर लिया। सहेलियां पहले प्रतिभा से और फिर सुषमा से मिलीं। शकुन्तला के वियोग में कण्व के समान विकल मन वाले भद्रसेन ने न बरसने वाला बादल जैसे पानी को अन्दर ही अन्दर रख छोड़ता है, आंसुओं को पीते हुए लोगों के सामने महाराज के पद की मर्यादा का पालन किया।

फिर महासेन पुत्र और बहुओं के साथ अपने राज्य को चल पड़ा। महाराजा के रथ के पीछे पुत्र और बहुओं के दो रथ शोभा दे रहे थे। तीन रथों में जुते हुए एक ही रंग के अठारह घोड़े सारथियों के संकेत से वायु के वेग से दौड़ने लगे। दोनों राजकुमारियां हंसी मृणाल सूत्र को जैसे माता-पिता के हृदय को खींचती हुई आंखों से ओझल हो गईं। वरयात्री पश्चिमोत्तर राज्य की न भूलने वाली स्मृतियों के साथ अपने राज्य को लौट गये।

पद्मावती की प्रसन्नता का कोई अन्त न था। चन्द्रवदनी एक भी बहू ससुर कुल के लिये हर्ष का कारण होती है जहां एक ही समय में दो सुमुखियों का संयोग हो उसका तो कहना ही क्या। पद्मावती चिरकाल से वियुक्त दोनों पुत्रों के संयोग के साथ बहुओं के जोड़े की प्राप्ति पर युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले पदोन्नति से सत्कृत और अशोकचक्र पुरस्कार से विभूषित सैनिक के समान अवर्णनीय आनन्द को प्राप्त हुई। सारी कुमुद्वती दो बहुओं का सत्कार करने के लिए स्वयं भी नई दुल्हन के समान सजी हुई थी। अनेक प्रकार के रंगों से रंगी हुई घर की दीवारों में बिना दर्पण के मुखड़ों को देखते हुए लोग दो कदमों के अन्तराल को एक ही कदम

सगर्वं राजप्रासादमाव्रजन् । अप्सरस इवालङ्कृतयुवतयो वधूभ्यामुपाहर्तुं दधिपात्राणि सुसज्जयामासुः । भानुरश्मयः सन्देशवाहका इव रथाभ्यर्णतां विज्ञाप्य विहितकार्या यथाऽदृश्या भवितुं प्रारेभिरे । रथघर्घरध्वनिर्, गजगर्जनं तुरंगमह्लेषणञ्च जनमानसचपलतां क्षणं क्षणमवर्धयन्त । सकलपुरवासिनः प्रत्यागतजनसमुदाये सूर्यकेतुं कर्कचतुर्थीव्रतपारणोद्यतललनास्तारामण्ले विधुमिव समीक्षितुमुत्सुकतां भेजिरे । प्रासादमुख्यद्वारे समायातेऽवगतसारथिसंकेताश्वा गतिमवरुरुधुः । गीतमुखरसौभाग्यशीलमहिलानुस्त्रियमाणमहिषी भर्तुः पादौ प्रणम्य सतनयवधूभ्यां मधुरपिच्छलं दधि प्राशयित्वा जमदग्निसमुच्चारितवेदमंत्रपाठपूर्वकं युगलद्वयं प्रासादान्तः नीत्वा सकलकुलाचारानपालयत् । राज्यमनोरथपूर्तिमिव व्यञ्जयंल्लोकानन्दकरो मंगलोत्सवोऽयं मासमेकं प्राचलत् ।

अथैकदा महासेनो रहसि कुमारावाहूयोवाच—"पुत्रौ ! ज्ञातसकलवृत्तयोर्भवतोर्न किमपि प्रज्ञापरोक्षम् । तथापि पितृधर्मं [1]निर्वोढुं भवन्मार्गदर्शनाय मया किञ्चिद् वक्तव्यमेव । जानीतो भवन्तौ यदहं कनिष्ठे राज्यभारं निक्षिप्य वानप्रस्थे प्रवेष्टुकामो भवामि । उतश्चैतत्काम एव भद्रसेनोऽपि सूर्यकेतुमुत्तराधिकारिणं चिकीर्षति । भवन्तौ राज्यधुरं तथा वहेतां यथा देशोऽयं सकलसंसारे दिवाकरप्रभामिव बहुसहस्रवर्षैः संसृतिपरिचितगुरुपदवीं पूर्वतोऽपि शतगुणं समलङ्कुर्यात् । पूर्ववयस्येवानुभूतविविधाभीलयोः सर्वशास्त्रनिष्णातयोर् निसर्गत एव भारतीयसंस्कृतिसमनुगतयोर् गुणगणमलङ्करणमिव बहतोश्चरिते धवलयोर्भवतोर्न बहूपदेष्टव्यं तथापि वनं विव्रजन्नहं न मे कर्तव्याच्च्युतः स्यामिति मुखरितोऽहं किञ्चिद् भणितुम् ।

1. निर्वोढुं—पूरयितुम् ।
2. आभीलं कष्टम् । "स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्" (इत्यमरः)

से पूरा करते हुए बड़े गर्व के साथ राजमहल को आने लगे। अप्सराओं के समान सजी हुई युवतियां बहुओं को उपहार देने के लिये दही के पात्रों को सजाने लगीं। सूरज की किरणें सन्देश लाने वाले के समान रथों की निकटता को बता कर मानों अपने काम को पूरा करके छिपने लग पड़ीं। रथों की घर्घर ध्वनि, हाथियों की चिंघाड़ और घोड़ों की हिनहिनाट पल-पल में लोगों के मन की चपलता को बढ़ा रहे थे। सभी नगरवासी आये हुए लोगों के इकट्ठ में सूर्यकेतु को देखने के लिये उसी प्रकार उत्कंठित थे जैसे करुआचौथ की व्रतधारणा के लिये तैयार महिलाएं तारामण्डल में चांद को देखने के लिये अधीर हो जाती हैं। महल के मुख्य द्वार के आने पर सारथियों के इशारे को समझ कर घोड़े रुक गये। गीत गा रही सुहागिन महिलाओं के साथ आई रानी ने पति के चरणों में प्रणाम किया और पुत्रसहित बहुओं को मीठा और गाढ़ा दही खिला कर गुरु जमदग्नि से उच्चारण किये हुए वेदमंत्रों के पाठ के साथ दोनों जोड़ों को महल के अन्दर ले जा कर सभी कुलाचारों का पालन किया। मानों जैसे सारे राज्य का मनोरथ ही पूरा हो गया हो ऐसा प्रकट कर रहा लोगों को आनन्द देने वाला यह मंगलोत्सव एक महीना तक चलता रहा।

इसके बाद एक बार महासेन ने कुमारों को एकान्त में बुला कर कहा, "पुत्रो ! सभी प्रकार के वृतान्त को जानने वाले आप की बुद्धि से कुछ छिपा हुआ न है। तो भी पिता का धर्म निभाने के लिये मुझे कुछ कहना ही है। आप को प्रतीत ही है कि मैं छोटे 'चन्द्रकेतु' पर राज्य का भार छोड़ कर वानप्रस्थ में जाना चाहता हूं। उधर इसी इच्छा से भद्रसेन भी सूर्यकेतु को उत्तराधिकारी बनाना चाहता है। आप दोनों राज्य के भार को इस प्रकार धारण करो जैसे यह देश सारे संसार में सूर्य की कान्ति के समान हज़ारों वर्षों से संसार द्वारा जानी पहचानी गुरुपदवी को पहले से भी सौ गुणा अलंकृत करे। पहली आयु में ही भोगे हुए अनेक कष्टों वाले, सारे शास्त्रों को जानने वाले, स्वभाव से ही संस्कृति पर चलने वाले गुणों को भूषण के समान धारण करने वाले, निर्मल चरित्र वाले आप को बहुत उपदेश देने की आवश्यकता न है परन्तु फिर भी वन को जाता हुआ मैं अपने कर्त्तव्य से पिछड़ा न रहूं इस लिये कुछ कहने को तैयार हुआ हूं।

"[1]यौवनोन्मादतमोविलुप्तविवेकश्चरितवानपि नृपः प्रच्यवति सत्पथः पादपारोहण-कलानभिज्ञो यथा तरुशिखरात् । नभोगतकन्दुकं भूमिगुरुत्वाकर्षणविवशं भुवि यथा, यौवनाविष्टसंयमवानपि नृप इन्द्रियाकर्षणविवशः पतति विषयेषु । अथ चोग्रसेनसुतः कंसो, हिरण्यकशिपुतनयः प्रह्लादो, रावणसहोदरो विभीषणः सर्वविदितः । एवं वंशपरम्परापि सापवादा चरितसंपदि । सलिलवर्षणसुखदमेघेभ्यः कदाचित्फलसस्यघ्ना वर्षोपला अपि संजायन्ते । परमनले तापवत्, सागरे तरंगवत्, भास्करे प्रकाशवत्, चन्द्रे चन्द्रिकावत् चन्दने च गन्धवद् विगत-सन्देहोऽहं भवदाचरणे । भवन्तावुपदेशस्थलं मत्वैव मयाऽभिधीयते । उर्वरधरातलोप्तबीजमेवाङ्कुरायते । अनुर्वरक्षिप्तस्य को लाभः । प्रयाणाभिमुख-रोगिणस्तन्द्रेव राजलक्ष्मीर्जनयति राज्ञो नयनयोस्तिमिरत्वमिव । एवं धनोन्मादतैमिरिकरोगाक्रान्तास्ते सकलं विपरीतमेव पश्यन्ति । असाधुं साधुमनाचारमाचारं भ्रष्टाचारं सदाचार, मनीतिं नीति, मसत्यं सत्यं निन्दां च स्तुतिं बुध्यन्ते । जीवातोः क्षणविश्वासाभावेऽपि सहस्रवर्षमितमर्थं संग्रहीतुकामा वचसा भारतीयसंस्कृते रागमालपन्तः कर्मणा तद्विरुद्धमाचरन्तोऽपि न सङ्कोचमावहन्ते । एवं ग्रहैर्गृहीता भूतैरभिभूता इवात्महितमेव लोकहितं मन्यन्ते । स्वार्थग्रहग्रस्तैः कूटनीतिपरायणैरपरैरसत्यस्तुतिभिः स्तूयमानास्तेषां कपटपाटवमबुध्यमानाः प्रदोषे प्रकाशमिव स्वगरिमाणं लघयन्ति । अतः पुत्रौ, भवन्तौ तथा प्रयतेतां यथा भारतयशो दिवसपरार्धच्छायेवाविरतं वर्धेत । पूर्वजपरम्परा विलुप्ता न स्यात् । कोऽप्यान्तरिको बाह्यो वा पिपुर्देवभूमिमिमां मलिनाक्ष्णा न पश्येत् । मातृभूमिखण्डनं मातृशरीरच्छेदादपि महत्तरवेदनाकरम् ।

1। यौवनेति-यौवनोन्मादस्य तमसा विलुप्तो विवेको यस्य सः ।

जवानी के उन्माद के अन्धेरे से ढके ज्ञान वाला चरित्रवान भी राजा अच्छे रास्ते से उसी प्रकार गिर जाता है जैसे वृक्ष पर चढ़ने का ज्ञान न रखने वाला मनुष्य पेड़ के शिखर से गिर जाता है। आसमान में गया गेंद भूमि के गुरुत्वाकर्षण से विवश हुआ धरती पर जैसे जवानी में प्रविष्ट हुआ संयम वाला भी राजा इन्द्रियों के आकर्षण से बेबस हुआ विषयों में गिर जाता है। फिर सब को ज्ञात है कि उग्रसेन का पुत्र कंस हुआ, हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद हुआ और रावण का भाई विभीषण हुआ। इस प्रकार चरित्र की संपत्ति में वंशपरम्परा भी सत्य को पार कर जाती है। पानी बरसाने से सुखदायक बादलों से कभी कभी फल और खेती को नष्ट करने वाले ओले भी पैदा होते हैं। परन्तु आग में ताप के समान, समुद्र में तरंग के समान, सूरज में प्रकाश के समान, चान्द में चान्दनी के समान और चन्दन में सुगन्ध के समान आप के आचरण में मुझे कोई संदेह न है। आप को उपदेश का स्थान मान कर ही मैं कह रहा हूं। उपजाऊ भूमि में बोया बीज ही अंकुर देता है। बंजर में फेंके हुए बीज का क्या लाभ है। मरने को तैयार रोगी की तन्द्रा के समान राजलक्ष्मी राजा के नेत्रों में अन्धेरा जैसा पैदा कर देती है। इस प्रकार धन के उन्माद रूपी तैमिरिक रोग से ग्रस्त हुए वह सब कुछ उल्ट ही देखते हैं। बुरे को भला, अनाचार को आचार, भ्रष्टाचार को सदाचार, अनीति को नीति, असत्य को सत्य और निन्दा को स्तुति समझते हैं। जीवन का पल भर का विश्वास न होने पर भी हजारों वर्ष के लिये धन इकट्ठा करने में लगे हुए, वचन से भारतीय संस्कृति का गीत गाते हुए, कर्म से उस के विरुद्ध आचरण करते हुए संकोच न करते हैं। इस प्रकार ग्रहों से पकड़े हुए और भूलों से जकड़े जैसे अपनी भलाई को ही लोगों की भलाई मानते हैं। स्वार्थ के ग्रह से ग्रसे हुए, कूटनीति पर चलने वाले दूसरों से झूठी स्तुतियों द्वारा प्रशंसा किये जा रहे उन की कपटकुशलता को न जानते हुए सायंकाल में प्रकाश को जैसे अपनी गरिमा को नीचे लाते हैं। इसलिये पुत्रो, आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे भारत का यश दिन के दूसरे भाग की छाया के समान लगातार बढ़ता जाय। पूर्वजों की परम्परा नष्ट न हो। कोई भी अन्दर का या बाहर का शत्रु इस देवभूमि को मैली आंख से न देखे। मातृभूमि के टुकड़े होना माता के शरीर के कटने से भी अधिक पीड़ादायक है।

श्वो [1]राष्ट्रवामपरिणामसुविधया कमपि वर्गं मा सभाजयताम् । अद्य कृतं श्वः फलति, श्वः कृतं परश्वः परिणमति । वर्तमानाचरितानि तान्येव मंगलानि यानि भविष्यं न दूषयेयुः । लोकसंघट्टवति वाष्पयाने ऽर्धासनोपकृतो जन उपकारिणं शनैः शनैः स्थानभ्रष्टमेव कर्तुमीहते । अंगुल्या सत्कृतो बाहुमेव जिग्रसिषति—एषास्ति लोकरीतिः । अतश्च राजान ऋषय इव सूक्ष्मावलोकिनो योगिन इवान्तर्यामिनः खगवच्च दूरदृष्टयः स्युः । सुरपतिः स्वयं सहस्रै रक्षिभिः राज्यगतं ददर्श । मया समरोपितशुभसंस्कारौ भवन्तौ स्वभावेनैव विज्ञौ धीरौ च । परं राजलक्ष्मीरियं जागरूकमपि कुलीनमपि सत्प्रयासपरायणमपि सन्मार्गात्प्रच्यावयतीति सयुक्तिकं प्रदर्शितं मया भवद्भ्याम् । मया भद्रसेनेन च विधीयमानं नवयौवराज्याभिषेकमंगलमनुभवतां भवन्तौ ससुखम् । सूर्यकेतु महाराजं भद्रसेनं मन्निर्विशेषं पश्यतीति महान् मे सन्तोषः''। एवमुपरतवचसि भूपतौ तदुपदेशवाग्भि रभिषिक्ताविव निर्मलमानसौ कुमारौ पितरं प्रणम्य स्वविश्रामकक्षौ प्रविविशतुः ।[2]

प्रतिभा-सुषमे स्वल्पदिवसेष्वेव स्वानुपमप्रतिभया, वाङ्माधुर्येण, सद्योऽर्थग्राहितया, कार्यकुशलतया, विनयेन, दाक्ष्येण मन्दस्मितेन च प्रासादवासिनां हृदयानि विजिग्युः । उभे अपि प्रातरुत्थाय[3] कृताभिषेके देवानभ्यर्च्य श्वश्रूश्वशुरपादावभिवन्द्य स्वकरणीयं पप्रच्छतुः । तयोर्गुणाकृष्टमन्तःपुरं ते स्वपक्ष्मसूपवेशयितुमिवाकामयत । परिचारिका अहमहमिकयाऽऽदेशमाप्तुं सोत्सुका अतिष्ठन् । पद्मावती वधूद्वयं प्रासादान्तःप्रविष्टाः सकलसिद्धीरिवामन्यत । तयोर्मुखाद्राज्य-व्यवहारवार्ता निशम्य 'एते मे सुतयो राज्यकार्ये सहायके स्थास्यतः' इति मनपि मोदमाना, महिषी वसुमतीमति—

1. राष्ट्रेति—राष्ट्रस्य वामः प्रतिकूलः परिणामः यस्याः सा राष्ट्रवाम – परिणामसुविधा तया ।
2. वाङिति—वाचः माधुर्येण वाङ् माधुर्येण ।
3. कृताभिषेके—कृतस्नाने ।

किसी भी वर्ग को ऐसी सुविधा न दें जिस का परिणाम कल को राष्ट्र के प्रतिकूल जाता हो। आज का किया काम कल को फल देता है। कल का किया परसों को परिणाम दिखाता है। बर्तमान में किये वही काम अच्छे होते हैं जो भविष्य को दूषित न करें। लोगों की भीड़ वाली गाड़ी में किसी का आधे आसन से उपकार किया जाये तो वह उपकारी को धीरे धीरे उसके स्थान से ही वंचित कर देना चाहता है। किसी को उंगली दी जाये तो वह बाजू को ही निगल लेना चाहता है, यही लोकरीति है। इस लिये राजाओं को ऋषियों के समान बारीकी से देखने वाला, योगियों के समान दूसरों के मन की बात को जानने वाला और पक्षी के समान दूर दृष्टि वाला होना चाहिये। इन्द्र स्वयं हजार आंखों से राज्य की गतिविधि को देखता था। मुझ से डाले शुभ संस्कार वाले आप स्वभाव से ही बुद्धिमान और संयमी हैं परन्तु यह राजलक्ष्मी जागरूक को, कुलीन को और अच्छे प्रयास में लगे हुए को भी अच्छे रास्ते से गिरा देती है इसलिये मैंने आप दोनों को युक्ति सहित बता दिया है। मेरे और भद्रसेन के द्वारा किये जा रहे नये यौवराज्य अभिषेक के मंगल का आप दोनों सुख से रसास्वाद लें। सूर्यकेतु महाराज भद्रसेन को मेरे ही समान देखता है इससे मुझे बड़ी सन्तुष्टि है।" इस प्रकार राजा के चुप हो जाने पर उस के उपदेश के वचनों से मानों स्नान किये हुए निर्मल मन वाले राजकुमार पिता को प्रणाम करके अपने अपने विश्रामकक्ष को चले गये।

प्रतिभा और सुषमा ने थोड़े ही दिनों में अपनी अनुपम बुद्धि से, वाणी की मिठास से, जल्दी बात को समझने की कला से, कार्यकुशलता से, नम्रता से, चतुराई से और मुस्कराहट से महल में रहने वालों के दिल को जीत लिया। दोनों ही प्रातः काल उठ कर स्नान करके देवताओं की पूजा करके सास-ससुर को नमस्कार करके अपने काम को पूछती थीं। उनके गुणों से आकृष्ट हुआ रनवास उनको मानों अपने पलकों पर बैठाना चाहता था। परिचारिकाएं एक दूसरे से बढ़ कर उन का आदेश पाने को उत्कंठित रहने लगीं। पद्मावती दोनों बहुओं को महल के अन्दर आई हुई सब सिद्धियां जैसे मानने लगी। उनके मुख से राज्य व्यवहार की बातें सुनकर 'यह राज्य के काम में मेरे पुत्रों की सहायक बनेंगी' इस प्रकार मन में प्रसन्न रानी वसुमती की बुद्धि

कौशलं प्राशंसत् ।

अथातीते मासत्रये वेत्रवत्या भद्रसेनप्रेषितो दूतो भास्करकरा: प्रभातमिव प्रतिभासूर्यकेतू आह्वयितुं समाजगाम । महासेनो दूतमुखात् पूर्वाभासगृतसंदेशं श्रुत्वा सूर्यकेतुमाहूयावादीत्—"जात ! वेत्रवत्या: समागतोऽयं दूतो भवन्तमाकारयितुम् । प्रयाहि भारतापरपर्यायश्वशुरवंशराज्यधुरं वोढुम् । दिनं दिनं वर्धतां ते यशःश्रीः ।" एवं लब्धपित्राशीर्वादो नतशिरसा तातं प्रणम्य मातृचरणदर्शनानन्तरं हर्षविस्फारितलोचनः सूर्यकेतुः प्रतिभामपरदिवसे प्रस्थानाय सज्जीभवितुमादिदेश । महासेनः "उभयत्रैकस्मिन्नेव दिने राज्याभिषेकोत्सवायोजनं स्यादि"ति पत्रांकितभद्रसेनस्पृहां सम्मानयन् जमदग्निं कुलगुरुमाहूय 'अश्विनीत्रयोदशीयुतो गुरुवासरो मेषकुम्भराशिभ्यां श्रेष्ठतमः" इति तस्य वाक्यमादाय निर्णीततिथियुतं पत्रं समागतदूतस्य करेणैव प्राहिणोत् ।

अथ विवाहदिवसमिवाबालवृद्धानन्दप्रदं राज्याभिषेकाहः सन्निधिमकरोत् । महासेनादिष्टसेवकाः, कृषकाः पक्वकृष्याहरण इवाभिषेकोपकरणसंग्रहसंलग्ना अदृश्यन्त । भारतस्य समस्तसागरापगासमाहृतपयसा, सकलदिग्दिगन्तसमानीतमृदा, हिमाचलविंध्याञ्चलाद्यखिलपर्वतसमूहादाहृतरत्नान्वितसर्वौषधिभिश्च राजप्रासादे निखिलराष्ट्रं [1]पुञ्जीभूतमिवालक्ष्यत । ततः कल्पतराविवाखिलसिद्धिसमाहरणक्षमे, भूपतीनां दिग्विजयसूचकाश्विन्यर्क्षे पदं दधति महाराजो महासेनो जमदग्निप्रमुखविद्वद्भिर् विविधवेदमंत्रपाठपूर्वकं वामेतरकरकृतमंगलसूत्रं चन्द्रकेतुं निखिलसामग्रीसंयुतमंत्रपूतरजतकलशस्थवारिणा, पयोदवृन्दो धाराभिर् हिमगिरिशिखरमिवाभिषिषेच । ततश्च मंत्रिणः, कुल-

1. पुञ्जीभूतम्—एकत्रितम् ।

की प्रशंसा करने लगी ।

इसके बाद तीन महीने बीत जाने पर वेत्रवती से भद्रसेन द्वारा भेजा हुआ दूत सूर्य की किरणें प्रभात को जैसे प्रतिभा और सूर्यकेतू को बुलाने के लिये आ गया । महासेन दूत के मुख से पहले आभास वाले संदेश को सुन कर सूर्यकेतु को बुलाकर बोला "पुत्र, वेत्रवती से यह दूत आप को बुलाने के लिये आ गया है । भारत ही जिसका दूसरा नाम है ऐसे ससुर वंश की राज्य धुरा को धारण करने के लिये चले जाइये । तुम्हारी कीर्ति दिन दिन बढ़ती जाये ।" इस प्रकार पिता के आशीर्वाद पा कर सिर झुका कर पिता को प्रणाम करके माता के चरणों के दर्शनों के अनन्तर प्रसन्नता से फैले नेत्रों वाले सूर्यकेतु ने प्रतिभा को अगले दिन चलने के लिये तैयारी करने को कह दिया । महासेन ने "दोनों जगह एक ही दिन राज्याभिषेक उत्सव का आयोजन किया जाना चाहिये" इस प्रकार पत्र में लिखी भद्रसेन की इच्छा का सम्मान करते हुए कुलगुरु जसदग्नि को बुलाकर "अश्विनी त्रयोदशी से युक्त गुरुवार मेष-कुंभ राशि के लिये बहुत अच्छा है" इस प्रकार उस का वचन लेकर निर्णीत दिन को पत्र में लिख कर आये हुए दूत के हाथ ही उस पत्र को भेजा दिया ।

इसके वाद विवाह के दिन के समान बाल-बृद्ध सभी को आनन्द देने वाला राज्याभिषेक का दिन आ गया । महासेन से आज्ञा किये हुए सेवक, किसान पकी खेती को इक्ट्ठा करने में जैसे, अभिषेक की सामग्री का संग्रह करने में लग गये । भारत के सभी समुद्र और नदियों से लाये जल से, सभी दिशाओं से लाई मिट्टी से हिमाचल विन्ध्याचल आदि सभी पर्वतों से रत्नों सहित लाई सर्वौषधियों से मानों सारा राष्ट्र राजमहल में इकठ्ठा जैसा हो गया । फिर कल्पतरु के समान सारी सिद्धियों को लाने में समर्थ, राजाओं को दिग्विजय देने वाले अश्विनी नक्षत्र के आने पर महाराजा महासेन ने जमदग्नि आदि विद्वानों द्वारा पढ़े जा रहे वेद मंत्रों के साथ दाएं हाथ में बांधे हुए कंगणे वाले चांदी की चौकी पर बैठे हुए चन्द्रकेतु का सारी सामग्री मे युक्त मंत्रों से पवित्र चांदी के कलश के जल से, बादलों का समूह धाराओं से हिमालय की चोटी का जैसे अभिषेक कर दिया । राजा के अनन्तर मंत्रियों, कुलबृद्धों और दूसरे बन्धुओं ने

वृद्धा अपरे च बान्धवा श्चन्द्रकेतुशीर्षिण जलधारां न्यपातयन् । महिषी राज्यधुरो धारणाय ज्ञानापरनामतृतीयनेत्रमिव चन्द्रकेतुभाले कुंकुमतिलकं चकार । ततो मंगलश्लोकान् वदन् जमदग्निस्तस्य मूर्ध्नि मुकुटमधारयत् । एवं राजलक्ष्मीर् वर्धमाना लता तरोस्तरुं यथा महासेनं विहाय चन्द्रकेतुं प्रविवेश । ततः सकलं नभो युवराजजयघोषव्याप्तमिवाभवत् । तत्समकालमेव पश्चिमोत्तरेऽङ्गिरसाज्ञप्तो भद्रसेनोऽप्यनेनैव विधिना सूर्यकेतुमभ्यसिञ्चत् । उभयराज्ययोर् घनगर्जितमिव समुत्थितो मंगलापादकदुन्दुभिध्वनिः सहस्रक्रोशानुल्लंघ्य राष्ट्रैकतां द्योतयितुमिव विक्रमादित्यप्रतापानलदीपिते क्षिप्रानभस्तले काञ्चनं काञ्चनेनेवान्योन्यममिलत् ।

षण्मासाननु महासेनश्चन्द्रकेतुमाहूयावदत् "जात! शोभना ते शासनपद्धतिः प्रशस्यश्च राज्यप्रबन्धः । भवतो दूरदर्शिता, विवेकः, विनयः, दाक्ष्य, मनागतविषयाणां पूर्वाभासो, वर्तमानसमस्यासमाधानं, शोभनाऽर्थव्यवस्था, चरितात्मिका शिक्षा, सुचरितसम्मानं, दुर्वृत्तदमनं, बुद्धेः परिपक्वता, व्यवहारकुशलता, अनहंकृतिः, समदृष्टिश्चारचक्षुषा रहस्याहरणमेवंविधगुणाः सर्वविदिताः । लब्धं पदं त्वया जनमानसे । पश्चिमोत्तराद् भद्रसेनः सूर्यकेतुमपि त्वद्विधमेव वर्णयति । [1]एवमपगतनेत्रश्रुतिकलहः, सर्वविधमाश्वस्तः साम्प्रतं कृतमतिरहं रागद्वेषशून्ये वने पदं धर्तुम् । चन्द्रकेतुः प्रत्यवदत्—"तात ! मुक्तबहुसंकटो भवानस्मद्बाल्यकाले । अमावस्याघनान्धकारमनु ज्योत्स्नादीप्तिरिव समागतेयं सुखदवेला भवतामेव तपोयोगात् । एनं सुसमयमनपेक्ष्य भवन्तोऽरण्यवासमभिलषन्तीति दूयते मे चेतः ।" राजोवाच—"पुत्र । सत्यमुक्तं त्वया । परं चेद्राजान एव मर्यादायाः पराङ्मुखास्तदा प्रजैनां कथं पालयिष्यति । 'यथा राजा

1. अपगतनेत्रेति—नेत्राभ्यां चन्द्रकेतोः सकलं सद्वृत्तं प्रत्यक्षमवलोकितं सूर्यकेतोश्च तत्सर्वं कर्णाभ्यां श्रुतम् । एवमपगतो दूरीभूतः नेत्रश्रुत्योश्लोचनकर्णयोः कलहो यस्य सः ।

चन्द्रकेतु के सिर पर जलधारा गिराई। रानी ने राज्यभार को उठाने के लिये, ज्ञान ही जिस का दूसरा नाम है ऐसे तृतीय नेत्र के समान चन्द्रकेतु के मस्तक पर केसर का तिलक लगा दिया। फिर मंगलश्लोकों का उच्चारण करते हुए जमदग्नि ने उस के सिर पर मुकुट रख दिया। इस प्रकार राजलक्ष्मी बढ़ती हुई बेल एक पेड़ से जैसे दूसरे पेड़ को, महासेन को छोडकर चन्द्रकेतु में प्रवेश कर गई। फिर युवराज के जयकार से सारा आसमान भर गया। उसी समय पश्चिमोत्तर में अंगिरा से आज्ञा किये हुए भद्रसेन ने भी इसी विधि से सूर्यकेतु का अभिषेक कर दिया। दोनों राज्यों में बादल की गर्जना के समान उठी हुई मंगल सूचक नंगारे की आवाज़ हजारों कोस पार करके मानों राष्ट्र की एकता को प्रकट करने के लिये ही विक्रमादित्य के प्रताप की अग्नि से प्रकाशमान क्षिप्रा (नदी) के आकाशतल में उसी प्रकार आपस में मिल गई जैसे सोना सोने से मिल जाता है।

छः महीने के बाद महासेन ने चन्द्रकेतु को बुला कर कहा—"पुत्र, तुम्हारा शासन करने का ढंग और राज्य का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। आप की दूरदर्शिता, ज्ञान, नम्रता, चतुराई, आगे आने वाले विषयों को पहले ही समझ लेना, वर्तमान समस्याओं का समाधान, अच्छी अर्थव्यवस्था, चरित्रप्रधान शिक्षा, चरित्रवालों का आदर, दुराचारियों का दमन, बुद्धि की परिपक्वता, व्यवहार को समझना, अहंकार से दूर रहना, सब को समान दृष्टि से पहचानना गुप्तचर रूपी आंख से रहस्य को देखना इस प्रकार के गुण सब को ज्ञात हो चुके हैं। पश्चिमोत्तर से भद्रसेन सूर्यकेतु के बारे में भी ऐसा ही लिख रहे हैं। इस प्रकार आंख और कान के झगड़े से रहित, सब प्रकार से सन्तुष्ट मैं राग-द्वेष से हीन वन में जाने के लिये विचार बनाये हुए हूँ"। चन्द्रकेतु ने उत्तर दिया—"पिता जी, हमारे बचपन में आपने बहुत कष्ट झेले हैं। अमावस्या के घने अन्धकार के बाद चान्दनी के प्रकाश के समान यह सुख का समय आप के ही तपस्या के प्रभाव से आया है। इस सुख के समय को छोड़-कर आप जंगल में जाना चाहते हैं इससे मेरा मन दुखी हो रहा है"। राजा ने कहा "पुत्र, आप ने सच कहा है परन्तु यदि राजा ही मर्यादा का पालन न करें तो प्रजा कैसे पालन करेगी। 'जैसे राजा वैसी प्रजा' यह आदर्श वाक्य सृष्टि से ले कर बिना विवाद

तथा प्रजा' निर्विवादं प्रचलत्यादर्शवाक्यमिदमासृष्टेः । अध्यात्मवादप्रधानैवास्माकं संस्कृतिः संसृतौ गौरवमावहते । ये जना आजीवनं पशवो घासमिव पदं धनञ्च कामयन्ते ते भारतीयसंस्कृतिं छिन्दन्तो राष्ट्रगरिमाणं ह्रासयन्ति । एवंविधजनानां तृष्णा जलोदररोगिणो जठरमिव प्रत्यहं वर्धते । तां शमयितुमेकोऽपरमधोनिनीषुर्, मुमूर्षुः कुपथ्यमपि पथ्यं यथाऽनादरमपि सत्कारं मन्यमानो दन्तेषु गृहीत्वेव पदं दिधीर्षुर् विभिन्नवेषेषु विविधद्वारैर्लाभमादित्सुर् मरीचिकामृग इव संभ्रमन् जीवनं व्यत्येति । मया गृहस्थाश्रमे सुखं भुक्तं दुःखं वा, नायं प्रश्नः । विचारणीयविषयस्त्वयं यदतिक्रान्तगृहस्थावस्थोऽहं साम्प्रतम् । नाधिकारो मे इतोधिकं प्रासादसुखभोगे । लोकनिष्कामसेवैवाधुना मे धर्मः । (महिषीमुद्दिश्य) एषा ते जनन्यपि मामनुसरिष्यति । उतो महाराजो भद्रसेनोऽपि सूर्यकेतौ समर्पितराज्यभारः सभार्योऽचिराद् वनं प्रवेष्टुकामो वर्तते । चन्द्रकेतुः साक्षात्कारमण्डलाप्रत्याशितप्रश्नानाकर्ण्य प्रत्याशीव स्तब्धो भग्नमनाः किमपि वक्तुमक्षमस्तदनुज्ञया स्वकक्षं प्रविवेश ।

अत्रान्तरे स एव शुको महाराजमतं द्रढयितुमिव तत्पुरस्तादुपस्थितोऽपठत् —

गेहे न भवतां कार्यं वानप्रस्थो निषेव्यताम्
कुमारेणाधुना राजन् राज्यं ते शास्तिमेष्यति ॥

एतद्वारं पूर्वतो भिन्नं राजदम्पत्योराश्चर्यं जनयंश्चञ्चुमुन्नमय्य शुकस्तेषां समक्षं यजमानाग्रतः पुरोहित इव तस्थौ । महिषी शान्तस्थितं तं सविस्मयं पश्यन्ती प्रसादपूरितमानसा तदुपकाराणां स्मरन्ती प्रथमं जलं ततश्च पयोऽपाययत् । तो-

के चलता आया है। अध्यात्मवाद की प्रधानता को लिये हुए ही हमारी संस्कृति संसार में गौरव पा रही है। जो लोग पशु जैसे घास को जीवन पर्यन्त पद और धन को चाहते हैं वह भारतीय संस्कृति को काटते हुए राष्ट्र के गौरव को कम करते हैं। ऐसे लोगों की तृष्णा जलोदर रोगी के पेट के समान दिन दिन बढ़ती ही जाती है। उस को शान्त करने के लिये एक दूसरे को नीचे ले जाने की इच्छा वाला, मरने का इच्छुक जैसे कुपथ्य को भी पथ्य समझता है उसी प्रकार अनादर को सत्कार समझता हुआ पद को दान्तों में पकड़ कर जैसे धारण करने की इच्छा वाला, भिन्न भिन्न भेष में अनेक दरवाजों से लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ मृगतृष्णा के हिरण के समान भटकता हुआ जीवन को व्यतीत कर देता है। मैंने गृहस्थ में सुख भोगा है या दुख भोगा है, प्रश्न यह नहीं है। सोचने की बात यह है कि मैं गृहस्थ की आयु पूरी कर चुका हूं। अब राजमहल के सुखभोग में मेरा कोई अधिकार न है। लोगों की निष्काम सेवा करना ही मेरा धर्म है। (रानी की ओर उंगली करके) यह तुम्हारी माता भी मेरे साथ जायगी। उधर महाराजा भद्रसेन भी सूर्यकेतु पर राज्यभार छोड़ कर पत्नी के साथ शीघ्र ही वन जाने को तैयार है।" चन्द्रकेतु साक्षात्कारमंडल के असंभावित प्रश्नों को सुनकर प्रत्याशी के समान सुन्न, टूटे मन वाला कुछ भी कहने में असमर्थ होता हुआ अपने कक्ष में चला गया।

इतने में वही तोता महाराज के मत को जैसे पक्का करने के लिये ही उन के सामने आ कर बोला—

घर में अब आप का कोई काम न है। वानप्रस्थी बन जाइये।
तुम्हारे राज्य पर शासन अब राजकुमार करेगा॥

इस बार पहले से विपरीत राजा-रानी को आश्चर्य पैदा करता हुआ तोता चोंच को उठाकर यजमान के आगे पुरोहित के समान बैठ गया। शान्तभाव से बैठे हुए उसको आश्चर्य के साथ देखती हुई, प्रसन्नता से भरे मन वाली उस के उपकारों को याद करती हुई रानी ने पहले पानी और फिर दूध पिलाया। फिर

राजा प्रश्नपूर्णनयनाभ्यां कीरं निरीक्षमाणः प्राह "विहंगमवर ! भवतः पाण्डित्यं, ज्ञानगरिमाऽऽश्चर्यंकरं त्रिकालज्ञानञ्च मुखरयति मां भवत उदन्तं ज्ञातुम् । को भवान् । कस्ते पिता । का माता । कुत ईदृशं शास्त्रज्ञानमुपलब्धम् । कथं प्राक्तनजन्मनः स्मरणम् । केन कर्मणा भवाँस्तिरश्चां योनिमुपगतः । केनचिदृषिणा शप्तोऽसि खगरूपे वा स्वयं कश्चिन्महानात्मा ? कथं धीवरकरगमनं कथञ्च पञ्जरबन्धनम् । मम वंशेन कथं सम्बद्धोऽसि? एतत्सर्वं विवृत्य परिहरतु भवान्मे जिज्ञासामिति प्रार्थ्यते मया । शुकपुरावृत्तश्रवणोत्सुकमानसा अन्येऽपि समंत्रिणः प्रासादवासिनो राजाज्ञया तत्रोपतस्थुः ।

ततः शुकः प्राह—'राजन्, उत्तरस्यां तपस्विनां तपःपूतेषु, महात्मनां महिममण्डितेषु, ऋषिप्रवरोद्दिष्टवेदसंदेशं यथावद्वहत्सु, [1]शिवपरिक्रमालंकृतभूतले [2]शिवं वितरत्सु, हिमधवलसमुन्नतनगशृंगैर्भारतस्य श्वेतं यशः संसृतौ प्रसारयत्सु, अक्षोटवातादकुसुम्भकेसरवाणिज्यविवर्धितकोषेषु, भीमकाय[3]हिमानीभी रिपुभय[4]वारणेषु, ब्रह्मणा स्वहस्तकौशलं द्रष्टुमिव विरचितेषु, भारतात्ममतेषु काश्मीरेषु सारिकाभिर्देवगिरि कृतातिथिसत्कारा, पथिकादराय [5]लोहितचन्दनगन्धं स्वच्छन्दं वितन्वती वर्तते कुंकुमवती नाम नगरी ।

तस्यां ज्योतिःशास्त्रविचक्षणो, वेदवेदांगपारगो, योगविद्यासुविज्ञस्त्रिकालज्ञानकुशल आनन्दबोधोनाम विप्रः प्रतिवसति स्म । सोऽयत्र जातवृत्तानि योगबलेन, सूक्ष्मवीक्षणयंत्रधरस्ते[6]नाणोरणीयांसमपि यथा, सदनस्थ एवाद्राक्षीत् । सरस्वती साक्षात्तस्य कण्ठे न्यवसत् । प्रत्यहं शतं जिज्ञासवस्तत्सकाशमागत्य प्रश्नोत्तराण्यशृण्वन् । तस्य स्पष्टवक्तृतया केचिज्जना मानसिककुण्ठामप्यसहन्त । आनन्दबोधं सरस्वत्यालिंगितं विज्ञाय लक्ष्मीरीर्ष्ययेव तं न पर्यगृह्णात् । दारिद्र्यं मोहवशादिव तत्सदनं हातुं न [7]चकमे । तस्य भार्या स्वनामधन्या ज्ञानवती गृहकर्मकुशला, भर्तृचरणाराधनतत्परा, दरिद्रताया अचिन्तयन्ती, स्वामिनः कोपमुत्फानमाददत्क्षीरं [8]सितालेशेनेव मधुरवचसा शमयन्ती, स्वहस्त वस्त्रपात्रप्रक्षालनपरा सुखेन कालं निनाय । आनन्दबोधो मनसि धेनूनां परमादरमावहत् ।

---

1. शिव :—महादेवः । 2. शिवं कल्याणम् । 3. हिमानी-हिमसंहतिः ।
4. वारणेषु-अवरोधकेषु । शत्रुप्रवेशं रुन्धत्स्विति "न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्" ।
5. लोहितचन्दनगन्धम्-कुंकुमगन्धम् ।
6. अणोरणीयांसं—सूक्ष्मादपि सूक्ष्मम् ।
7. कमु-कान्तौ (कान्तिरिच्छा) लिटि वैकल्पिकरूपं (कामयांचके) ।
8. सितालेशेन-श्वेतशर्करायाः स्वल्पांशेन ।

राजा प्रश्न भरे नेत्रों से तोते को देखता हुआ बोला "श्रेष्ठ पक्षी, आप का पांडित्य, ज्ञान की गरिमा, आश्चर्यजनक तीनों कालों का बोध आपका वृत्तान्त जानने के लिये मुझे चंचल बना रहा है। आप कौन हैं, आपका पिता कौन है माता कौन है ? इतना शास्त्र का ज्ञान कहां से प्राप्त किया है। पहले जन्म का स्मरण कैसे है। आप किस कर्म से पक्षी की योनि में आये हो। क्या किसी ऋषि ने शाप दिया है या पक्षी के रूप में स्वयं कोई महान आत्मा हो। मल्लाह के हाथ में आप कैसे आए और पिंजरे में कैसे बंध गये। मेरे वंश से आप का क्या सम्बन्ध है ? इस सारे रहस्य को खोल कर मेरी जिज्ञासा को पूरा करो। यही मेरी प्रार्थना है। तोते के वृतान्त को सुनने के लिये उत्कंठित मन वाले मंत्रियों सहित दूसरे भी महल के निवासी राजा की आज्ञा से वहां आकर बैठ गये।

फिर तोता बोला—'महाराज, उत्तर दिशा में तपस्वि लोगों के तप से पवित्र, महात्मा लोगों की महिमा से सजे हुए, उत्तम ऋषियों के बताये वेदों के सन्देश को पूर्णरूप से धारण करने वाले, शिव की परिक्रमा से सजे भूतल में कल्याण को बांटने वाले, बर्फ से सफेद ऊंची पहाड़ों की चोटियों से भारत के सफेद यश को संसार में फैलाने वाले, अखरोट, बादाम, कुसुम्भा, केसर के व्यापार से कोष को बढ़ाने वाले, बड़े आकार के हिमसमूहों (तोदों) से शत्रुओं के भय (प्रवेशभय) को रोकने वाले, ब्रह्मा द्वारा मानों अपने हाथ की चतुराई देखने के लिये ही बनाए हुए, भारत की आत्मा माने जाने वाले काश्मीर में, मैनाओं द्वारा संस्कृत भाषा में अतिथियों का सत्कार करने वाली, यात्रियों के आदर के लिये केसर की सुगंध को स्वतंत्रता से फैलाती हुई कुंकुमवती नाम की नगरी है।

उस में ज्योतिष शास्त्र में चतुर, वेदवेदांग के पार पहुंचा हुआ योगविद्या में चतुर, तीनों कालों का ज्ञान रखने वाला आनन्दबोध नाम का ब्राह्मण रहता था। वह दूसरे स्थान पर हुई घटनाओं को योगिक बल से दूरबीन यंत्र वाला मनुष्य उससे सूक्ष्म वस्तु को जैसे, घर पर ही देख लेता था। सरस्वती साक्षात् उसके कंठ में निवास करती थी। हर रोज सैंकड़ों लोग उसके पास आकर अपने प्रश्नों के उत्तर लेते थे। उस के स्पष्टवादी होने के कारण कुछ लोग मन की कुंठा को भी सहन करते थे। आनन्दबोध के पास सरस्वती का वास जान कर लक्ष्मी ईर्ष्या से ही उसके पास न आना चाहती थी। गरीबी मानों जैसे मोह से ही उस घर को छोड़ना ठीक न समझती थी। उस की पत्नी अपने नाम से धन्य, ज्ञानवती घर के काम में चतुर, पति के चरणों की आराधना में लगी हुई गरीबी को न सोचती हुई, पति के क्रोध को उफान आये दूध को खांड की चुटकी से जैसे मीठे वचन से शान्त करती हुई अपने हाथ से वस्त्र-पात्र साफ करती हुई सुख के समय बिताती थी। आनन्दबोध के मन में गौओं का बड़ा आदर था।

गवामनादरं सः, शूरः स्वनयनाभ्यां [1]निरागसो वधमिव स्वप्नेऽपि द्रष्टुं नापारयत् ।

एकदा ज्ञानवती सरित्तटे वस्त्रप्रक्षालयनाय निर्जगाम । सा [2]धौतवसनानि शोषणार्थम् , अस्माकमन्तःकलहपीडिता[3]पगया नः कुपुत्रानिव विज्ञाय निदाघ-आतपं हेमन्ते च शीतं सोढुं बहिष्कृता इति सकरुणं स्वव्यथां श्रावयन्तिस्वव तटवर्तिप्रस्तरेषु प्रसार्य भर्तृशाटिकाममलीकर्तुं काष्ठखण्डेन प्रताडयन्ती मुहु-र्मुहुर् जले निमज्जयन्ती पतिचरणध्यानमग्नातिष्ठत् । तत्काल एका तृषिता गर्भिणी धेनुर्जलं पातुं प्रथमावलोकितश्वशुरगेहात्पितृसदनं प्रत्यागच्छन्ती नवोढयुवतीव द्रुतगत्या तत्र समागच्छत् । सिंहाकान्ता नन्दिनी दिलीपमिव सा ज्ञानवतीं परीक्षितुमातपप्रसारिते तस्या भर्तुर्दुकुले शफानधारयत् । एतेन कुपिता सा शाटिकां तदवस्थामेव परित्यज्य सहसोत्थाय गां पादेन प्राताड़यत् । धेनुः पादाघातं स्वापमानमिव मन्यमाना, क्रूरभ्रातृजायावचोबाणविद्धाबला पितृसदनादभुक्तभोजना यथाऽपीतसलिलैव ततो न्यवर्तत । अत्रान्तरे शाटिकां जलप्रवाहोऽनयत् । ज्ञानवती प्रयतमानापि क्षणं विलम्बादागतयात्री प्रयाणसीत्कारपरायणवाष्पयानमिव तद्वासो ग्रहीतुं नापारयत् । सा दुकूलसंलग्न-गोशफरजो जलेन संशोध्य शाटिकापहरणखिन्नमानसा 'नाहमपरवसनान्यत्र शोषयिष्यामी' ति निश्चित्यातपास्तृतापरवस्त्राणि समाहृत्य पात्रे निधाय शिरसि च कृत्वा, शाके प्रमादवशाद् द्विवारं लवणं पातयन्ती गृहिणीव, भर्तृकोपभीता पश्चात्तापपरायणा 'पतिर्मे योगबलेन सर्वं ज्ञास्यति । शाटिकाविषये किं करिष्यामि, किं वदिष्यामी'ति विविधविचारमग्नाऽनुत्तीर्णछात्रेव शिथिलपद्-

---

1. निरागसः—निरपराधस्य ।
2. धौत वस्त्राणि-प्रक्षालित-वस्त्राणि । धावु गतिशुद्ध्वोः । क्तप्रत्यये ऊनि धौतम् ।
3. आपगया – नद्या ।

गौओं के अपमान को वह, बहादुर आदमी अपने नेत्रों से निरपराध की हत्या को जैसे, स्वप्न में भी न देख सकता था।

एक बार ज्ञानवती नदी के तट पर कपड़े धोने के लिये चली गई। वह धुले हुए वस्त्रों को, हमारे आपस के झगड़े से तंग आई हुई नदी ने हमें कुपुत्र समझ कर गर्मी में धूप और सरदी में शीत को सहन करने के लिये बाहर फेंक दिया है इस प्रकार मानों जो अपनी पीड़ा को दया के साथ सुना रहे थे, ऐसे तट के पत्थरों पर फैला कर पति की धोती को सफेद बनाने के लिये धोणू (लकड़ी का बना हुआ) से ताड़ती हुई, बार-बार पानी में डुबोती हुई पति के चरणों में ध्यान लगाये बैठी थी। उसी समय एक प्यासी गर्भिणी गौ पानी पीने के लिये पहली बार सुसराल के घर से पिता के घर लौटती हुई नवविवाहित युवती के समान तेज गति से वहां पर आई। शेर से आक्रमण की हुई नन्दिनी ने जैसे दिलीप की, उसने ज्ञानवती की परीक्षा के लिये धूप में फैलाये हुए उस के पति के दुपट्टे पर खुर रख दिये। इस से गुस्से में आई ज्ञानवती ने धोती को उसी स्थिति में छोड़ कर जल्दी उठ कर गौ को पैर से प्रताडित किया। पैर के आघात को अपना अपमान समझ कर, क्रूर भावज के कटु वचनों से तिरस्कार की हुई युवती पिता के घर से बिना भोजन किये ही जैसे लौट जाती है उसी प्रकार बिना पानी पिये ही वहां से लौट गई। इतने में पानी का प्रवाह धोती को बहा कर ले गया। ज्ञानवती प्रयत्न करने पर भी, पल भर विलम्ब से आया हुआ यात्री चलने के समय की सीटी देती हुई गाड़ी को जैसे, उस वस्त्र को पकड़ न सकी। वह दुपट्टे में लगी गौ के खुर की धूली को पानी से साफ कर धोती के वह जाने से खिन्न मन वाली "मैं दूसरे वस्त्रों को यहां न सुखाऊंगी" ऐसा निश्चय कर के धूप में डाले वस्त्रों को इकट्ठा कर के पात्र में डालकर उसे सिर पर रखकर, सब्जी में भूल से दो बार नमक डालने वाली गृहिणी के समान पति के क्रोध से डरती हुई, पश्चाताप में डूबी 'मेरा पति योगबल से सब कुछ जान जाएगा। धोती के बारे में क्या करूंगी, क्या बोलूंगी' इस प्रकार अनेक विचारों में मग्न हुई परीक्षा में फेल हुई छात्रा के समान ढीले

भ्यां गृहं प्राचलत् । ततश्चार्द्रवसनानि प्रांगणद्विकोणस्थनिम्बपादपद्वयान्तराल-प्रसारिततवेणौ प्रसार्य भर्तुरात्मानं निगूहमानेव पाकशालां प्रविवेश। आनन्दबोधो मध्याह्नोपासनाविनिवृत्तः सूर्यायार्घ्यं प्रदाय कुशलसेवक इव यथास्थलधृतपूजापात्रः [1]कठोपनिषदमादाय [2]सर्वतोभद्रच्छायातले काष्ठासने समुपाविशत् । आत्मानं सापराधमिव मन्यमाना ज्ञानवती रश्मिः प्रकाशपुञ्जेन सह भानुपादयोर्यथा दुग्धपात्रमादाय भर्तृसमक्षं समागमत् । आनन्दबोधोऽन्यमनस्क इव पयोभाजनं करेण गृह्णन् "न मे शाटिकापश्चात्तापः परं गर्भिणी धेनुस्त्वया पादप्रहारापमानिता जलपानवंचिताऽकारि" इत्यपूर्णवाक्यं श्रुत्वैव ज्ञानवती—"हा ! ममाशङ्कितविपरीतमपरोऽयं विषयो भर्तृपादैः संगृहीत" इति पूर्वं मनस्यनुदितगम्भीरापराधभीता विकम्पमानाऽज्ञानात्परपुस्तकमाहरन् विनीतशिष्यो गुरुपादयोरिव तच्चरणयोर्लुलोठ । आनन्दबोधः स्ववाक्यं पूरयन् "नायमपराधः क्षमास्थानम् । चत्वारिंशद्वर्षात्पूर्वं न ते गर्भः स्थास्यती' ति लघु शशाप । गोपालेन दोहनाय यष्टिभापिता, प्रहारवारणाय पृष्ठं नमयन्ती धेनुरिव नतकाया ज्ञानवत्युवाच—"स्वामिनः, ममापराधेन संततिविलम्बमनुभूय भवन्तोऽपि मनःकुण्ठां वक्ष्यन्तीति द्विगुणं दूयते मे चेतः । आनन्दबोधः—"भारतीयसंस्कृतौ भर्त्रपराधेन भार्या तत्कृतागसा च पतिरपि प्रदुष्यति । अतोऽपरिहार्या मे वाक् । सूनुप्राप्तय इत ऊर्ध्वं त्वं गोपरिचर्यासंलग्ना स्या" रित्यभिधाय निपीतपयाः कक्षं प्रविवेश ।

---

1. कठोपनिषदमिति-वैशम्पायनशिष्येण कठेन लिखितां यमनचिकेतसोः संवादात्मिकां यजुर्वेदशाखाम् ।

2. सर्वतोभद्रः-निम्बः ।
"अरिष्टः सर्वतोभद्रहिंगुनिर्यासमालकाः
पिचुमर्दश्च निम्बेऽथ पिच्छिलागुरुशिंशपा ।" (इत्यमरः)

पैरों से घर को चल पड़ी। फिर गीले कपड़ों को आंगन के दोनों कोणों पर खड़े दो नीम के पेड़ों के अन्तराल में फैलाये बांस पर फैला कर पति से अपने आप को छिपाती हुई जैसे रसोई घर में प्रविष्ट हो गई। आनन्दबोध दोपहर की पूजा से निवृत्त हो कर सूरज को अर्घ दे कर कुशल सेवक के समान पूजापात्रों को यथास्थान रख कर कठोपनिशद को लेकर नीम की छाया में रखे लकड़ी के आसन पर बैठ गया। अपने आप को अपराधिन मानती हुई ज्ञानवती, किरण प्रकाशपुंज के साथ सूरज के चरणों में जैसे, दूध के गिलास को लेकर पति के सामने उपस्थित हो गई। आनन्दबोध बाहरी मन से जैसे दूध को हाथ में लेता हुआ "मुझे धोती का पश्चात्ताप नहीं परन्तु गर्भिणी गौ को तुमने पैर के प्रहार से अपमानित कर उसे जलपान से वंचित किया" इस अधूरे वचन को सुन कर ही ज्ञानवती "हाय, मेरी आशंका के विपरीत पतिदेव ने यह तो दूसरा ही विषय ले लिया" इस प्रकार मन में पहले न आए गम्भीर अपराध से डरी हुई कांपती हुई अज्ञान से दूसरे की पुस्तक चुराने वाला विनम्र शिष्य गुरु के चरणों में जैसे, उस के पैरों पर लेट गई। आनन्दबोध अपने वाक्य को पूरा करता हुआ "अह अपराध क्षमा के योग्य न है। चालीस वर्ष से पहले तुम्हें गर्भ न ठहरेगा" इस प्रकार छोटा सा शाप दे दिया। ग्वाले के द्वारा दोहने के लिये छठी से डराई हुई, चोट से वचने के लिए गौ के समान झुके शरीर वाली ज्ञानवती बोली— "स्वामी जी, मेरे अपराध से सन्तान में विलम्ब होने से आपका मन भी कुंठित रहेगा इसलिए मेरा मन दुगुना दुखी हो रहा है"। आनन्दबोध— "भारतीय संस्कृति में पति के अपराध से पत्नी और पत्नी द्वारा किये अपराध से पति भी दूषित होता है। इसलिए मेरे वचन में कोई परिवर्तन न होगा। पुत्र की प्राप्ति के लिये इस के बाद तुम गौ की सेवा करो" ऐसा कह कर दूध पी कर कमरे में चला गया।

ज्ञानवती 'सूनुप्राप्तये' इति भर्तमुखारविन्दनिस्सृतशब्दं विश्लेषयन्ती—"अप्रयुक्तापत्यशब्दः पतिः सूनुशब्दं प्रायुणगेतन्मे हृदयधारणयालम् । चेन्प्रथममेव सूनुर्न विलम्बः कण्टकायते । कदि कदाचिद् बन्ध्यात्वेन शप्ताभविष्यन्तदा किमकरिष्यम् । [1]गौतमस्त्वहल्यां शिलाशापेनाशपत । न मे[2]ऽत्याहितम् । त्रिशद्-वर्षाणा मे वयः । अवशिष्टदशसमा गणयन्त्या एव यास्यन्ति । संप्रति पतिवचन-मनुसरन्ती रघुवंशवर्धनाय दिलीपो वसिष्ठहोमधेनुं नन्दिनीमिव स्वामिना सुरभि-नाम्नालङ्कृतां [3]घटोध्नीं पयःस्रोत इव क्षीरप्रवाहां सुखसंदोह्यां गामिमां सेवमाना कालं नेष्ये । एषा पूर्वमेव मे प्रिया । अधुना प्रियतमां मंस्ये"।

ततो ज्ञानवती प्रत्यहं प्रातरुत्थाय शुद्धसलिलप्रक्षालितचरणसुरभिमस्तके कृतकुङ्कुमतिलकाऽऽयुर्वेदोपदिष्टविविधरोगहरणक्षमगोमूत्रमाचम्य वत्समा-तृप्तिं स्तनं पाययित्वा दोहनमारभते स्म । आदिवसं वितरणे ऽपि तांत्रिकाभि-मंत्रितसलिलमिव ज्ञानवतीपात्रपयो विरामं नायात् । दुग्धदध्यर्थिन आनन्दबोध-सदनात्कर्णश्रमाद् भिक्षुका यथा कदापि प्रतिहतमनोरथा न न्यवर्तन्त । अत एव जना आनन्दबोधसदनं कल्पतरुमेवामन्यन्त । ज्ञानवत्या सुरभिजलघासकर्मणि विवाहे लग्नवेलायां कन्याबान्धवैरिव सर्वमविलम्बमाचर्यत् । तस्यां सलिलतृण-तृप्तायां सा स्वयं पानभोजनेऽगृह्णात् ।आनन्दबोधो ज्ञानवत्या एतच्चर्याप्रमुदितः शापावधि प्रतीक्षमाणोऽत्रातिष्ठत ।

अथ समुचितकाले मयि गर्भमवतरति त्रिकालवेत्ता तात उदरस्थस्यैव मे

---

1. गौतम इति—अहल्या गौतमस्य भार्या आसीत् । एकदा कश्चिन्मायावी गौतमरूपमाधाय तस्याः सतीत्वभंगाय प्रायतत । अहल्यायास्तत्र नासी-त्कश्चिद्दोषस्तथापि क्रुद्धो गौतमस्तां शापेन शिलामकरोत् ! तया प्रार्थित-श्च तस्याः शापं त्रेतायां रामचरणस्पर्शान्तं व्यदधात् ।
2. अत्याहितम् अत्यनिष्टम् ।
3. घटोध्नीमिति घटवत् ऊधः क्षीराशयः यस्यास्तां घटोघ्नीम् । ऊधसोऽनङ्—एतेन अनङादेशः । बहुव्रीहेरुधसोङीष्—अनेन ङीष् ।

ज्ञानवती 'पुत्र प्राप्ति के लिये'। पति के मुख कमल से निकले हुए इस शब्द का विश्लेषण करती हुई–"सन्तान शब्द का प्रयोग न करके पति ने 'सूनु' शब्द का प्रयोग किया यह मेरे हृदय को थामने के लिये काफी है। यदि पहले ही लड़का हो तो विलम्ब खटकता न है। अगर कहीं वंध्या होने का शाप मिल जाता तो मैं क्या करती। गौतम ने तो अहल्या को पत्थर ही बना दिया था। कोई मेरा बहुत बुरा न हुआ है। मेरी तीस वर्ष की उमर हो चुकी है बाकी दस साल गिणती सुनती के ही बीत जायेंगे। अब पति के वचन का पालन करती हुई रघुवंश की वृद्धि के लिये दिलीप ने जैसे वसिष्ठ की होमधेनु नन्दिनी की सेवा की थी उसी प्रकार पति द्वारा सुरभि नाम से भूषित घड़े के समान उल्ह वाली पानी के स्रोत के समान दूध के प्रवाह वाली, सुख से दोहने योग्य इस गौ की सेवा करती हुई समय बिताऊंगी। यह मुझे पहले ही प्यारी है अब इसे अति प्यारी मानूंगी।

फिर ज्ञानवती प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर शुद्ध पानी से धोये हुए पैरों वाली सुरभि के मस्तक पर केसर का तिलक लगाकर आयुर्वेद में बताये गये अनेक रोगों को दूर करने में समर्थ गोमूत्र का आचमन करके बछड़े को पेट भर दूध पिलाकर गौ को दोहती थी। दिन भर बांटने पर भी तांत्रिक से अभिमंत्रित किये हुए पानी के समान ज्ञानवती के वर्तन का दूध कभी समाप्त न होता था। दूध और दही की चाहना वाले लोग आनन्दबोध के घर से कर्ण के आश्रम से जैसे भिखारी, कभी निराश न लौटते थे। ज्ञानवती सुरभि को पानी और घास देने में सभी काम इस प्रकार बिना विलम्ब से करती थी जैसे कन्या के बान्धव विवाह के समय लग्नवेला में करते हैं। गौ के घास और पानी से सन्तुष्ट हो जाने पर ही वह स्वयं अन्न-जल ग्रहण करती थी। आनन्दबोध ज्ञानवती की इस चर्या से प्रसन्न हुआ शाप की अवधि की प्रतीक्षा करने लगा।

इसके बाद उचित समय पर मेरे गर्भ में आने पर त्रिकालज्ञ पिता उदर

शुभसंस्कारहेतवे मम मातरं वेदोपनिषद्रामायणमहाभारतपाण्डित्यपूर्णशौर्यसमन्वित-कथा अश्रावयत् । माता ज्ञानवत्यपि-उत्तरागर्भेऽभिमन्युचक्रव्यूहप्रवेशकथायाः स्मरन्ती तदुक्तं सर्वमेकाग्रमनसा शुश्राव । ततः शुभग्रहेषु स्वोच्चस्थानमाश्रयत्सु दशमे मासि जननी मामसूत । मम जन्मनि सर्वत्र हर्षोल्लासोऽवालोक्यत । सहस्रं जनाः पितृवर्धापनाय तत्सदनं समाजग्मुः । मम नामकरणसंस्कारे दक्षिणोत्तर-योरिन्द्रसंसदि सुरसंघ इव शतं विद्वांसः सम्मिलिता बभूवुः । पण्डिता मे नाम 'वागीश्वरः' इति निरधारयन् । अहं जन्मकाल एव गर्भावस्थायां पितृश्रावित-बह्वीः कथा व्यजानाम् ।

तातः पंचमहायन एव मामष्टाध्यायीमध्यापयितुं प्रारेभे । नववर्षोऽहं यज्ञोपवीतसंस्कृतोऽभूवम् । आदशमं सकलशास्त्राण्यधीत्य जनसमक्षं वेदोपनिष-त्प्रवचनक्षमतामध्यगच्छम् । मम बुद्धिकौशलं निरीक्ष्य विस्मिता जना मे भूरि प्रशंसां चक्रिरे । अहं प्रत्यहं प्रभाते स्नानमनु जननीं प्राणमम् । सापि मयि निरुपममस्निह्यत् । ममैकादशवर्षे जनकः पूरितैकषष्ठिसमः सदनदुर्भाग्यादिव हृद्रोगव्यापन्नतया दिवं जगाम । जलं विना मत्सीव भर्तृवियोगमसहमाना सप्तमासाननु मे मातापि स्वर्गमारुरोह । एवं मातृपितृविरहवेदनाकुलोऽहम-सहाय इवेतस्ततो व्यचरम् ।

अथैकदा वामदेवाश्रमादम्बरीषो नाम महर्षिर् भ्राम्यँस्तत्रागमत् । स गोवियुक्त[1]तर्णकमिव मां निस्सहायं विज्ञाय स्वाश्रमं निनाय । तत्राहं मुनि-कुमारकैः सह विचरन् क्रीडन् विस्मृतव्यापदिवाभवम् । आश्रमवासि-

1. तर्णकं—नवजातवत्सम् ।

में ठहरे हुए ही मेरे शुभ संस्कार के लिये मेरी माता को वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत की ज्ञानपूर्ण एवं शूरवीरता से भरी कथाएं सुनाया करता था। माता ज्ञानवती भी उत्तरा के गर्भ में अभिमन्यु के चक्रव्यूह में प्रवेश की कथा को याद करती हुई, उस की सारी बात को ध्यान से सुनती थी। फिर शुभ ग्रहों के अपने उच्च स्थान में आ जाने पर माता ने मुझे जन्म दिया। मेरे जन्म पर सब जगह प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। हज़ारों लोग पिता को बधाई देने के लिये उस के घर आये। मेरे नामकरण संस्कार में, इन्द्र की सभा में देवताओं के समूह के समान दक्षिण तथा उत्तर के सैंकड़ों विद्वान पधारे। पंडित लोगों ने मेरा नाम 'वागीश्वर' रखा। मैं जन्म के समय में ही पिता से सुनाई बहुत सारी कथाओं को जानता था।

मेरे पिता ने पांचवें वर्ष में ही मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाना आरम्भ कर दी। नवमें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत संस्कार हो गया। दसमें साल तक मैं लोगों के सामने वेद और उपनिषदों के प्रवचन के योग्य बन गया। मेरी बुद्धि की चतुराई को देखकर विस्मित हुए लोग मेरी बहुत प्रशंसा करने लगे। मैं प्रतिदिन प्रभात में अपनी माता को प्रणाम करता था। वह भी मेरे से अतुलनीय प्यार करती थी। मेरे ग्यारहवें साल में ही घर के दुर्भाग्य से मेरा पिता इकासठवें वर्ष में हृदय रोग के कारण स्वर्ग सिधार गया। जल के बिना मछली के समान पति के वियोग को सहने में असमर्थ मेरी माता भी सात महीने के बाद परलोक चली गई। इस प्रकार माता-पिता के वियोग से व्याकुल हुआ मैं इधर-उधर घूमने लगा।

इस के बाद एक बार वामदेव के आश्रम से अम्बरीष नाम का महर्षि घूमता हुआ वहां आया। वह गौ से बिछुड़े बछड़े के समान मुझे बेसहारा जानकर अपने आश्रम को ले गया। वहां मैं मुनियों के बालकों के साथ खेलता-घूमता अपनी आपत्ति को जैसे भूल ही गया। आश्रमवासियों के समुदाय में मेरी प्रसिद्धि 'पाणिनि वटु' के

समुदायेऽहं 'पाणिनिर् वटुरि'ति ख्यातिमवाप्नवम् । महर्षिरम्बरीषो विजितेन्द्रियो विस्मृतसकलस्पृहः साक्षाद् ब्रह्मविदात्मपरमात्मैकीरणानुभूतसुखः केवलं फलाहारी स्वज्ञानवाग्भिराश्रममलं क्षालयन्निव तत्रस्थसकलमहात्मनामाकर्षण-केन्द्रमासीत् । परं [1]मृगांक इव न सोऽपि दोषमुक्तः । प्रकृत्या साक्षादपरो दुर्वासा इवालक्ष्यत् । मस्तकत्रिवल्यां कोपो वल्मीकविवरे भुजंग इवालक्षितोऽतिष्ठत् । आश्रमवासिनो ज्ञानसुगन्धाहरणाय व्यालाश्लिष्टचन्दनतरोरिव तस्यान्तिकं भयग्रस्ता इव समाव्रजन् । अहं महर्षिसेवासंलग्नः कालमनयम् । यथा यथा सः समादिशत्सुपुत्रः पित्रोरिव तद्वचःपालनपरायणोऽवातिष्ठे ।

एकदा महर्षिः प्रहरमात्राय मामाश्रमरक्षणे नियुज्य बहिर् निर्जगाम । मम मस्तकलिखितं पूरयितुमिवैकः शुकः समागत्याश्रमस्थदाडिमपादपशाखासं-लग्नार्धपक्वफलं चञ्च्वा पुनः पुनरदशत् । क्षणेष्वेव श्लथबन्धनं तत्फलं भूमावपतत् । अहं तदेव फलं शुकं प्रताडयितुं प्राक्षिपम् । फलस्पृष्टोत्तमाङ्गः शुको भग्नचञ्चुः शिथिलग्रीवः पक्षौ प्रस्फारयन् [2]नभोमरणं परलोकघ्नं विज्ञाये-वाक्षिनिमेषेणैवापरफलमिव धरातलमाजगाम । भूपतितं सकरुणनयनाभ्यां मामवलोकमानं कीरं निरीक्ष्य 'हा ! हतोऽयं शुकः किं करिष्याम्यधुने' ति चिन्त-यन् कुटीराभ्यन्तराज्जलमानीय ममताहतः सुतो विगतप्राणपितुर्मुखे-औषधमिव तस्यास्ये सलिलबिन्दूनपातयम् । परं मे पश्यत एव सोऽस्ताचलोन्मुखो भानुर् निशापातमिव मम नियतिलिखितव्यापदं सजलनेत्राभ्यां संसूचयं [3]श्चरमश्वा-सानमुञ्चत् । ममाक्षिजलप्रवाहो मृजजनकं तनयो गंगाजलेनेव

---

1. मृगांकः-चन्द्रः ।
2. नभोमरणमिति-हिन्दुसंस्कृतौ (विशेषतः सनातनपरम्परायां लोका मरणासन्नं जनं भूशय्यागतं कुर्वन्ति । नभसि (खट्वायां) मरणेन मृतकः परलोके न शुभां गतिं प्राप्नोतीति तेषां विश्वासः ।
3. चरमश्वासान्-अन्तिमश्वासान् ।

नाम से हो गई । महर्षि अम्बरीष इन्द्रियों पर विजय पाने वाला, सब प्रकार की इच्छाओं से दूर, साक्षात् ब्रह्मज्ञानी, आत्मा-परमात्मा के एकीकरण के सुख का अनुभव करने वाला केवल फलों का आहार लेने वाला, अपने ज्ञान के वचनों से आश्रम की मैल को मानों जैसे धोता हुआ, वहां के सारे महात्माओं के आकर्षण का केन्द्र था। परन्तु चन्द्रमा के समान वह भी दोष से रहित न था । स्वभाव से वह दूसरा दुर्वासा ही दिखाई देता था। माथे की त्रिवली में क्रोध बामी के खोल में सांप के समान गुप्त रूप से रहता था। आश्रमवासी ज्ञान की सुगन्ध लेने के लिये सांप से लिपटे चन्दन के पेड़ के समान, उस के पास भयभीत जैसे ही आते थे। मैं महर्षि की सेवा में लगा हुआ समय बिताने लगा। जैसे जैसे वह आज्ञा करता था अच्छा पुत्र माता-पिता के समान उस की आज्ञा का पालन करता था ।

एक बार महर्षि पहरमात्र के लिये मुझे आश्रम की रक्षा में लगा कर बाहर चला गया। मानों मेरे मस्तक में लिखे को पूरा करने के लिये ही एक तोता आ कर आश्रम के अनार की शाखा में लगे आधे पके हुए फल को चोंच से बार बार डंसने लगा। कुछ ही क्षणों में ढीले बंधन वाला वह फल धरती पर गिर गया। मैंने उसी फल को तोते की ताडना के लिये उस के प्रति फैंका। फल से छुए सिर वाला, टूटी चोंच वाला ढीली गर्दन वाला तोता पंखों को फड़फड़ाता हुआ मानों आकाश की मृत्यु को परलोक के लिये हानिकारक जैसा समझकर पलक मारने के समय में ही दूसरे फल के समान धरती पर आ गया। धरती पर गिरे हुए, दयापूर्ण नेत्रों से मुझे देख रहे तोते को देख कर "हाय, यह तोता तो मर गया। अब क्या करूंगा' ऐसा सोचता हुआ मैं कुटिया के अन्दर से जल ला कर, ममता का मारा पुत्र जैसे मरे हुए पिता के मुख में औषधि डालता है उसी प्रकार उस के मुख में पानी की बूंदे गिराने लगा। परन्तु मेरे देखते ही देखते वह अस्ताचल को जाने वाला सूर्य रात्रि के आगमन को जैसे, मेरे भाग्य में लिखी आपत्ति को सजल आंखों से मानों बताता हुआ अन्तिम श्वास को छोड़ गया। मेरी आंखों के जल का प्रवाह मरे हुए पिता को पुत्र गंगाजल से जैसे उस को स्नान कराने लग गया।

तं स्नापयितुमारभत। 'साम्प्रतं किमहं कुर्याम्। किमेनं क्षिपेयं क्वचिद् गुप्तस्थले ? नहि नहि, महर्षिस्तपोबलेन सर्वं ज्ञास्यति। अपराधाचरणं न तथा-पत्करं यथा तदनङ्गीकरणम्।[1] स्वीकुर्वंस्तु नर आत्मनैवात्मानं धिक्कुर्वन्ननल-दग्धो ऽङ्गारस्पर्शादिवागस[2] आचरणाद् बिभेति। म्लेच्छरोगी चिकित्सका-त्स्वकुकृत्यमिव नाहं महर्षेः पापं निगूह्य द्विगुणमन्तुनिबद्धो भविष्यामि। एव-मज्ञानात्कृतापराधो नरो दण्डं भोक्तुं कृतमना आरक्षिबलागमनमिवाहं महर्षिं प्रत्यैक्षिषि।

तत आश्रमं प्रत्यागच्छतो मुनेर्, भुजंगमफूत्कारं निशम्य तमसि विचरत्प-थिकस्येव, काष्ठपादुकाध्वनिं श्रुत्वा मे प्राणाः शरीरात् प्रचण्डाग्निसंतप्त मुखावृतपिठराद् वाष्पा इव विवशं बहिरायातुं प्रायतन्त। महर्षिर्मृतशुकं निरीक्ष्य 'केन हतोऽयं शुकः। किमाग आचरितमनेने' ति सप्रश्नलोचनो मामैक्षत। प्रयतमानस्यापि मे जिह्वा तांत्रिकस्तंभितेव किमप्युच्चरितुं नाशक्नोत्। ततस्तृतीयकज्वरकोपग्रस्तातुर इवापादमस्तकं कम्पमानोऽहमवोचम्— 'भगवन् ! शुकचञ्चुयातश्लथबन्धनं फलमिदं भुवि निपतितम्। कुतूहलवशादह-मिदं शुकं प्रति प्राक्षिपम्। एतत्प्रताडितः क्षतोऽयं कीरो धरातलागतः प्राणाँस्त-त्याज। अज्ञानादेवापराधोऽयं संजातः। अहं क्षन्तव्यो भवामी' त्यभिभाषमाण-स्तस्य पादयोर्न्यपतम्। कोपरक्तनेत्रो महर्षिर्मां पादाघातेन प्रताड्यावदत्— "अहो पाप, अहं त्वामनाथं विज्ञायात्रानयम्। त्वयाऽऽश्रमविरुद्ध-माचरता निरपराधः कीरोऽयं निष्प्राणतां नीतः। ये निरागसो निघ्नन्ति, य एतेन नन्दन्ति ये चैवंविधाततायिनो न दण्ड-यन्ति-एतेषां त्रयाणामेव नियतं नरके वासः।" एवं तस्य कोपवचनानि श्रुत्वा-ऽपरेऽप्याश्रमवासिनः कौतुकाविष्टा 'अयमधुनैव शप्तो भविष्यती' ति शंकाकुल-मानसा ओष्ठनिवेशिततर्जनीकास्तत्राजग्मुः। महर्षिः स्ववाचः शृंखलां युञ्जन् "नास्मात्पापात्ते मुक्तिः। त्वं मानवरूपं विहाय शुको भवे"ति मां शशाप। ततो महर्षेर्वामदेवो नाम घनिष्टसखाऽवदत्—"ऋषिवर ! अज्ञानापराधे

1. अनङ्गीकरणम्—अस्वीकरणम्।
2. आगसः—अपराधस्य।

''अब मैं क्या करूं क्या इसे कही गुप्त स्थान पर फैंक दूं ? नहीं महर्षि तप के बल से सब कुछ जान जाएगा। अपराध करना उतना आपत्तिजनक नहीं जितना उसको स्वीकार न करना दोषजनक है। अपराध को स्वीकार करता हुआ मनुष्य अपनी आत्मा से अपने को ही फटकारता हुआ, आग से जला हुआ अंगार के स्पर्श से जैसे फिर अपराध करने से डरता है। म्लेच्छ रोग वाला मनुष्य वैद्य से अपने खोटे कर्म को जैसे, मैं महर्षि से अपने आप को छिपा कर दुगुने अपराध का दोषी न बनूंगा। इस प्रकार अज्ञान से किये हुए अपराध वाला मनुष्य दण्ड पाने के लिये मन बनाए हुए, पोलिस के आगमन को जैसे मैं महर्षि के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

फिर आश्रम को लौटते हुए मुनि की, सांप के फुंफकार को सुनकर अन्धेरे में घूमते हुए पथिक के समान, खडाउओं की आवाज को सुनकर मेरे प्राण शरीर से, तेज आग से तपी हुई ढकण से ढके हुए मुख वाली पतीली से भाफ जैसे, बेबस होकर बाहर आने का प्रयत्न करने लगे। महर्षि मरे हुए तोते को देखकर ''इस तोते को किसने मारा है, इस ने क्या अपराध किया है'' इस प्रकार प्रश्नों से भरे नेत्र वाला मुझ को देखने लगा। प्रयत्न करने पर भी मेरी जीभ किसी तांत्रिक से रोकी हुई जैसे कुछ भी बोलने में समर्थ न हो सकी। तब तृतीयक ज्वर के कोप से ग्रस्त रोगी के समान सिर से पैर तक कांपते हुए मैंने कहा—''भगवन, तोते की चोंच के आघात से ढीले बन्धन वाला यह फल धरती पर गिर गया था। कौतुक के लिए मैंने इसे तोते के प्रति फैंका। इससे प्रताडित किया हुआ घायल यह तोता धरती पर गिर गया और इसने प्राणों का त्याग कर दिया। यह अपराध अज्ञान से ही हो गया है। मुझे क्षमा कर दो'' इस प्रकार कहता हुआ मैं उसके पैरों पर गिर गया। गुस्से से लाल नेत्रों वाले महर्षि ने मुझे पैर के आघात से प्रताडित कर कहा—''अरे पापी, मैं तुझे अनाथ जान कर यहां ले आया था। तुम ने आश्रम के विपरीत आचरण करते हुए तोते को मार दिया। जो बेगुनाहों को मारते हैं, जो इससे प्रसन्न होते हैं और जो इस प्रकार का जुल्म-करने वालों को दण्ड न देते हैं इन तीनों का ही नरक में निवास होता है''। इस प्रकार उस के क्रोध भरे वचनों को सुन कर दूसरे आश्रम वासी भी कौतुक के लिये 'इसे अभी शाप दे दिया जायगा' इस प्रकार की शंका से व्याकुल मन वाले होठों पर तर्जनी रखे हुए वहां पर आ गये। महर्षि अपने वचन की श्रृंखला को जोड़ता हुआ—''इस पाप से तुम्हारी मुक्ति न हो सकती है। तुम मानव के रूप को छोड़कर तोता बन जाओ'' इस प्रकार मुझे शाप दे दिया। तब महर्षि के घनिष्ट मित्र वामदेव ने कहा—''ऋषिवर, अज्ञान से अपराध होने पर

निरवधिः शापो न संगतः ।[1] दुर्वासाः स्वयं शकुन्तलाशापं तत्सखिप्रार्थितस्तस्याः प्रियतमेनोपहारीकृतपरिचयचिह्नदर्शनावधि विधाय तामन्वगृह्णात् । गौतमोऽहल्याशिलाशापं तया सकरुणं प्रार्थितस्त्रेतायां रामचन्द्रचरणस्पर्शान्तं प्रदर्श्य तामनुकम्पयामास । [2]नारदो धनाभिमानिनोः कुबेरसुतयोर् नलकूबरमणिग्रीवयोरामलकवृक्षशापं द्वापरे कृष्णस्पर्शविराममुक्त्वा तयोर्मनोऽसान्त्वयत् । अत एतच्छापस्य मोक्षकालोपायौ संभाष्यानुकम्पतां भवान् प्ररोहत्-श्मश्रुलोमैर्यौवने पदं धर्तुं विहितप्रयासमिव कुमारमिमम् ।''

सख्युः सप्रमाणवचो निशम्य महर्षिराह—''अयं पारिजातनाम्ना ऽर्धशाब्दीं यावच्छुकयोनौ स्थास्यति । चरमवर्षे वानप्रस्थाश्रमिणा दक्षिणावर्तकुमुद्वतीमहाराजमहासेनेन सह वने गमयञ्शापमुक्तो भविष्यति । एतज्जन्मवृत्तं नायं विस्मरिष्यति । एतस्य पाण्डित्यपूर्णशास्त्रज्ञानं शुकयोनावपि तदवस्थमेव स्थास्यति'' एवं शापं सुविधात्रिवेण्यां प्रक्षाल्य, परीक्षको विफलछात्रं शम्भुनेत्रांकवर्धनेन तृतीयश्रेण्यां सकलनिम्नतले निवेश्य वाष्पयानतल आत्मघाताद् यथा, महर्षिः कुमारमायुगं शुकयोनियातनोन्मुक्तं चकार । ततोऽसौ मृतशुकमपि कमण्डलुजलेनाभ्युक्ष्य प्राप्तासुं व्यदधात् । सोऽपि चित्रगुप्त इव मे मस्तकरेखाक्षराणि लिखितुमिवाश्रमं प्राप्तः प्राणदायिमहर्षिं तदुप-

---

1. दुर्वासा इति—दुष्यन्तः कण्वाश्रमे शकुन्तलायै परिचयचिह्नमंगुलीयकं प्रदाय पुनरागमनस्य पणं विधाय ततो निर्जगाम । एकदा दुर्वासास्तत्रागतः । दुष्यन्तध्यानमग्ना शकुन्ला तं नाद्रक्ष । एतेन रुष्टो दुर्वासास्तामेवं शशाप "त्वं यस्य ध्याने मग्ना स त्वां विस्मरिष्यति" ततः सख्यो दुर्वाससं शापमोक्षोपायाय प्रार्थयन् । ततः सः शापे एवं संशोधनमकरोत् "यदासौ स्वोपहारीकृतंपरिचयचिन्हं द्रक्ष्यति तदैनां स्मरिष्यति ।" सरिति जलं पिबन्त्याः शकुन्तलाया अंगुलीयकं जले भ्रष्टं मत्स्यो निजगाल । चिरप्रतीक्षानन्तरं शकुन्तला दुष्यन्तं मिलितुं जगाम । स तां न पर्यचिनोत् । निराशाकुला सा कण्वाश्रमं न्यवर्तत । एको धीवरस्तं मत्स्यं जग्राह । तस्य कुक्षेः प्राप्तमंगुलीयकं सो दुष्यन्ताय प्रददौ । अंगुलीयकं निरीक्ष्य दुष्यन्तः शकुन्तलायाः सस्मार तां च प्राप्तुमधीरः कण्वाश्रममाजगाम । एवं शकुन्तलाशापान्तोऽभूत् ।

2. नारद इति नलकूबरमणिग्रीवौ कुबेरस्य धनाभिमानिनौ सुतावास्ताम् । एकदा तौ नग्नौ नद्यां जलक्रीडासंलग्नावभवताम् । तत्राकस्मान्नारदः समागच्छत् । तमवलोक्यापि तौ वस्त्रं नाधारयताम् । एतेन क्रुद्धो नारदस्तौ एवमशपत् —"भवन्तौ मर्त्यलोके आमलकवृक्षौ भवताम् ।" शापेन दुखितौ तौ नारदं शापोद्धाराय प्रार्थयताम् । तदा नारदोऽवदत् 'द्वापरे श्री कृष्णस्य स्पर्शमवाप्य भवतोःशापमुक्तिर् भविष्यति ।' एवं तौ गोकुले यमलार्जुननामानौ आमलकवृक्षौ अभवताम् । दृष्टया यशोदया उलूखलनिबद्धः कृष्णो यदा तौ —अस्पृशत् तदा तौ वृक्षरूपं विहाय श्रीकृष्णं प्रणम्य पुनर्देवलोकं जग्मतुः ।

बिना अवधि के शाप देना ठीक न है। स्वयं दुर्वासा ने शकुन्तला के शाप को, उस की सखियों से प्रार्थना करने पर उस के पति द्वारा दिये गये पहचान के चिह्न के देखने तक नियमित करके उस पर दया की थी। गौतम ने अहल्या के शिलाशाप को उस के दया सहित प्रार्थना करने पर त्रेता में श्री रामचन्द्र के चरणों के स्पर्श तक अवधि सहित कर के उस पर कृपा की थी। नारद ने धन के अभिमानी कुवेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव के आमले के वृक्ष के शाप को द्वापर में कृष्ण के स्पर्श तक समयबद्ध करके उन के मन को सान्त्वना दी थी। इसलिये इस के शाप के मोक्ष का समय और उपाय बता कर आप उग रही मूछों से मानों यौवन में पैर रखने के लिये प्रयास कर रहे इस कुमार पर दया करो"।

मित्र के प्रमाणसहित वचन को सुन कर महर्षि बोला "यह आधी शताब्दी तक तोते की योनि में रहकर अन्तिम वर्ष को वानप्रस्थाश्रम में रहने वाले दक्षिणावर्त की कुमुद्वती नगरी के महाराजा महासेन के साथ वन में बिता कर शापमुक्त हो जायगा। यह अपने जन्म के वृत्तान्त को भूलेगा नहीं। इस का पांडित्य से भरा शास्त्रज्ञान तोते की की योनि में भी वैसा ही रहेगा"। इस प्रकार शाप को सुविधा की त्रिवेणी में धो कर, परीक्षक, फेल हुए छात्र को तीन अंक और देकर तीसरी श्रेणी में सब से नीचे रख कर उसे गाड़ी के नीचे आत्म-हत्या से जैसे, महर्षि ने कुमार को युगों तक तोते की योनि की यातना से छुटकारा दिला दिया। फिर उसने मरे हुए तोते को भी कमंडलु के जल से छींटे दे कर जीवित कर दिया। वह भी चित्रगुप्त के समान मानों जो मेरी मस्तक के रेखा के अक्षर लिखने के लिये ही आश्रम में आया था, प्राणदान देने वाले महर्षि को, उस के उपकार को

कृतिज्ञापनायेव सादरलोचनाभ्यां निरीक्षमाणो यथाभीष्टं निर्जगाम। अहञ्चाप्याश्रमवासिनां पश्यतामेव संत्यक्तमानवाकृतिः शुकरूपमधारयम्।

वनाद् वनं विचरता मया भारताखिलतीर्थभ्रमणं व्यधायि। सकलपर्वता अवालोकिताः। गंगायमुनादिसकलापगाजलमपायि। सागरस्य क्षारसलिलस्वादोऽपि मयानुभूतः। एकदा पानीयशून्यनिर्जनवने भ्रमन् पयोऽभिलाषी सरित्तटं जिगमिषुर्नभसि पक्षबलेनोड्डीयमानो नदीमेकामपश्यम्। अत्रान्तरे भयदझंझावात उदतिष्ठत् क्षणेष्वेव। समस्तमन्तरिक्षं प्रलयकालवत्सधूलिमेघाक्रान्तं घनान्धकारनिमग्नमिवाभवत्। वायुवेगोत्पाटितपादपाः कुठारच्छिन्ना इव भूमौ निपतितुमारेभिरे। घनघोरगर्जनभयवेपमानवन्यजीवाः शरणस्थलगवेषणाय निष्फलं प्रायतन्त। बालतृणानि प्रकुपितप्रभञ्जनस्य दयामाप्तुमिव क्षणे शतवारं शिरांसि अनमयन्। शिशुखगाः प्राणरक्षायै मातॄणां पक्षयोः प्रविविशुः। क्षेत्रेषु कार्यरतकृषकाः घासपुञ्जकैः शिरांसि छादयन्तः पशुधनैः सह गृहाणि दधावुः।

वर्षोपलपातप्रताडितपक्षो रजःकणविलुप्तदृष्टिरहमुड्डयनशक्तिशून्यतामगमम्। एवं प्रचण्डवाताघातमसहमानो मत्स्यवधदण्डमिवोभुंजतः, प्राणभयं परित्यज्य सरित्तरंगनीयमाननौकासंरक्षणपरायणदामोदराभिधानधीवरस्य तर्यां मूर्छितो न्यपतम्। ततो मां जीवयितुमिवोपात्तकरुणा[1] तरंगभ्रमिस्तस्य तर्णिं तटं प्रति प्राक्षिपत्। मत्युदंष्ट्राया इव वीचिजालाद् विमुक्तो दामोदरः स्वजीवनरक्षणे मामेव निमित्तं मन्यमानो नावं लोहशृंखलया तटकीलके निबध्य मां कूलविनिर्मित-शरणकुटीरमानयत्। तत्रान्येऽपि मत्स्यग्राहिणः शीतवारणाय प्रज्वालितानला[2] अनागतमित्रचिन्ताकुला अवातिष्ठन्त। तस्य कक्षस्थितं मां मत्स्यमेवावबुध्यमानास्तेऽभाषन्त—"अयि ! अपारप्रयाससुरक्षितप्राणा वयं भाग्ययोगादिहागताः। त्वमसुभिः सह मत्स्यमपि समानयः। विचित्रमेतत्"। शीतप्रकोपप्रकम्पमानो दामोदरोऽवादीत्—"सखायः नायं मत्स्यः। झंझाबलेन नौपतितः शुकोऽयं मया धृतः। एतत्पतनसमकालमेव वीचिजालेन मे नौकाऽत्यजि। अत एनं मे प्राणरक्षकं

---

1. तरंगेति—तरंगभ्रमिः—तरंगजालः।
2. अनागतेति—अनागतानां तटमप्राप्तानां मित्राणां चिन्तया आकुलाः व्याकुलाः।

जताने के लिये ही आदर भरे नेत्रों से देखता हुआ अपनी इच्छा के अनुसार चला गया। मैं भी आश्रमवासियों के देखते ही देखते मनुष्य की शकल को छोड़ कर तोते के रूप में आ गया।

वन से वन में घूमते हुए मैंने सारे तीर्थों का भ्रमण किया। सारे पर्वतों को देखा। गंगा, यमुना आदि सारी नदियों का पानी पिया। समुद्र के खारे पानी का स्वाद भी मैंने चखा। एक बार पानी से शून्य निर्जन वन में घूमते हुए, पानी के लिये नदी के तट पर जाने की इच्छा से आसमान में परों के बल से उड़ते हुए मैंने एक नदी को देखा। इतने में भयानक तूफान उठा। कुछ ही क्षणों में सारा आकाश प्रलयकाल के समान धूल भरे बादलों से आक्रान्त मानों घने अन्धकार में डूब गया। वायु के वेग से उखाड़े हुए पेड़ कुल्हाड़े से कटे हुए जैसे धरती पर गिरने लगे। बादलों की भयानक गर्जना से कांपते हुए वन के जीव शरणस्थल के लिये निष्फल प्रयत्न करने लगे। छोटे घास के तिनके क्षुब्ध वायु की मानों दया पाने के लिये पल में सौ बार सिर झुकाने लगे। पक्षियों के छोटे बच्चे प्राणरक्षा के लिये माताओं के परों में घुसने लगे। खेतों में काम कर रहे किसान घास के गठ्ठों से सिरों को ढांपते हुए अपने पशुओं के साथ घरों को दौड़ने लगे। ओलों के गिरने से प्रताडित परों वाला, धूल कणों से नष्ट हुई दृष्टि वाला मैं उड़ने में असमर्थ हो गया। इस प्रकार तेज आंधी के थपेड़ों को सहन करने में असमर्थ होता हुआ मैं, मानों मच्छलियां मारने के दण्ड को ही भोग रहे, प्राणों के भय को छोड़ कर नदी के लहरों से बहाई जा रही किश्ती की रक्षा में लगे हुए दामोदर नाम मल्लाह की नाव में मूर्छित हुआ गिर गया। फिर मानों मुझे जीवनदान देने के लिये ही दया में आए हुए लहरों के जाल ने उस की नाव को तट की ओर धकेल दिया। मौत की दाढ से जैसे लहरों के जाल से छूटा हुआ दामोदर अपने जीवन की रक्षा में मुझे ही निमित्त मानता हुआ, नाव को लोहे के संगल से तट के कीले से बांध कर मुझे किनारे पर बनी शरणकुटिया में ले गया। वहां और भी मछेरे शीत से बचने के लिये आग जला कर न आये हुए मित्रों की चिन्ता से व्याकुल बैठे हुए थे। उस की बगल में छिपे हुए मुझ को मछली ही समझते हुए वह बोले—"अरे, बड़े प्रयत्न से प्राणों को बचा कर हम भाग्ययोग से यहां पहुंचे हैं। तुम तो प्राणों के साथ मछली को भी ले आए। यह विचित्र ही बात है।" शीत के कोप से कांपता हुआ दामोदर बोला—"मित्रो, यह मछली न है। तूफान से नाव में गिरे हुए इस तोते को मैंने पकड़ा है। इस के गिरने के साथ ही तरंगों के जाल ने मेरी किश्ती को छोड़ दिया था।

विज्ञाय समानयं करुणाविष्टमानसोऽहम् । ततस्ते सर्वे विस्मृतापद इव कौतुकाकृष्टा मां निरीक्षितुमारभन्त । कश्चिन्मे चञ्चुमस्पृशदपरः पक्षौ । अहं तु विगतप्राण इव शरीरगतिशून्योऽतिष्ठम् । दामोदरोऽनलतप्तवसने पाचिकोष्णतासंरक्षणाय कर्पटिकामिव मामावेष्ट्य कुटीरकोणेऽधारयत् । कलानन्तरं विगतशीतः प्राप्तचेतनोऽहं मन्दवाचि—"वन्देऽहं मे प्राणत्राणकरम्" इत्यभणम् । इमामश्रुतपूर्वां वाचं निशम्य धीवराः – "अहो ! एषस्तु मानववत्स्पष्टं भाषते । किमयं शुकरूपसुगुप्तः कश्चिद्देवः ?" इत्यन्योन्यमालपन् । अत्रान्तरे सलिलकणयुतप्रचण्डवातोऽपि यौवनं वार्द्धक्ये यथा शिथिलतामभजत् । रिक्तहस्तेष्वपरेषु दामोदरो मां तद्दिनस्य परमोपलब्धिं मन्यमानः सगर्वं गृहमाययौ । करुणायाः साक्षान्मूर्तिरिवासन्नप्रसवा दामोदरपत्नी दयावती मामप्रसूतिलब्धं सुतमेव निबुध्यमानाऽविलम्बमुष्णं पयोऽपाययत् । सम्पूरितभ्रूणावधिः[1] साऽपरस्मिन्नेव दिवसे सूनुमजनयत् । पुत्रोत्पत्तौ मे पदार्पणं शकुनमिव मन्यमानयोर् दामोदरदम्पत्योः स्नेहो मयि शतगुणमवर्धत । दामोदरो ममोत्पन्नभयान्मां पञ्जरेऽधारयत् । तौ सुतात्पूर्वं मां मध्ववलेहयताम् । दयावती पञ्चदिवसानन्तरं चूचुकात्स्तन्यमादाय चमशेन मे मुखे मेलयित्वा ततस्तनयमपाययत् । दामोदरतनया माधुरी मां सहोदरमिवामन्यत । सा पञ्जरस्थं मामितस्ततोऽभ्रामयत् । प्रतिदिवसं शतं जना मामीक्षितुं दामोदरसदनागताः मम मुखान्मे नाम, वेदवाक्यानि राष्ट्रमंगलञ्चाकर्णन्तो विस्मयाविष्टा गृहाणि न्यवर्तन्त । बालेषु सकुतूहलं 'किमभिधानं ते' इति पृच्छत्सु

1. सम्पूरितेति—सम्पूरितः पूर्णतां नीतः भ्रूणस्य गर्भस्य अवधिः समयः यया सा ।

इस लिये इस को अपना प्राणरक्षक जानकर मैं दया से ले आया हूं। फिर वह सभी अपनी आपत्ति को भूल कर जैसे तमाशे के लिये मुझे देखने लग पड़े। कोई मेरी चोंच को छूता था कोई परों को। मैं तो निष्प्राण जैसा बिना हिले-झुले ठहरा था। दामोदर ने आग से तपे वस्त्र में, रसोइन उष्णता की रक्षा के लिये चपाती को जैसे, मुझे लपेट कर कुटिया के एक कोणे में रख दिया। एक घड़ी के बाद शीत दूर होने पर चेतना में आये हुए मैंने धीमी आवाज में कहा—"मैं अपने प्राणों की रक्षा करने वाले को नमस्कार करता हूं"। इस पहले कभी न सुनी वाणी को सुन कर मल्लाह—"अरे, यह तो मनुष्य की तरह स्पष्ट बोल रहा है। क्या तोते के रूप में छिपा हुआ यह कोई देवता है"? इस प्रकार आपस में बातें करने लगे। इतने में जलकणों वाली तेज आन्धी भी युवावस्था बुढ़ापे में जैसे शान्त हो गई। दूसरों के खाली हाथ लौटने पर दामोदर मुझे उस दिन की परम उपलब्धि मानता हुआ बड़े गर्व के साथ घर आया। मानों दया की साक्षात् मूर्ति निकट प्रसव वाली दामोदर की पत्नी दयावती ने मुझे बिना प्रसव के ही प्राप्त पुत्र को जैसे समझते हुए गर्म दूध पिलाया। गर्भ का समय पूरा होने पर उसने दूसरे ही दिन पुत्र को जन्म दिया। पुत्र की उत्पत्ति में घर में मेरे पैर पड़ने को शकुन जैसा समझ कर दामोदर और उस की पत्नी का मेरे साथ प्यार सौ गुणा बढ़ गया। दामोदर ने मेरे उडने के भय से मुझे पिंजरे में डाल दिया। उन्हों ने पुत्र से पहले मुझे शहद चटाया। दमयन्ती ने प्रसव के पांच दिन के बाद स्तन से दूध ले कर चमच से पहले मुझे पिला कर फिर पुत्र को पिलाया। दामोदर की पुत्री माधुरी मुझे भाई के समान समझती थी। वह मुझे पिंजरे में डाल कर इधर-उधर घुमाती थी। प्रतिदिन सैंकड़ों लोग मुझे देखने के लिये दामोदर के घर आए हुए मेरे मुख से मेरा नाम, वेदवाक्य और राष्ट्रमंगल सुन कर विस्मित हुए घरों को लौटते थे। बच्चे जब कौतुक के लिये "आप का क्या नाम है" ऐसा पूछते थे तो मैं

"पारिजातोऽह" मित्यवदम् । प्रतिवेशिनः शनैः शनैः दामोदरसदनं सेर्ष्यमीक्षितु-मारेभिरे । तदा दयावती पतिमवदत् – "स्वामिन्, दरिद्रस्य क्षुधामिव बान्धवेर्ष्यां दिनं दिनमेधमानां बुध्येऽहम् । केनचिदवगतशुकेतिवृत्तो महीपतिरस्मासु कच्चित् कुपितो न स्यात् । राजा हि सकलरत्नानां निधिः । अतः शुकमणिमिमं महीपतयेऽविलम्बमुपहारीकृत्य मानमाप्नोतु भवान् । माधुरी-एनमादाय राजद्वारं प्रयास्यति । एतेन नो दारिद्र्यमपि दूरं पलायिष्यत इत्यस्ति मे प्रत्ययः" । प्रकृत्या भीरुर् धीवरोऽप्रतिरोधं तस्या वचनमङ्गीचकार । भवतो वानप्रस्थाश्रमं प्रतीक्षमाणोऽहं विंशतिवर्षेभ्यः प्राक् राजवंशसम्पर्कमायाम् । यथापेक्षं भवन्तं कुमारौ च पथि प्रावर्तये । नवचत्वारिंशत् समा अतीता मे शापं भुञ्जतः । अन्त्यहायनं भवता सह वने नेष्यामी" त्युक्त्वा विरराम ।

अवगतशुकोदन्तश्रोतार आश्चर्यचकिता अवाप्तबोधाः स्वस्थानानि प्रययुः । महाराजो मनसि "संसृतौ [1]खलेकपोतन्यायेनाननुभूतसुखा बहवो दृष्टिमायास्यन्ति परमभुक्तापत्तु [2]काकतालीयन्यायेन कश्चिद्विरल एव लप्स्यते" । एवं स्वानुभूतसंकटौचितीं व्यवस्थापयन्-शुकं सखायमिव मत्वा तत्पृष्ठं करेण संस्पृश्योवाच—"पक्षिवर ! मातृणात्पुत्रवद्राजवंशोऽयं न चिरमपि भवदुपकारादानृण्यं प्राप्स्यति । भवतो मार्गदर्शनान्वितसान्त्वना नदीमवगाहमानस्य यष्टिरिव राजवंशस्य सहायकाऽसिध्यत् । परश्वोऽहं वनं प्रयास्यामि । वर्षमितकालं वने भवत्संगेन बहुश्रेयोऽर्जयिष्यामि । महिषी श्रवणागतशुकेतिहासा विस्मितमानसा तं रजतपञ्जरे प्रवेश्य तस्मै सपयो मिष्ठान्नमुपाहरत् ।

1. खले कपोतन्यायः—प्रायशो जायमानघटनाः ।
2. काकतालीयन्यायः—कदचिद् दैवयोगाज्जायमानघटना ।

अपना नाम 'पारिजात' बताता था। पड़ोसी धीरे-धीरे दामोदर के घर को ईर्ष्या से देखने लगे। तब दयावती पति को बोली—"पतिदेव, गरीब की भूख के समान बन्धुओं की ईर्ष्या को दिन-दिन बढ़ती हुई देख रही हूं। किसी से तोते का समाचार जान कर राजा हम पर रुष्ट न हो जाय। राजा ही सारे रत्नों का घर है। इसलिये इस श्रेष्ठ तोते को शीघ्र ही राजा के लिये भेंट कर आप मान को प्राप्त करें। माधुरी इसको लेकर राजदरबार में जायगी। इससे हमारी गरीबी भी दूर होगी ऐसा मेरा विश्वास है। स्वभाव से ही डरपोक मल्लाह ने उसके वचन को बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया। आप के वानप्रस्थ आश्रम की प्रतीक्षा करता हुआ मैं आज से बीस वर्ष पहले राजवंश के सम्पर्क में आया था। आवश्यकतानुसार आपको और राजकुमारों को रास्ते पर चलाता आया हूं। शाप को भोगते हुए मुझे उनचास वर्ष बीत चुके हैं। अन्तिम वर्ष को आप के साथ वन में बिताऊंगा" ऐसा कहकर चुप हो गया।

तोते के इतिहास को सुन कर श्रोता लोग आश्चर्य से चकित हुए ज्ञान प्राप्त करके अपने-अपने स्थान को चले गये। महाराज अपने मन में संसार में खेत में कबूतरों के न्याय के समान सुख न देखने वाले लोग तो बहुत मिल जाएंगे परन्तु जिसने कभी आपत्ति न देखी हो ऐसा तो काकतालीय न्याय से कोई बिरला ही दिखाई देगा।" इस प्रकार अपने से भोगे संकटों के औचित्य को बैठाता हुआ तोते को मित्र जैसा मान कर उसकी पीठ को हाथ से स्पर्श करके बोला—"पक्षिवर, माता के ऋण से पुत्र के समान यह राजवंश आप के उपकारों से कभी उऋण न हो सकेगा। आपके मार्गदर्शन सहित सान्त्वना नदी को पार करने वाले मनुष्य की लाठी के समान राजवंश की सहायक रही है। मैं परसों वन को जाऊंगा। एक वर्ष वन में आपके साथ रहता हुआ बहुत कल्याण प्राप्त करूंगा। तोते के समाचार को जान कर विस्मित मन वाली रानी ने उसे चांदी के पिंजरे में डाल कर दूध पिलाया और मिठाई खिलाई।

भूपतेर्वनगमनसमाचारस्तृणाच्छादितभवनप्रदीप्तानल इव सकलनगर्यां सहसा प्रासरत्। सुषमा श्वशुराभ्यां काषायवसनानि साधयन्ती भृशं रुरोद। चन्द्रकेतुर्-निम्नजातीय-सुयोग्यबालां परिणिनीषुः पितृभ्यां व्याहतप्रस्तावः पुत्रो यथाऽर्ध-भोजनमादायैव तृप्तिं प्रादर्शयत्। सकलमन्तःपुरमकस्माद्विद्युद् दीप्तौ लुप्तायां सूच्यां सूत्रं पारयन्ती बालेव विवशं विकलञ्चातिष्ठत्। प्रजाजनाः प्रदीप्तभवनाग्निं शमयितुं जलकुम्भानादाय प्रतिवेशिन इव, सजलनयनैः राज्ञो दर्शनार्थं प्रचेलुः। एकादश्यनुराधान्वितबुधवासरे महीपश्च्यावितक्षीरचीडतरुर्नवां त्वचमिव, राजकीयवसनान्यवतार्य धृतकाषायपटो राजगुरुजमदग्निग्राहितकमण्डलुना-लङ्कृतकरः 'स्वामी ज्ञानानन्दः' इति नाम्ना च विभूषितोऽश्रुपूर्णाक्षिप्रजया राहुग्रस्तचन्द्रवन्निरीक्ष्यमाणोऽपरेभ्य आदर्शं दर्शयन् वनं प्रवव्राज। महिष्यपि काषायपरिधानालंकृता दक्षिणकरधृतशुकप्रञ्जरा नयनजलक्लिन्नकपोलसुषमयाऽ-पर राज्यमहिलामण्डलेन च सस्नेहमवलोक्यमाना छायेव भर्तारमनुससार। दशक्रोशमार्गगतेन, नद्या अगाधताऽनभिज्ञाः पद्भ्यां पारं जगमिषवो नाविकेनेव, वन्यजीवनक्लिष्टतां बोधयता महासेनेनायोध्यावासिनो रामेणेव, पुरः पदन्यास-निषद्धलोका विकलमनसाऽऽहृतमधुरच्छायनीडान् खगा यथा वैराग्यावृतानि गृहाणि-न्यवर्तन्त। सुषमा शकुनार्थं श्वशुरविश्रामकक्षे धृतजलकुम्भा तस्य गुणगणं वर्णयन्ती 'पितृयशसोऽभिवृद्धिः पुत्राणां धर्मः' इत्यर्थगर्भवचसा श्रान्तभर्तृस्वेदकणान् दुकूलपवनेनापनयन्ती पत्नीव, पितृविरहाकुलचन्द्र-केतोर्मनोऽसान्त्वयत्। पश्चिमायां गोमतीतटे सभार्यो निवसन् ज्ञानानन्दो-वन्यफलानि भक्षयन्नपरवानप्रास्थिभिश्चर्चितविविधज्ञानप्रसङ्गः ससुखं समयं निनाय। आगन्तुका 'राम रामेति' मधुरया गिरा व्याहरन्तम्[1]-तिथिप्रसादाय विविध-ललित-छन्देषु स्वागतश्लोकांश्चोच्चरन्तं तं

---

1. व्याहरन्तं —भाषमाणम्।

राजा का वन जाने का समाचार घास वाले घर को लगी आग के समान सारी नगरी में एक दम फैल गया। सुषमा सास ससुर के लिये भगवां वस्त्र तैयार करती हुई लगातार रोने लगी। चन्द्रकेतु, दूसरी जाति की योग्य लड़की से विवाह करने की चाहना वाले परन्तु माता-पिता से ठुकराए प्रस्ताव वाले पुत्र के समान, आधा भोजन करके ही तृप्ति दिखाने लगा। सारा रनवास, अकस्मान् बिजली के चले जाने पर सूई में धागा पिरोती हुई लड़की के समान; बेवश और व्याकुल हो गया। लोग जल रहे घर की आग बुझाने के लिये पानी से भरे घड़ों को लेकर पड़ोसियों के समान, जलयुक्त नेत्रों से राजा के दर्शनों के लिये चल पड़े। एकादशी और अनुराधा से युक्त बुधवार को राजा, निकाले हुए रस (बिरोजा) वाला चील का पेड़ जैसे नई छाल को, राजकीय वस्त्रों को उतार कर और भगवां कपड़े पहन कर राजगुरु जमदग्नि से दिये हुए कमण्डलु से सजे हाथ वाला, "स्वामी ज्ञानानन्द" इस नाम से विभूषित, आंसुओं से भरी आंखों वाली प्रजा के द्वारा, ग्रहण लगे चन्द्रमा के समान देखा जा रहा, दूसरों के लिये आदर्श दिखाता हुआ वन को चला गया। भगवां वस्त्रों से सजी हुई रानी भी दाएं हाथ में तोते का पिंजरा लिये हुए आंसुओं से भीगे कपोलों वाली सुषमा और राज्य की दूसरी स्त्रियों के द्वारा प्यार के साथ देखी जा रही पति के पीछे छाया के समान चली गई। दस कोस तक गये हुए, नदी की गहराई को न जानने वाले पैदल पार जाने की इच्छा वाले लोग मल्लाह से जैसे, बन की कठिनाइयों को समझाते हुए महासेन के द्वारा, अयोध्यावासी जैसे राम द्वारा आगे जाने से रोके हुए लोग दूर हुई मीठी छाया वाले घोसलों को पक्षी जैसे, उदासीनता से भरे अपने घरों को लौट गये। सुषमा शकुन के लिये ससुर के विश्राम के कमरे में पानी का घड़ा रख कर उस के गुणों, का वर्णन करती हुई 'पिता के यश को आगे बढ़ाना ही पुत्रों का धर्म है' इस प्रकार साभिप्राय वचन से, थके हुए पति के पसीने की बूंदों को दुपट्टे की हवा से दूर करती हुई पत्नी के समान, पिता के वियोग से व्याकुल चन्द्रकेतु के मन को सान्त्वना देने लगी। पश्चिम में गोमती के किनारे पत्नी के साथ रहता हुआ स्वामी ज्ञानानन्द वन के फलों को खाता हुआ दूसरे वान-प्रस्थियों के साथ अनेक प्रकार के ज्ञान की चर्चा करता हुआ सुख से समय बिताने लगा। उस के पास आने वाले अतिथि मीठी वाणी में 'राम राम' बोलते हुए और उन की प्रसन्नता के लिये स्वागत श्लोकों का उच्चारण करते हुए

शुकं निरीक्ष्याद्भुतं मन्यमानास्तदन्तिकं कुतूहलाविष्टमानसाश्चिरमतिष्ठन् ।

पश्चिमोत्तरे वेत्रवत्यां सूर्यकेतुप्रबन्धाश्वस्तो भद्रसेनोऽपि-अंगिरसा सम-[1]पिततुम्बिकालंकृतपाणिः "स्वामी घनानन्दः" इति नाम्ना सुशोभितो वसुमत्या सह काषायं प्रपन्नः स्नेहाकुलमानसैः प्रजाजनैर् मिथिलाधिपतिर्जनक इव सादरमवलोक्यमानो मनुप्रदर्शितमार्गमनुसरन्, खगः प्रभाते नीडमिव प्रासादं परित्यज्य वनं जगाम । असौ ब्रह्मपर्वते निवसंस्तत्रत्यान्स्वभावज-गुणै विमोहयन् वेदोपनिषच्चर्चापरः समयमनयत् । मिष्ठान्नमास्वदमानस्य [2]दन्तान्तरधिष्ठितप्रस्तराणुनेव पितृनिर्विशेषश्वशुरवनगमनेन खिन्नमानसं सूर्यकेतुं प्रतिभा, सुषमा चन्द्रकेतुं यथा साभिप्रायमधुरवाग्भिरसान्त्वयत् ।

अथैकदा पूरितवानप्रस्थैकहायनः स्वामी ज्ञानानन्दः प्रभाते यथापूर्वं शुकं प्रकृतिनिरीक्षणाय पञ्जरादुन्मुमोच । तं विस्मापयन्-शुकः—

विगतार्धशताब्दीयं शापश्चास्तं गतोऽधुना ।
शापदं मे नमस्कृत्य गमिष्यामि निकेतनम् ॥

इति पठित्वा ज्ञानानन्दं नतशिरसा प्रणम्य तत्स्मृतिपटलेऽविस्मरणीय-स्मृतीर्विसृज्याम्बरीषाश्रममुदडीयत । दिवसद्वयेन तपःस्थलीं प्राप्य मृग-चर्मनिषण्णमापादलम्बमानजटाभिः वयःपरिणतिं विज्ञापयन्तं महर्षिं समवैक्षत । सोऽपि वयसा सहैव जीर्णकोपः शापागाधतां निबुध्यमानो मुक्तशापं शुकं विलोक्य पुलकितमना आनन्दाश्रुभिर् जटामलमिव क्षालयन् पिता पुत्रं यथा कराभ्यामुत्थाप्य वक्षसाऽऽलिङ्ग्य "त्वं खगयोनिं विहाय परित्यक्तपारिजातनामा जन्माभिधानेन सकलदेशे ख्यातिमाप्नुहि । यस्मिन् वयसि शुक-योनिमाप्तस्तदेवायुर्लभस्व ।" एवं शापप्रायश्चित्तं विधातुमिव प्रदत्तैवं-विधाशीर्वादस्तं सदनमभिगन्तुमाज्ञापयामास । पारिजातो महर्षेः पश्यत एव

---

1. तुंबिकेति—तुंबिकया अन्तःशून्यतुम्बीफलेन अलंकृतः पाणिः हस्तः यस्य सः ।
"नहि तुम्बीफलविकलो वीणादण्डः प्रयाति महिमानम्"
2. दन्तान्तरधिष्ठितम्—दन्तमध्ये गतम् ।

श्लोकों को बोलते हुए तोते को देखकर विस्मय मनाते हुए कौतुक के लिये उस के पास देर तक ठहरते थे।

पश्चिोत्तर में वेत्रवती में सूर्यकेतु के राज्यप्रबन्ध से सन्तुष्ट भद्रसेन भी अंगिरा से दी हुई तुम्बी से सजे हाथ वाला 'स्वामी घनानन्द' इस नाम से सुशोभित, वसुनर्ता के साथ भववां वस्त्र धारण कर प्यार से भरे मन वाले प्रजा के लोगों से, मिथिलावासियों से जनक के समान, आदर के साथ देखा जा रहा मनु के बताये रास्ते पर चलता हुआ, प्रभात में पक्षी जैसे घोंसले को, प्रसन्नता से महल को छोड़कर वन को चला गया। वह ब्रह्मपर्वत पर रहता हुआ, वहां के लोगों को अपने स्वाभाविक गुणों से मोहित करता हुआ, वेद-उपनिषदों की चर्चा में लगा हुआ समय बिताने लगा। मिठाई खा रहे के दान्त के बीच आए कंकर से जैसे, पिता के समान ससुर के वन जाने से खिन्न मन वाले सूर्यकेतु को प्रतिभा, सुषमा चन्द्रकेतु को जैसे सार्थक मीठे वचनों से सान्त्वना देने लगी।

इस के बाद एक बार वानप्रस्थ का एक वर्ष पूरा किये हुए स्वामी ज्ञानानन्द ने प्रभात में पहले की तरह ही प्रकृतिनिरीक्षण के लिये तोते को पिंजरे से छोड़ दिया। उसको अचम्भे में डालता हुआ तोता -

यह आधी शताब्दी बीत गई और मेरे शाप का अन्त हो गया।
मैं अपने शाप देने वाले को नमस्कार करके अब घर जाऊंगा॥

ऐसा बोल कर ज्ञानानन्द को सिर झुका कर नमस्कार कर के उस के स्मृतिपटल में न भूलने वाली स्मृतियां छोड़ कर अम्बरीष के आश्रम को उड़ गया। दो दिन में वहां पहुंच कर मृगचर्म पर बैठे हुए, पैरों तक लटक रही जटाओं से मानों आयु की परिपक्वता को बताते हुए महर्षि को देखा। उस ने भी आयु के साथ ही क्षीण हुए कोप वाले ने शाप की गहराई को जानते हुए, समाप्त हुए शाप वाले उस को देखकर प्रसन्न मन वाले ने आनन्द के आंसुओं से मानों जटाओं की मैल को धोते हुए, पिता जैसे पुत्र को उसे हाथों से उठाया और छाती से लगाकर "तुम पक्षी की योनि को त्याग कर पारिजात नाम को छोड़कर जन्म के नाम से सारे देश में प्रसिद्धि प्राप्त करो। जिस आयु में तुम ने तोते की योनि में प्रवेश किया था उसी आयु वाले बन जाओ।" इस प्रकार मानों शाप का प्रायश्चित करते के लिये ही ऐसे आशीर्वाद देकर उसे घर जाने की आज्ञा दे दी। पारिजात महर्षि के देखते ही

शुकरूपं विहायावाप्तमानवाकृतिस्तैरेव लघुश्मश्रुकेशैर् विभूषितः अष्टादशवया युवावलोक्यत । ततोऽसौ महर्षिमम्बरीषं साष्टांगं प्रणम्य गेहं प्रययौ ।

वागीश्वरं ग्रामागतं विज्ञाय क्षेत्रीयसकलजना [1]अवाप्तबोधं बुद्धमिव तं द्रष्टमुत्सुकमनसः समागच्छन् । शतवर्षपुरातनमपि भवनं तस्य प्रत्यागमनं प्रतीक्षमाणं यथा प्राणान् दधार । वागीश्वरो गृहं प्रविश्य सकलवस्तुजातं पूर्वावस्थं समीक्ष्य 'एतत्समस्तं पितृकृपाफल' मिति [2]दिवंगतयोः कृतज्ञतां वहँस्तत्पावनचरणपादुके शिरसाऽस्पृशत् । तस्य भालतेजसा सदनं सूर्यांशुभिरिव प्रदीप्तं शुशुभे । सप्ततिवर्षीयाः श्वेतकेशास्तस्य बाल्यकालवयस्यास्तमष्टादशवर्षतरुणं निरीक्ष्याऽऽश्चर्यचकिता रहस्यमिदं ज्ञातुं नापारयन् ।

महर्षिवरदानप्रभावाद्वागीश्वरकीर्तिकौमुदी दिनं दिनं सर्वत्र प्रासरत् । तस्य सकलशास्त्रनिष्णातत्वं निशम्य निखिलपण्डिता दन्तेष्वंगुलिं चक्रिरे । जमदग्निरङ्गिराश्चापि तस्य विद्वत्तामन्तर्मनसा स्वीचक्रतुः । शास्त्रार्थमायातविद्वांसस्तस्य तर्कान्-श्रुत्वा सूर्योदये कुमुदवद् ग्लानिं भेजिरे । द्वैतीयिकचन्द्ररेखामिवान्तर्दधानां भारतीयसंस्कृतिं समीक्ष्य क्षुब्धमानसो वागीश्वर एतां पुनरुज्जीवयितुं भीष्मवदाजीवनं ब्रह्मचर्यं प्रतिज्ञाय राष्ट्राखण्डतायै-आदिशंकराचार्य इवासागरं भारतभ्रमणमतिं दधार । चतस्रो दिशो दिवाकरस्य मयूखानामिव तत्पादस्पर्शोत्सुका अतिष्ठन् । तस्य शास्त्रीयप्रवचनानि श्रोतुमाबालवृद्धसकलजना गोपालवेणुध्वनिमुग्धगोपा इव विस्मृतात्मानो द्रुतपदं दधावुः । तस्य सयुक्तिकमधुरवाक्षु कर्णगोचरासु न केवलं त्यक्तास्थाः पुनः प्रतिविवृत्ता अपित्वपरेऽपि भारतीयसंस्कृतिगुणान्निबुध्यमाना एतस्यां निमज्जितुमहमहमिकया तत्पादयोरुपतस्थुः । कुमुद्वतीवेत्रवत्योस्तस्य विशिष्ट आदरो व्यधीयत । सूर्यकेतु-चन्द्रकेतू

---

1. अवाप्तेति-अवाप्तः बोधः ज्ञानं येन तम् ।
2. दिवंगतयोः-स्वर्गं प्राप्तयोः ।

तोते का रूप छोड़ कर मनुष्य की शकल में उन्हीं लघु मूंछ के केशों से सजा हुआ अठारह वर्ष का युवक बन गया। फिर वह महर्षि अम्बरोष को नमस्कार कर के घर को चला गया।

वागीश्वर को ग्राम में आया हुआ जान कर क्षेत्र के सभी लोग ज्ञान को प्राप्त हुए बुद्ध को जैसे उसे देखने के लिए उत्कंठित मन वाले आने लगे। सौ वर्ष का पुराना भी घर मानों उसके आने की प्रतीक्षा में ही प्राणों को धारण कर रहा था। वागीश्वर ने घर में प्रवेश कर के सारी वस्तुओं को पहली अवस्था में ही देख कर 'यह सब माता-पिता की कृपा का ही फल है' इस प्रकार उन की कृतज्ञता को धारण करते हुए, उनके पवित्र चरणों के खड़ाऊं को सिर से छुआ। उस के मस्तक की कान्ति से वह घर सूर्य की किरणों से जैसे शोभा देने लगा। सत्तर वर्ष की आयु वाले सफेद केशों वाले उसके बाल्यकाल के मित्र उसे अठारह वर्ष का जवान देख कर आश्चर्य से चकित हुए इस रहस्य को न जान सके। महर्षि के वरदान के प्रभाव से वागीश्वर का यश दिन दिन सब जगह फैलने लगा। उस के सारे शास्त्रों की पंडिताई को सुन कर पंडित लोग दान्तों तले उंगलि दबाने लगे। जमदग्नि और अंगिरा ने भी उसकी विद्वत्ता को अन्तर्मन से स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ के लिये आये हुए पंडित लोग उसके तर्कों को सुन कर सूरज के चढ़ने पर कुमुद के समान मुरझाने लगे। द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा के समान लुप्त होती हुई भारतीय संस्कृति को देखकर उसे दुबारा जीवन देने के लिये भीष्मपितामह के समान जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कर के राष्ट्र की अखंडता के लिये आदि शंकराचार्य के समान समुद्र पर्यन्त भारत भ्रमण का बिचार बना लिया। चारों दिशाएं सूर्य की किरणों के समान उस के चरणों का स्पर्श पाने के लिये उत्कंठित हो उठीं। उसके शास्त्र सम्बन्धी प्रवचनों को सुनने के लिये बच्चे-बूढ़े सभी लोग कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि पर मोहित हुए ग्वालों के समान अपने आप को भूल कर शीघ्र गति से दौड़ने लगे। उस के दलील से भरे वचन को सुन कर के केवल छोड़ी हुई आस्था वाले ही वापस नहीं लौटे बल्कि दूसरे भी भारतीयसंस्कृति के गुणों को जानते हुए इस में डुबकी लगाने के लिये एक दूसरे से बढ़ कर उस के चरणों में आने लगे। कुमुद्वती और वेगवती में उसका विशेष

तं 'राष्ट्रगुरु' रित्युपाधिनालङ्कृत्य देशाखण्डतायै तद्विहितप्रयासान् भूरि प्राशंसताम्। एवं द्विसमाभ्यां[1] कृतचतुर्दिक्परिक्रमः सूत्रे मणिगणानिवाखिल-भारतीयान् स्नेहैकतन्तौ संयोज्याश्वस्तमना वागीश्वरो भयदाजगर इव व्यात्त-मुखेन लोकान् ग्रसितुमिवोद्यतं सकलानाचारमूलं भौतिकवादं विजेतुं पित्रावासं तत्स्मारणायाध्यात्मशिक्षाकेन्द्रमचिकीर्षत्। अवगततन्मनोरथा बहवो जनाः सत्साधनोपार्जितवित्तं कृतार्थतां नेतुमिव केन्द्रभवननिर्माणाय मुक्तहस्तं धनं ददिरे। विविधभाषाप्रकाण्डपण्डिता वेदोपनिषद्गीतासांख्ययोगन्यायवैशेषिक-पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसाशास्त्राण्यध्यापयितुं तत्र न्ययोज्यन्त। न केवलं देशीया अपितु विदेशीया अपि वृहत्संख्यायां ज्ञानमाप्तुं तत्र समाजग्मुः। एतत्केन्द्रोपार्जित-बोधाः प्रखरमतयो मनीषिणो विदेशप्रचारिताध्यात्मज्ञाना भारतयशःपताकां काश्मीराणां च ख्यातिमाक्षितिजमनैषुः।

[2]दुर्योधनसंसदि मोहनशतरूपेष्विव प्राग्दक्षिणपश्चिमोत्तरयोर्जनाः सूर्यकेतु-चन्द्रकेत्वोर्भेदं नाजनयन्। सूर्यकेतु र्मातृसममालतीं नन्दनोद्यानभवनेऽवासयत्। आरोहणोन्मुक्तसमीरणशुश्रूषायै सेवकद्वयं नियुयुजे। चन्द्रकेतुरपि चञ्चरीको-पकृतिविजितहृदयस्तत्परिचर्याविहितविशिष्टप्रबन्धस्तदानृण्यमिवान्वभवत्।

एवं चरिते ऽनुपमयोरहंभावविमुक्तयोः, सकलगुणगणसमलङ्कृतयोः, सागरवद् गम्भीरयो, रचपलमनसोः, परदोषानुसन्धानविरक्तयो, रमलदर्पणे प्रतिच्छायामिव स्वच्छात्मानं प्रदर्शयतोर्, गुणसंग्रहणे दरिद्रवत्प्रलोभनं वहतोर्, धनार्जने योगीवौदासीन्यं धारयतोर्, विजितेन्द्रिययोर्, विषयैषणां

1. कृतेति—कृता चतसृणां दिशां परिक्रमा प्रदक्षिणा भ्रमणं येन सः।

2. दुर्योधनसंसदीति—श्रीकृष्णो महाभारतयुद्धवारणाय पांडवेभ्यः पंचग्रामान् याचितुं दुर्योधनसभायामगमत्। कौरवाः कृष्णास्यापमानाय तं रज्जुभिर् बद्धुं प्रायतन्त। तदा भगवान् कृष्णस्तान् भ्रमे निपातयितुं शतरूपाणि दधार।

आदर किया गया । सूर्यकेतु और चन्द्रकेतु ने उसे 'राष्ट्रगुरु' की उपाधि से अलंकृत किया और देश की अखंडता के लिसे उसके द्वारा किये गये प्रयत्नों की बहुत प्रशंसा की । इस प्रकार दो वर्षों में चारों दिशाओं का भ्रमण करके धागे में मणियों के समान सब भारतवासियों को प्यार के एक सूत्र में पिरो कर सन्तुष्ट मन वाले वागीश्वर ने भयानक सांप के समान खोले हुए मुख से लोगों को जैसे खा लेने के लिये तैयार भौतिकवाद को जीतने के लिए, माता-पिता के घर को उनकी याद के लिये आध्यात्मिक शिक्षा का केन्द्र बनाने का विचार बनाया । उस के मनोरथ को जानकर बहुत से लोगों ने अच्छे साधन से कमाये हुए धन को मानों सफल बनाने के लिए केन्द्र के भवन का निर्माण करने के लिये खुले हाथ से धन दिया । अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित वेद उपनिषद, गीता, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा शास्त्रों को पढ़ाने के लिये वहां लगाये गये । केवल अपने ही देश के नहीं बल्कि विदेशों के भी लोग बड़ी संख्या में वहां ज्ञान प्राप्त करने के लिये आने लगे । इस केन्द्र से ज्ञान प्राप्त करने वाले तेज बुद्धि वाले पंडित लोग विदेशों में अध्यात्मज्ञान का प्रचार करके भारत की कीर्ति की पताका को और काश्मीर की प्रसिद्धि को क्षितिज तक ले गये ।

दुर्योधन की सभा में श्रीकृष्ण के सौ रूपों में जैसे, प्राग्दक्षिण और पश्चिमोत्तर के लोग सूर्यकेतु और चन्द्रकेतु में भेद न कर सके । सूर्यकेतु ने माता के समान मालती को नन्दनोद्यान के भवन में बसा दिया । समीरण को सवारी से मुक्त करके उसकी सेवा के लिए दो सेवकों को लगा दिया । चंचरीक के उपकारों से जीते हुए दिल वाला चन्द्रकेतु भी उसकी सेवा का विशेष प्रबन्ध करके अपने आप को उस से उऋण समझने लगा ।

इस प्रकार चरित्र में उपमा न रखने वाले, अहंकार से रहित, सारे गुणों से विभूषित, सागर के समान गम्भीर, स्थिर मन वाले, दूसरे के दोष न निकालने वाले, निर्मल दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान स्वच्छ आत्मा को दिखाने वाले, गुणों के संग्रह में रंक के समान लोभ रखने वाले, धन इकट्ठा करने में योगी के समान उदासीनता दिखाने वाले, इंद्रियों पर विजय पाने वाले, विषयों की इच्छा को विष के समान छोड़ने वाले

विषमिव परिहरतोः, परसुखमेवात्ममंगलं मन्यमानयोः, [1]अन्याभीलेन मरुता पत्रमिव विचलितात्मनोः,[2] श्रुत्यागतं सम्यङ् निध्यायतोर्, मनोवचःकर्मसु तन्तुवायस्तन्तुष्विवैकतां कृतवतोः, सम्पद्विपदोः समभावयोर्, दिनकरः सागर-संगृहीतमुदधौ यथा, प्रजाऽवाप्तं धनं प्रजायै—उत्सृजतोर्, मेघवत्परोपकार-परायणयो, राष्ट्रवित्तं प्रजानिमित्तं मन्यमानयोः सुचरितेषु कुसुमवत्कोमलयोर् दुर्वृत्तेषु वज्रवत्कठोरयो, रनुक्तानपि निन्द्याऽनिन्द्यपरभावानन्तर्यामीव विजानतोः, स्तुत्यान् स्तुवतोर्, निन्द्यान् निन्दतोर्, नम्यान् नमतोर्, दम्यान् दमयतोर्' मर्यादापुरुषोत्तमरामवल्लोकापवादभीतयोर्, जले कमलवल्लोकाकाङ्क्षाऽलिप्तयोर्, देहे सत्यपि विदेहसमयोर्, यौवनेऽपि भाववृद्धयोः, कृष्णकेशेष्वपि धवलमेधास-मृद्धयोः, पितृतपश्चर्याधरणीधृतपादयोर्, देहद्वैतेऽप्यद्वैतमाप्तयो राजकुमारयोर् भारतं शासतो रथापतद्रामराज्यम्—

तत्र न भ्रष्टाचारो न दुराचारो न बलात्कारः । न चाटुकारिता । न चौरा न चौर्यम् । नान्धत्वं, न वधिरत्वम् । न वैधव्यं नानाथत्वम् । न दारिद्र्यं न च भिक्षुकाः । न यौतुकाभिलाषा न च युवतिवधः । [3]नाक्षपातो न पक्षपातः । नातिवृष्टिर् नानावृष्टिः । नाशनिपातो न शलभाक्रमणम् । समयानुकूलजलवर्षण-शस्यश्यामला मही, प्रसूनगन्धः षट्पदमिव, वीणास्वनो भुजगमिव, व्याधगीतं-कुरङ्गमिव, विदेशीयपर्यटकमानसं समाकर्षत् । फलपाकान्तौषधयो जनानां सुखमजनयन् । धनाहरणं प्राणधारणाय न कोषवर्धनाय । परदेहा लोकमंगलाय न दम्भाय । परदारेषु मातृबुद्धिर्भूपालसच्चरित्रसलिल-सिक्तधरातले बीजांकुरमिवोदियाय । वेश्यालया बलवद्विधि-

---

1. पराभीलेन—परेषां कष्टेन ।
2. श्रुत्यागतमिति—यावत्पूर्णविश्वासो न स्यात्तावत् श्रुतवार्तासु न किमप्याचरताम् ।
3. अक्षपातः—द्यूतक्रीडा

दूसरों के सुख को ही अपना मंगल मानने वाले, दूसरों के कष्ट से वायु से पत्ते के समान विचलित आत्मा वाले, कान में पड़ी बात को अच्छी तरह सोचने वाले, मन-बचन-कर्म में बुनकर तन्तुओं में जैसे, एकता दिखाने वाले, सुख दुख में एक जैसे रहने वाले, सूरज समुद्र से लिये हुए को समुद्र में ही जैसे, प्रजा से प्राप्त धन का प्रजा के लिये ही त्याग करने वाले, बादल के समान परोपकार करने वाले, राष्ट्र के धन को केवल प्रजा के लिये समझने वाले, अच्छे लोगों के लिये फूल के समान कोमल, दुष्टों के लिये वज्र के समान कठोर, नहीं कहे हुए भी दूसरों के भले-बुरे भावों को अन्तर्यामी के समान जानने वाले, स्तुति योग्य की स्तुति करने वाले, निन्दा योग्य की निन्दा करने वाले, नमस्कार के योग्य को नमस्कार करने वाले, दण्ड के अधिकारी को दण्ड देने वाले, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के समान लोक-निन्दा से डरने वाले, जल में कमल के समान लोकाकांक्षा में लिप्त न होने वाले, देह के होते हुए भी विदेह (जनक), के समान, युवावस्था में भी वृद्धों जैसे विचार रखने वाले, काले केशों में भी उज्ज्वल बुद्धि से भरपूर, पिता की तपस्या से धरती पर पैर रखने वाले, देह का द्वैत होने पर भी जो अद्वैत को पा चुके थे ऐसे राज कुमारों के भारत पर शासन करने पर रामराज्य आ गया :—

वहां न भ्रष्टाचार था न दुराचार था न बलात्कार था। न चापलूसी थी। न कोई चोर था न चोरी थी। न कोई अन्धा था न बहरा था। न कोई विधवा थी न अनाथ था। न गरीबी थी न कोई भिखारी था। न दहेज की इच्छा थी न युवतियों का वध था। न कोई जुआ खेलता था न किसी का पक्षपात था। न बहुत वर्षा थी न वर्षा का अभाव था। न बिजली गिरती थी न टिड्डी दल का आक्रमण था। समय के अनुकूल पानी के बरसने से खेती से हरी भरी धरती, फूल की सुगन्धि भौरे को जैसे, वीणा का शब्द सांप को जैसे, शिकारी का गीत हिरण को जैसे विदेशी पर्यटकों के मन को खींचती थी। फलों के पकने तक रहने वाली वनस्पतियां लोगों को सुख देने लगीं। धन प्राणों को धारण करने के लिये कमाया जाता था खजाना बढ़ाने के लिये नहीं। पद की इच्छा लोगों की भलाई के लिये थी घमण्ड के लिये नहीं। दूसरों की स्त्रियों में माता की भावना राजा के अच्छे चरित्र रूपी पानी से सींचे हुए धरातल में बीज के अंकुर के समान पैदा हो गई।

वृषभ[1]-विषाणोत्पाटितश्रृंगा लवणपूरितानना बल्मीका इव पातालं प्रययुः। मद्यनिकेतनेषु नभसि धूमकेतुरिव सर्वोत्पातप्रसूर्मदिरा[2], दूषितजलपानप्रमत्त-कलहायमानप्रस्तराकीर्णक्षुद्रनदजलं[3] प्रावृषि गतायां यथाऽदृश्यतां जगाम। अन्तःकलहः शरदि विषधर इव तिरोहितोऽभूत्।

पूर्णप्रजातन्त्रम्। प्रजेच्छया प्रजामंगलाय सकलमन्वष्ठीयत। पादपे पत्राणीव, नभसि तारामण्डलमिव समस्तप्रजाजना नयनयनयोः समानाः। न स्थानाय विशिष्टा श्रेणी न च वर्गाय। न न्यायालयानामवमानना न च न्यायं वदता-मनादरः। नान्तःकलहो न च धार्मिकविद्वेषः। एवमासागरं साम्प्रदायिक-सौहार्दसम्पन्ना भिन्नास्थां धारयन्तोऽपि राष्ट्रधर्मणि भेदवर्जं विश्वासमावहन्तः, समानसंहिताश्रृंखलाबद्धसकलजनाः क्षीरनीरवत्परस्परं भ्रातृभावेनामिलन्। न प्रियजनबिरहभोगो नैवमासीच्च तत्र वियोगयोगः। प्रचण्डदण्डप्रखर-मार्तण्डभीता नराः फणिनः फूत्कारादिवानुचितारम्भाद्दूरादेवाभैषुः। यत्र तत्र सर्वत्रादिकवेर्महामुनिबाल्मीकेर्मुखनिस्सृताद्यच्छन्दसि नभसीन्द्रधनुरिव विविधरागलिखितं पद्यमिदं नयनयोः श्रेष्ठाञ्जनं यथा शीतलतामापादयत्—

सागरेषु जलं यावद् यावद् विन्ध्यहिमालयौ।
अखण्डं भारतं राष्ट्रं स्थास्यति संसृतेर्गुरुः॥

---

1. वृषभेति—बलवान् दृढः विधिर् नीतिरेव वृषभस्तस्य विषाणाभ्या-मुत्पाटितानि श्रृंगाणि येषां ते। बल्मीकविनाशनाय लोकास्तेषां श्रृंगाणि भङ्क्त्वा छिद्रेषु लवणं क्षिपन्ति। एवं बल्मीकस्य कदापि पुनरुदयो न जायते। एवमेव वेश्यालयाः सर्वदायै लुप्ताः संजाता इति भावः।
2. प्रसूः—जननी।
3. प्रावृषि—वर्षर्तौ।
4. आद्यच्छन्दसि—अनुष्टुप् छन्दसि।

*** इति समाप्तेयं वियोगवल्लरी ***

वेश्यालय कड़े कानून रूपी बैल के सींगों से उखाड़े शिखर वाले, नमक से भरे हुए मुख वाले वल्मीक के समान पाताल को चले गये । शराबखानों में आकाश में पुच्छल तारा के समान सभी उपद्रवों को जन्म देने वाला शराब, गन्दा पानी पीने से मदे हुए आपस में झगड़ते हुए पत्थरों से भरे हुए क्षुद्र नाले का पानी वर्षा ऋतु के बीत जाने पर जैसे लुप्त हो गया । अन्दर के झगड़े सरद ऋतु में सांप के समान ओझल हो गये ।

पूर्ण प्रजातन्त्र आ गया । प्रजा की इच्छा से प्रजा की भलाई के लिये सब कुछ किया जाने लगा । पेड़ के पत्तों के समान, आकाश में तारामण्डल के समान सभी लोग कानून की आंख में एक समान थे । न किसी स्थान के लिये विशेष दर्जा था न किसी वर्ग विशेष के लिये । न न्यायालय का अपमान और न ही न्याय देने वालों का अनादर था । न अन्दर का झगड़ा था और न ही धार्मिक विद्वेष था । इस प्रकार समुद्रपर्यन्त साम्प्रदायिक सौहार्द से युक्त भिन्न आस्था को रखने वाले भी राष्ट्रधर्म में बिना भेद-भाव के विश्वास रखने वाले, एक समान संहिता रूपी जंजीर में बंधे हुए सभी लोग दूध और पानी के समान आपस में भाइयों के समान मिलने लगे । न किसी प्रियजन के विरह का भोग था और इस प्रकार न ही वहाँ वियोग का योग था । कड़े दण्ड रूपी तेज सूरज से डरे हुए लोग सांप की फुफकार से जैसे अनुचित काम करने से दूर से ही डरने लगे । जहां तहां सब जगह आदिकवि महामुनि वाल्मीकि के मुख से निकले हुए पहले छन्द में, आसमान में इन्द्र धनुष के समान अनेक रंगों में लिखा हुआ यह पद्य आंखों में श्रेष्ठ अंजन के समान शीतलता पैदा करने लगा :—

जब तक समुद्र में पानी है, जब तक विन्ध्याचल और हिमाचल है तब तक भारत अखण्ड रूप में संसार का प्रतिष्ठित गुरु बन कर स्थायी रहेगा ॥

लेखकान्यकृतयः

1. राष्ट्रपथप्रदर्शनम् — अष्टादशाध्यायनिबद्धं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
2. तर्जनी — एकादशाध्याययुतं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
3. मधुवर्षणम् — सप्तसर्गान्वितं मौलिकसंस्कृतकाव्यम् ।
4. वत्सला — षडङ्कनिबद्धं मौलिकसंस्कृतनाटकम् ।
5. तृणजातकम् — एकाङ्कि मौलिकसंस्कृतनाटकम् ।

लघुकृतयः

6. छायाविलासः
7. अनारकली
8. रेलमंत्री

पाठ्यपुस्तकानि

9. रक्षासंस्कृतव्याकरणम् — (महाविद्यालयस्तरं यावत्)
10. संस्कृतकल्पतरुः — त्रयो भागाः ।

अनुवादसाहित्यम् (पहाड़ीभाषायाम्)

11. स्वप्नवासवदत्तम् — (गद्यस्य गद्ये, पद्यस्य पद्येऽनुवादः)
12. विक्रमोर्वशीयम् — (गद्यस्य गद्ये, पद्यस्य पद्येऽनुवादः)